छुरी, कैंची, सुई, टाँके और
इलाज-ए-दर्द

छुरी, कैंची, सुई, टाँके और इलाज-ए-दर्द

डॉ. अरविंद यादव

वैल्यू पब्लिकेशंस
दिल्ली भारत

प्रथम संस्करण 2022

© लेखक, 2022

प्रकाशक

वैल्यू पब्लिकेशंस

बी-7, सरस्वती कॉम्पलेक्स, सुभाष चौक,
लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092
फष्छस्न : 9212235385, 9868035385
इङ्क4-मेल : valuepublications2018@gmail.com

ISBN: 978-93-91599-41-6

अक्षर संयोजक : आदिल प्रिंटोग्राफिक्स, दिल्ली

मुद्रक : नाईस प्रिंटिंग प्रेस, साहिबाबाद, गाजियाबाद, (उत्तर प्रदेश)

सर्वाधिकार सुरक्षित
इस प्रकाशन का कोई भी भाग बिना लेखक की लिखित अनुमति के किसी भी प्रकार के पुनर्प्रकाशित अथवा किसी भी पुनर्प्राप्य रूप में संरक्षित, इलेक्ट्रोनिक अथवा यांत्रिक—या किसी भी रूप में, या प्रकार से, जैसे फोटो कॉपी, रिकॉर्डिंग या किसी भी और प्रकार से, प्रसारित नहीं किया जा सकता।

समर्पित

दिवंगत मित्र हरिहरन को

हरिहरन से दोस्ती हाई स्कूल के दिनों में हुई थी। क्लास एक ही थी, लेकिन सेक्शन अलग थे। फिर भी क्रिकेट ने हमें मिलाया। दिन-ब-दिन दोस्ती तगड़ी होती गयी। इंटर में बिछड़ गये, लेकिन डिग्री कॉलेज में सहपाठी बने। इस बार सेक्शन भी एक ही था। प्यार-मुहब्बत, रिश्ते-नाते, दोस्ती-यारी, व्यक्ति-समाज, जीवन-दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, खेल-कूद, नीति-राजनीति, वर्तमान-भविष्य जैसे कई विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान होता था। मुखर होने की वजह से मैं सभी दोस्तों से अलग-अलग विषयों पर चर्चाएँ करता। लेकिन कई कारणों से हरिहरन की अन्य सहपाठियों से नहीं बनी। उसके लिए मैं ही 'सच्चा' दोस्त था। कॉलेज के दिनों में हरिहरन ने सेना में भर्ती होने के लिए तैयारियाँ शुरू कर दी थीं। तैयारी तगड़ी थी, इस वजह से संयुक्त रक्षा सेवा परीक्षा पास कर ली और बतौर ऑफ़िसर भर्ती भी हो गया। देश की सुरक्षा में ख़ुद को समर्पित कर दिया। इधर, कॉलेज से डिग्री लेने के बाद मैं शिक्षक

नियुक्त हुआ। एक साल तक केंद्रीय विद्यालय, गच्चीबावली में शिक्षक की ज़िम्मेदारियाँ निभाने के बाद पत्रकार बना। हरिहरन से संपर्क लगातार बना रहा। उसने देश के अलग-अलग हिस्सों में काम किया। कई महीने कारगिल में भी रहा। जब भी छुट्टियाँ बिताने हैदराबाद आता, तब मुझसे हर हाल में मिलता। घंटों बातें होतीं। लेकिन, एक दिन उसने यह बताकर होश उड़ा दिये कि वह कैंसर से पीड़ित है। मेरे लिए इस बात पर यक़ीन करना मुश्किल था। और भी निराश और हताश करने वाली बात यह थी कि कैंसर ख़ून में इतना ज़्यादा फैल चुका था कि ज़िंदगी ज़्यादा दिनों की नहीं थी। ऊँची कद-काठी, हट्टे-कट्टे शरीर वाले एक चुस्त-दुरुस्त, तंदुरुस्त युवक की ज़िंदगी कैंसर की नज़र हो चुकी है, इस बात ने मुझे अंदर से हिला दिया। इलाज के दौरान भी हरिहरन से कई बार मुलाक़ात हुई। जब यक़ीन हो गया था कि हरिहरन जल्द ही दुनिया छोड़कर चला जाएगा, तब बड़े ही कठोर मन से मैंने उससे कहा था कि जब अंतिम साँसें लेने का वक़्त आये, तब मैं उसके पास रहना चाहता हूँ। इस पर उसने कहा था, "मरते वक़्त मैं किसी की आँखों में मेरे प्रति सहानुभूति, या मेरे जाने की पीड़ा नहीं देखना चाहता हूँ। दोस्त की पीड़ा से मेरी पीड़ा और बढ़ेगी।" वैसे ही हुआ जैसे कि हरिहरन चाहता था। जब अंतिम साँसें लीं, तब वहाँ डॉक्टरों और नर्सों के सिवाय कोई नहीं था। न माँ, न भाई, न दोस्त। हरिहरन चला गया। एक ऐसा दोस्त चला गया, जिसने दुनिया में सिर्फ़ मुझे अपना सच्चा दोस्त माना। हरिहरन स्मृतियों में समाया हुआ है। याद बहुत आती है। दोस्त कई सारे हैं, हरिहरन जैसा कोई नहीं मिला कभी।

अनुक्रम

भूमिका 9

1. आज़ादी की लड़ाई के बीच नेल्लूर में हुआ एक शांतिपूर्ण सामाजिक क्रांति का आग़ाज़ 13
2. बदलाव की आँधी में इलाज-ए-दर्द 45
3. डॉक्टरी फ़र्ज़ और ज़रूरतमंदों की मदद 68
4. पिता सुंदरय्या की विचारधारा से प्रेरित श्यामा प्रसाद ने लिया डॉक्टर बनने का प्रण 77
5. मेडिकल कॉलेज में दाख़िले का हक़दार बनने के लिए किया कठोर परिश्रम 94
6. राजनीतिक उथल-पुथल और सामाजिक बदलावों के बीच हुई डॉक्टरी पढ़ाई 108
7. सर्जरी में निपुणता हासिल करने के लिए ऑपरेशन थिएटरों में किये दिन-रात एक 135
8. सरकारी अस्पतालों में किये कई अनूठे ऑपरेशन, सर्जरी से बचायी हज़ारों की जान 183
9. सत्य साईं के प्रभाव में जीवन किया जन-सेवा में समर्पित 202
10. भाई, बहनें, बेटा-बेटी ... सभी बने डॉक्टर, कुलपति बन मेडिकल शिक्षा-व्यवस्था को किया मजबूत 237

भूमिका

कई कारण हैं जिनकी वजह से कई अनूठे क्रांतिकारियों, समाज-सुधारकों की कहानियाँ भुला दी जाती हैं। महानायक की चमक-धमक में कई नायकों की कहानियाँ काल-गर्भ में समा जाती हैं। इन्हें उतनी प्रसिद्धि नहीं मिलती, जितनी कि मिलनी चाहिए।

क्रांति को कामयाब बनाने में कई लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कई नायकों की ताक़त लगती है। कई लोगों का श्रम-परिश्रम लगता है। कई रणनीतिकार अपनी सारी दिमाग़ी ताक़त झोंक देते हैं। लेकिन जब क्रांति की कहानी लिखी जाती है, तब कई नायकों की कहानियाँ उजागर नहीं होतीं। महानायक की कहानी ही सुनी-सुनायी, लिखी-पढ़ी जाती है। इतिहास के पन्नों पर भी इन्हीं महानायकों का ज़िक्र होता है। क्रांति को कामयाब बनाने के लिए अपना जी-जान लगाने वाले कई योद्धाओं की कहानियाँ अनकही-अनसुनी रह जाती हैं। कई शहीदों के नाम इतिहास के पन्नों पर दर्ज़ नहीं हो पाते हैं। महानायकों पर कई किताबें लिखी जाती हैं, लेकिन क्रांति में अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले कई महानुभावों के नाम तक इतिहास की किताबों में छप नहीं पाते हैं।

इस बात में दो राय नहीं कि क्रांति के समय एक महानायक उभरता है। यही महानायक क्रांतिकारियों का नेतृत्व करता है। जनता इसी नेता के पीछे चलती है। लेकिन महानायक को चलाने वाले, आगे बढ़ाने वाले, कई लोग होते हैं। इनमें से कई लोग पर्दे के पीछे काम करते हैं। इन लोगों के संघर्ष और साहस की कहानी

पर्दे के पीछे ही दम तोड़ देती है। क्रांति का श्रेय महानायक को मिलता है।

कई लोगों के जीवन को नयी दशा-दिशा देने वाले लोगों के बारे में कहीं कुछ दर्ज़ नहीं हो पाता है। पिगिलम सुंदरय्या और उनके बेटे श्यामा प्रसाद, दो ऐसे चिकित्सक हैं, जिन्होंने कई लोगों को नयी ज़िंदगी दी, जीवन को कामयाब बनाने में कई लोगों की मदद की। एक बड़ा सामाजिक और राजनीतिक बदलाव लाने में महती भूमिका निभायी।

सुंदरय्या की कहानी रोचक है। इन्होंने कई रूढ़िवादी परंपराओं को तोड़ा। ऐसे समय में डॉक्टरी शिक्षा हासिल की, जब किसी यादव बालक से यही उम्मीद की जाती थी कि वह बड़ा होकर हाथ में लाठी थामेगा और गाय-भैंस, भेड़-बकरियाँ चराएगा। दूध का कारोबार करेगा। उस समय भारतीय समाज में जातिवाद हावी था, लेकिन बदलाव की बयार चलनी शुरू हो गयी थी। इसी बयार का असर था कि सुंदरय्या स्कूल जा पाये, पढ़ाई-लिखाई कर पाये। पूरी बिरादरी में स्कूली शिक्षा हासिल करने वाले पहले बालक बने। ज़िले-भर में किसी पिछड़ी जाति से डॉक्टर बनने वाले पहले शख़्स बने। गाय-भैंस, भेड़-बकरियाँ चराने के लिए हाथ में लाठी थामने के बजाय सुंदरय्या ने लोगों का इलाज करने के लिए स्टेथस्कोप थामा। आगे हाथ में छुरी, कैंची, सुई लेकर छोटी-बड़ी कई सर्जरियाँ कीं और लोगों को रोग-मुक्त किया। तरह-तरह के सर्जिकल ऑपरेशन कर कई लोगों की जान बचायी। एक चिकित्सा-शिक्षक के रूप में कई डॉक्टर और सर्जन तैयार किये। अपनी कामयाबी से यह साबित किया कि ज्ञान किसी की बपौती नहीं है। डॉक्टर बनना किसी जाति-विशेष या फिर वर्ण-विशेष के लोगों का विशेषाधिकार नहीं है। अगर शिक्षा दी जाए, हुनर सिखाया जाए, तब किसी भी सामाजिक और आर्थिक पृष्टभूमि का इन्सान डॉक्टर, इंजीनियर या साइंटिस्ट बन सकता है। सुंदरय्या अपनी कामयाबियों की वजह से कई लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत बने। पथ-प्रदर्शक बने। सुंदरय्या से प्रेरणा लेकर कई लोगों ने रूढ़िवादी परंपराओं को तोड़ा। गुलामी और बंदिशों के पिंजरे से मुक्ति पायी। शिक्षा हासिल की। हुनर सीखे। उन पेशों को अपनाया, जो सिर्फ़ कुछ जाति विशेष के लोगों तक सीमित थे। अलग-अलग क्षेत्रों में प्रवेश किया और अपना लोहा मनवाया। सुंदरय्या की कामयाबियों और एक चिकित्सक के रूप में समाज से मिल रहे आदर-सम्मान से प्रभावित होकर उनकी चारों संतानों ने डॉक्टर बनने का संकल्प

किया। संकल्प को पूरा भी किया। दोनों बेटे - श्यामा प्रसाद और गोपी कृष्णा डॉक्टर बने। दोनों बेटियाँ - मैथिली और शोभा भी डॉक्टर बनीं। सुंदरय्या और उनकी संतानों ने अपना सारा जीवन चिकित्सा के ज़रिये जन-सेवा में समर्पित किया। इन चारों ने भी अपने जीवन में नायाब कामयाबियाँ हासिल कीं। हमेशा डॉक्टरी फ़र्ज़ को सबसे आगे रखा।

श्यामा प्रसाद ने कई बार ऐसे मरीज़ों पर सर्जरी की, जिनका इलाज करने से दूसरे सर्जनों ने मना कर दिया था। इन मरीज़ों की हालत बेहद गंभीर थी। सर्जरी में कई जोखिम थे। सर्जरी न करने पर जान जाने का ख़तरा था। जोखिम इतने थे कि सर्जरी के दौरान भी जान जा सकती थी। चूँकि जान बचाने के लिए सर्जरी एक मात्र विकल्प थी, श्यामा प्रसाद ने सर्जरी की। कई हैरतअंगेज़ सर्जरियाँ कीं। अगर श्यामा प्रसाद चाहते, तो अपना ख़ुद का अस्पताल खोल सकते थे। किसी कॉर्पोरेट हॉस्पिटल में अपनी सेवाएँ दे सकते थे। विदेश जाकर दौलत-शोहरत कमा सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। पिता सुंदरय्या की राह पर चले। ग़रीब और निःसहाय लोगों की मदद करने के मक़सद से सरकारी अस्पतालों में काम किया। प्राइवेट प्रैक्टिस के दौरान कई मरीज़ों का निःशुल्क इलाज किया। कैंसर, डायबिटीज़ जैसी बीमारियों से बचने के उपाय जन-जन को बताये। कई जागरूकता अभियान चलाये।

सुंदरय्या और श्यामा प्रसाद की वजह से आंध्रप्रदेश में एक सामाजिक बदलाव का सूत्रपात हुआ। दलित और पिछड़ी जातियों के युवा पुश्तैनी पेशे से आगे की सोचने लगे। इन युवाओं ने ऐसे पेशे अपनाने शुरू किये, जिन पर कुछ जाति विशेष के लोगों का विशेषाधिकार माना जाता था। सिर्फ़ यादव जाति के युवाओं ने ही सुंदरय्या और श्यामा प्रसाद को अपने आदर्श के तौर पर नहीं लिया, बल्कि अन्य पिछड़ी जातियों के युवाओं के लिए भी दोनों रहनुमा साबित हुए। सामाजिक और आर्थिक तौर पर मजबूत होने के बाद इन युवाओं ने दूसरे कमज़ोर लोगों को ताक़तवर बनाने की कोशिश शुरू की। एक मायने में एक नया सिलसिला शुरू हुआ। ताक़तवर बनने के बाद पिछड़ी जातियों के युवा दूसरों को अपनी तरह मजबूत बनाने की कोशिश में लग गये। शिक्षा हासिल करने और आगे बढ़ने की आज़ादी, बराबरी का अधिकार और आपसी भाईचारा, इन तीनों सिद्धांतों को लेकर आगे चलने लगे।

उम्मीद है कि श्यामा प्रसाद की इस जीवनी से यह जानने में मदद मिलेगी कि कैसे एक सकारात्मक क्रांति की शुरुआत हुई। इस जीवनी से डॉक्टर के जीवन के अलग-अलग अनछूए पहलुओं को जानने में भी मदद मिलेगी।

डॉ. अरविंद यादव
arvindjournalist@gmail.com

अध्याय 1

आज़ादी की लड़ाई के बीच नेल्लूर में हुआ एक शांतिपूर्ण सामाजिक क्रांति का आग़ाज़

शेषय्या और अक्कम्मा को जब तीसरी संतान हुई, तब पूरे कोवूरु में इसी बात को लेकर चर्चा हुई। चर्चा की वजह भी ख़ास थी। दूसरी संतान के जन्म के पूरे बीस साल बाद अक्कम्मा को तीसरी संतान हुई थी। यह कोई मामूली घटना नहीं थी। दो बच्चों के बीच में बीस साल के अंतराल की कई घटनाएँ देखने-सुनने को मिली हैं, लेकिन इन बच्चों के बीच में कुछ और बच्चों का जन्म हुआ। एक शिशु के जन्म के पूरे बीस साल बाद दूसरे शिशु के जन्म की यह घटना अपने आप में अनोखी थी।

घटना 1930 की है। उन दिनों छोटी उम्र में लड़के और लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था। बाल-विवाह आम बात थी। लड़का और लड़की के बालिग़ होते ही विवाह कर दिया जाता था। तीसरी संतान के जन्म से पहले ही शेषय्या और अक्कम्मा की दोनों संतानों का विवाह कर दिया गया था। दोनों की बेटी माँ भी बन गयी थी। ऐसी स्थिति में तीसरी संतान का जन्म हुआ था। इस संतान के दुनिया में आने से पहले उनके भाँजे का जन्म हो चुका था।

शेषय्या और अक्कम्मा की तीसरी संतान का जन्म 1 जुलाई 1930 को हुआ। ये वे दिन थे, जब भारत में आज़ादी की लड़ाई परवान चढ़ रही थी। अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ भारतीयों की जंग तेज़ होती जा रही थी। उन दिनों भारत में, ख़ासकर गाँवों-देहातों में, लोगों का रुझान शिक्षा की तरफ़ नहीं था। उन दिनों बहुत कम

विद्यालय थे। जाति-प्रथा का प्रचलन था। प्रत्येक जाति का परंपरागत व्यवसाय था।

हिंदू समाज चार वर्णों में विभक्त था - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। हिंदू धर्म में जाति-व्यवस्था यानी वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण का सर्वोच्च स्थान था। मंदिरों में पूजा-पाठ करना, यज्ञ करना-कराना, अनुष्ठान करवाना, कर्मकांड करना, वेदों का पठन-पाठन करना, शिक्षा देना ब्राह्मणों का काम था। दूसरा स्थान क्षत्रिय का था। क्षत्रियों की ज़िम्मेदारी शासन चलाना, युद्ध में नेतृत्व करना, राज्य के लोगों की सुरक्षा करना था। एक मायने में क्षत्रिय का मतलब शासक, योद्धा और प्रशासक होना था। वैश्य का काम कारोबार करना था। वैश्य की श्रेणी में किसान, व्यापारी और दुकानदार आते थे। शूद्र वर्ण में वे सभी लोग आते थे, जो वे काम करते थे जिन्हें हीन माना जाता था। ऐसा कहा और माना जाता था कि शूद्र वर्ण के लोगों का काम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के लोगों की सेवा करना है। एक मायने में शूद्र यानी मज़दूर। नाई, धोबी, बढ़ई, लोहार, कुम्हार, केवट, निषाद, गड़रिया, अहीर, बंजारा, भुजवा, भाट, दर्ज़ी, बुनकर, भावसार, पँवार, भटियारा आदि शूद्र माने जाते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उच्च जाति के माने जाते थे और शूद्र निचली जाति के। शेषय्या शूद्र वर्ण से थे। उनकी जाति यादव थी। वे मामूली किसान थे। खेती-बाड़ी करते थे। भेड़-बकरी चराते थे, और इसी से परिवार की गुज़र-बसर होती थी।

शेषय्या और अक्कम्मा को सबसे पहले लड़की हुई। बेटी का नाम रखा रमणम्मा। रमणम्मा के जन्म के एक साल बाद शेषय्या को पुत्र की प्राप्ति हुई। बेटे का नाम रखा गया वेंकट सुबय्या। वेंकटेश्वर स्वामी तेलुगुभाषियों के इष्ट देवता हैं। शेषय्या ने अपने पहले बेटे का नाम इसी देवता के नाम पर रखा।

वेंकट सुबय्या के जन्म के बाद कई सालों तक शेषय्या और अक्कम्मा को कोई संतान नहीं हुई। क़रीब बीस साल बाद जब अक्कम्मा गर्भवती हुईं, तब शेषय्या की ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा। जब आस-पड़ोस के लोगों ने शेषय्या की पत्नी के गर्भवती होने की बात सुनी, तब उन्हें यक़ीन नहीं हुआ। कई लोगों को लगा कि पति-पत्नी को ग़लतफ़हमी हुई है। लेकिन जब लोगों ने अक्कम्मा के लक्षण देखे, शारीरिक चाल-ढाल में बदलाव देखे, तब जाकर उन्हें यक़ीन हुआ। और, जब अक्कम्मा ने एक स्वस्थ्य और सुंदर लड़के को जन्म दिया, तब इस लड़के की चर्चा दूर-दूर तक हुई। एक महिला ने एक बार गर्भधारण करने के पूरे बीस साल बाद

फिर गर्भधारण कर एक शिशु को जन्म दिया, यह कैसे संभव हुआ? इसी प्रश्न को लेकर कई दिनों तक लोगों के बीच चर्चा रही।

घर-परिवार में आये नये सदस्य का स्वागत शानदार तरीक़े से किया गया। शेषय्या ने अपनी तीसरी संतान का नाम सुंदरय्या रखा। नाम के साथ 'पिगिलम' जुड़ गया। इस तरह तीसरी संतान का नाम पड़ा पिगिलम सुंदरय्या। शेषय्या के परिवार में हर व्यक्ति के नाम के साथ मूल पैतृक स्थान का नाम जोड़ने की परंपरा रही है। शेषय्या के पूर्वज मूल रूप से नेल्लूर ज़िले के पिगिलम गाँव के निवासी थे। आंध्रप्रदेश में कई परिवार व्यक्ति के नाम के साथ मूल पैतृक स्थान का नाम जोड़ते हैं।

माता-पिता ने लाड़-प्यार से सुंदरय्या का लालन-पोषण शुरू किया। लेकिन सुंदरय्या की उम्र अभी पाँच बरस की भी नहीं हुई थी कि शेषय्या का निधन हो गया। छोटी उम्र में सुंदरय्या के सिर से पिता का साया उठ गया। चूँकि बड़े भाई उम्र में बीस साल बड़े थे और उनका विवाह हो चुका था, वे सुंदरय्या के अभिभावक की भूमिका में आ गये। बड़े भाई ने सुंदरय्या के लालन-पोषण में कोई कमी नहीं रखी। सुंदरय्या को पिता की कमी महसूस होने नहीं दी। पिता की सारी ज़िम्मेदारियाँ वेंकट सुब्बय्या ने निभानी शुरू कीं। बहन रमणम्मा ब्याह के बाद अपने ससुराल चली गयीं, लेकिन भाइयों के संपर्क में लगातार रहीं। त्योहारों पर मेल-मिलाप लगातार होता रहा।

सुंदरय्या की उम्र जब पढ़ने-लिखने लायक़ हुई, तब बड़े भाई वेंकट सुबय्या ने उनका दाख़िला स्कूल में करवाने का मन बना लिया। उन दिनों गाँव-देहातों में सिर्फ़ उच्च जाति के लड़के स्कूल जाया करते थे। निचली जाति के लोगों के बच्चे बड़े होकर अपने अभिभावकों के पेशे को अपनाया करते थे। कुम्हार का बेटा कुम्हार और लुहार का बेटा लुहार बनता था। नाई का बेटा नाई और धोबी को बेटा धोबी बनता था। यही सिलसिला सालों से चला आ रहा था। पढ़ाई-लिखाई करना, विद्यालय जाकर शिक्षा हासिल करना कुछ जाति विशेष के लोगों तक सीमित था। लेकिन भारत में अंग्रेज़ों के आने के बाद बदलाव आने शुरू हुए। शिक्षा के लिए जाति के नाम पर भेदभाव बंद करने की आवाज़ उठनी शुरू हुई। कई समाज-सुधारकों के आंदोलनों की वजह से वर्ण-व्यवस्था और जाति के नाम पर भेदभाव और छुआछूत

का विरोध शुरू हुआ। निचली जाति के बच्चे भी विद्यालय जाने लगे।

वेंकट सुबय्या शिक्षा के महत्व को जान गये थे। ख़ुद कभी स्कूल नहीं गये, लेकिन अपने छोटे भाई को स्कूल भेजने का दृढ़ संकल्प कर दिया था। लेकिन उन दिनों कोवूरु में कोई विद्यालय नहीं था। निकटतम विद्यालय घर से क़रीब बीस किलोमीटर दूर था। वेंकट सुबय्या चाहते थे कि उनका छोटा भाई उनकी तरह भेड़-बकरियाँ न चराये। घर-गृहस्थी चलाने के लिए सवर्ण जाति के लोगों के रहम-ओ-करम पर आश्रित न रहे। वेंकट सुबय्या अच्छे से जान गये थे कि शिक्षा की बदौलत ग़रीब लोगों की ज़िंदगी बदल सकती है। उज्ज्वल भविष्य के लिए वेंकट सुबय्या ने सुंदरय्या का दाख़िला घर से बीस किलोमीटर दूर बुच्चिरेड्डीपालेम के डोड्ला लक्ष्मी नरसिंहा स्कूल में करवा दिया।

डोड्ला लक्ष्मी नरसिंहा रेड्डी स्कूल की स्थापना बुच्चिरेड्डीपालेम नगर बसाने वाले डोड्ला अन्ना रेड्डी के वंशजों ने की थी। अन्ना रेड्डी के पूर्वज तिरुतन्नि के रहने वाले थे। तिरुतन्नि मद्रास प्रेसीडेंसी का हिस्सा था, लेकिन यहाँ तमिलभाषी लोग बहुसंख्यक थे। 1715 में अन्ना रेड्डी अपने परिवार के साथ आकर नेल्लूर ज़िले के वेव्वेरु गाँव में बस गये। यहीं अन्ना रेड्डी ने अपने पूर्वज बुच्चि रेड्डी के नाम पर शहर बसाया। इसी वजह से शहर का नाम बुच्चिरेड्डीपालेम पड़ गया। अन्ना रेड्डी कर्नाटक के नवाब, जो आर्कोट के नवाब के रूप में भी जाने जाते थे, के लिए कर-वसूली का काम किया करते थे। कर्नाटक 1690 से 1801 के दौरान नवाबों के नियंत्रण में था। इन नवाबों की राजधानी आर्कोट थी। कर्नाटक के नवाबों को हैदराबाद दक्कन के निज़ामों का समर्थन और संरक्षण हासिल था। लेकिन भारत में अंग्रेज़ों की पकड़ मजबूत होने के बाद आर्कोट भी ब्रिटेन की हुकूमत के नियंत्रण में आ गया और मद्रास प्रेसीडेंसी का हिस्सा बन गया।

अन्ना रेड्डी और उनके वंशज हमेशा सम्पन्न और रसूख़दार रहे। परिवारवालों ने बुच्चिरेड्डीपालेम में विकास की गति को हमेशा तेज़ बनाये रखा। सड़कें बिछवायीं, मंदिर बनवाये, शिक्षा संस्थान खोले। जो स्कूल खोला, उसे डोड्ला लक्ष्मी नरसिंहा रेड्डी का नाम दिया। नरसिंहा रेड्डी भी अन्ना रेड्डी के वंशज थे। शुरू होने के बाद कुछ दिनों में ही डोड्ला लक्ष्मी नरसिंहा रेड्डी स्कूल काफ़ी लोकप्रिय हो गया। लोकप्रिय होने की एक बड़ी वजह आसपास के गाँवों और शहरों में स्कूल का न होना था। इसी वजह

से दूर-दूर से विद्यार्थी पढ़ने के लिए डोड्ला लक्ष्मी नरसिंहा रेड्डी स्कूल आने लगे।

उन दिनों तेलुगुभाषी क्षेत्रों में स्थापित स्कूलों में बच्चों के लिए 'पेद्द बाल शिक्षा' नाम की एक पाठ्यपुस्तक हुआ करती थी। अंग्रेज़ हुकूमत के सुझाव पर तेलुगु भाषा के विद्वान पुडुरु सीताराम शास्त्री ने एक पाठ्यपुस्तक लिखी और इसका नाम रखा 'पेद्द बाल शिक्षा'। यह पुस्तक पहली बार 1832 में प्रकाशित हुई। स्कूलों में इसे पाठ्यपुस्तक का दर्ज़ा मिला। उन दिनों जो कोई शिक्षा हासिल करना चाहता था, उसे 'पेद्द बाल शिक्षा' से ही सीखना होता था। बच्चे हों या प्रौढ़, साक्षर बनना हो, ज्ञान हासिल करना हो, तो यही किताब ज़रिया थी, मददगार थी। इस किताब में सबसे पहले तेलुगु भाषा के अक्षरों का ज्ञान दिया गया। 'पेद्द बाल शिक्षा' के अंतर्गत वर्णों के बाद मात्राओं का ज्ञान होता है। इसके बाद शब्द-ज्ञान का क्रम आता है। बच्चे जब शब्दों का अर्थ जान जाते हैं, तब उन्हें वाक्य-निर्माण सिखाया जाता है। बच्चे पढ़ना और लिखना साथ-साथ सीखते हैं। वाक्य-निर्माण के बाद व्याकरण सिखाया जाता है। जब बच्चे व्याकरण भी समझ जाते हैं, तब उन्हें अलग-अलग विषयों का ज्ञान दिया जाने लगता है। गणित सिखाया जाने लगता है। विज्ञान की बातें बतायी जाने लगती हैं। इतिहास बताया जाने लगता है। उन दिनों बच्चों को एक और पुस्तक पढ़ाई जाती थी। इस पुस्तक का नाम 'बाल रामायण' था। इस किताब में सरल भाषा में श्री राम की कथा थी। जब बच्चे श्री राम की कथा जान जाते थे, तब उन्हें जोड़-घटाव, गुणा-भाग सिखाया जाता था। इसके बाद पहाड़े सिखाये जाते थे। साल-दर-साल परीक्षा होती था और जो बच्चे परीक्षा में पास होते थे, उन्हें अगली कक्षा में भेजा जाता था। दसवीं तक यही सिलसिला चलता था। नौवीं कक्षा तक स्कूल प्रबंधन द्वारा परीक्षाएँ आयोजित की जाती थीं। लेकिन दसवीं की परीक्षाएँ अंग्रेज़ हुकूमत के शिक्षा विभाग द्वारा ली जाती थीं। इस परीक्षा में पास होने वाले विद्यार्थी को सेकेंडरी स्कूल लीविंग सर्टिफ़िकेट (एसएसएलसी) दिया जाता था।

सुंदरय्या हर दिन स्कूल जाने लगे। हर दिन वे पैदल चलकर स्कूल जाते और पढ़ाई-लिखाई करने के बाद वापस पैदल ही घर लौट आते। यानी, हर दिन शिक्षा के लिए उन्हें क़रीब बीस किलोमीटर का सफ़र पैदल तय करना पड़ता। राह आसान नहीं थी। एक छोटे बालक का हर सुबह बीस किलोमीटर चलकर स्कूल पहुँचना कोई साधारण बात नहीं थी। अगर रास्ते मुश्किल हों, तो हौसले पस्त हो जाते हैं। पाँव

डगमगा जाते हैं। वापसी का मन करता है। लेकिन अगर हिम्मत हो, तो हर राह आसान हो जाती है। हिम्मत की वजह से आगे बढ़ने की शक्ति मिलती है। उम्र मायने नहीं रखती, शारीरिक ताक़त मायने नहीं रखती, हिम्मत मायने रखती है। और तो और, जब पथिक को यह पता हो कि रास्ता उसे ख़ुशहाली की ओर ले जाएगा, तब वह कठिनाइयों और दर्द की चिंता नहीं करता। वह बस ख़ुशी की उम्मीद में आगे बढ़ता चला जाता है। बालक सुंदरय्या ने भी यही किया।

वे हर दिन घर से भोजन कर निकलते और स्कूल पहुँचने के बाद मन लगाकर पढ़ाई करते। स्कूल में ज़्यादातर बच्चे सवर्ण जाति के थे। यादव जाति से सिर्फ़ सुंदरय्या थे। वैसे तो जाति के नाम पर स्कूल में कोई भेदभाव नहीं किया गया, लेकिन सवर्ण जाति और सम्पन्न परिवार से होने की वजह से ज़्यादातर बच्चों के पास साधन और संसाधन बहुत थे। ज़िंदगी में विलासिता थी। कई बच्चे ऐसे थे, जिनकी सेवा में नौकर लगे हुए थे। ये सभी घोड़ागाड़ी या बैलगाड़ी पर सवार होकर स्कूल आया-जाया करते थे। सभी शानदार कपड़े पहनकर आते थे। सभी के पाँव में चमचमाते जूते हुआ करते थे।

सुंदरय्या अकेले ऐसे थे, जिनके पास पहनने के लिए सिर्फ़ दो जोड़ी कपड़े थे और वे भी पुराने। पाँव में पहनने को चप्पल भी नहीं थी। बीस किलोमीटर की दूरी नंगे पाँव नाप लिया करते थे।

शुरुआती दिनों में सुंदरय्या को स्कूल में बहुत तकलीफ़ हुई। उनके पास दूसरे बच्चों की तरह लिखने-पढ़ने के लिए न पटिया थी, न चाक के टुकड़े।

जब सुंदरय्या ने अपने बड़े भाई से पटिया और चाक के टुकड़े की ज़रूरत के बारे में बताया, तब उन्हें गाँव के ज़मींदार के सामने हाथ फैलाने के सिवाय कोई दूसरा उपाय नज़र नहीं आया।

सुंदरय्या के छोटे-से मकान के क़रीब एक ज़मींदार रहा करते थे। इस ज़मींदार की कोठी थी। सुंदरय्या के पिता इन्हीं के यहाँ नौकरी किया करते थे। शेषय्या के पास क़रीब एक एकड़ ख़ुद की ज़मीन थी। इस ज़मीन पर होने वाली खेती से घर-परिवार की गुज़र-बसर कर पाना मुश्किल था। अपनी ख़ुद की कुछ भेड़-बकरियाँ भी थीं। घर-परिवार की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ज़मींदार के यहाँ नौकरी करना मजबूरी थी। ज़मींदार के पास सैकड़ों एकड़ उपजाऊ ज़मीन थी। कई गाय-बैल थे।

घोड़ागाड़ी थी। ज़मींदार के यहाँ काम इतना ज़्यादा था कि दर्जनों मज़दूर कम पड़ जाते थे। शेषय्या के पूर्वज भी इसी ज़मींदार के पूर्वजों की सेवा में लगे रहे थे। यह परंपरा सालों से, पुश्तों से चली आ रही थी।

इस ज़मीदार के यहाँ एक बात अच्छी थी। इनके यहाँ कोई भी मज़दूर बंधुआ नहीं था। जो जितना काम करता था, उसे उस काम के हिसाब से मेहनताना मिलता था। मेहनताना देने के मामले में कोई नाइंसाफ़ी नहीं थी। ज़मींदार का रौब था, शान-ओ-शौकत थी। कोई उनके ख़िलाफ़ एक शब्द नहीं बोलता था। रईसीयत और रुतबे की वजह से सभी उनका सम्मान करते थे। ज़रूरत पड़ने पर, कहने पर ज़मींदार ग़रीब लोगों की मदद भी कर दिया करते थे।

आंध्र ही नहीं बल्कि भारत के अलग-अलग हिस्सों के ज़मींदारों से कुछ अलग थे नेल्लूर के ज़मींदार। नेल्लूर ज़िले के ज़्यादातर ज़मीदार रेड्डी समुदाय के थे। रेड्डी जाति के लोग शुरू से भूस्वामी रहे हैं। इस जाति से कई राजा-महाराजा भी हुए। राजा-महाराजाओं का दौर जब ख़त्म हुआ, तब भी लाखों एकड़ ज़मीन पर इसी जाति के लोगों का कब्ज़ा रहा। आंध्र के रायलसीमा इलाक़े में ज़्यादातर ज़मींदार रेड्डी समुदाय के थे। देश-भर में ज़मींदारों के हाथों किसानों, मज़दूरों, ग़रीबों के शोषण के क़िस्से हर दिन सुनाये-सुने जाते थे। जाति के नाम पर भेदभाव और छुआछूत चरम पर था।

नेल्लूर ज़िले में भी लगभग सभी ज़मींदार रेड्डी समुदाय के थे। लेकिन इनके काम करने की शैली दूसरे ज़मींदारों से काफ़ी अलग थी। शोषण नहीं था। जाति के नाम पर भेदभाव था और छुआछूत थी, लेकिन जाति के नाम पर हिंसा नहीं थी। पूरे नेल्लूर ज़िले में लोगों के बीच सद्भाव था। जीवन शांतिपूर्ण था।

गाँवों में अमूमन हर जाति के लोग रहा करते थे। नाई, धोबी, बढ़ई, लोहार, कुम्हार, दर्ज़ी, बुनकर, कसाई जैसी जातियों के लोगों का हर गाँव में होना स्वाभाविक था। इन जातियों के लोगों के लिए ज़्यादातर गाँवों में अलग कुएँ थे। वैसे तो इनके मकान ज़मींदारों के मकानों के आसपास हुए करते थे, लेकिन ये लोग हमेशा ग़रीब रहे और ज़मींदारों के रहम-ओ-करम पर मजबूर भी।

नेल्लूर ज़िले में ज़्यादातर लोग कापु जाति के थे। कापु मूलतः एक किसान जाति है। इस जाति के लोग खेती-किसानी करते हुए आये हैं। तेलुगु भाषा में 'कापु'

शब्द का मतलब होता है किसान या संरक्षक। आमतौर पर कापु जाति के कई परिवारों के पास खेती-बाड़ी के लिए अपनी ज़मीन रही है। बहुत कम परिवार रोज़ी-रोटी के लिए दूसरों पर आश्रित होते थे। शताब्दियों से कापु ऊँची जाति मानी गयी है। कापू जाति के लोग ख़ुद को 'रेड्डी' कहलवाना पसंद करते हैं। नेल्लूर ज़िले में कम्मा और वेलमा जाति के लोग भी थे। इन दोनों जातियों के लोग भी सम्पन्न थे और इन्हें भी ऊँची जाति का दर्ज़ा हासिल था। कम्मा और वेलमा जाति के लोग भी भूस्वामी थे। उपजाऊ ज़मीन का मालिक होने की वजह से ही कापु, कम्मा और वेलमा जाति के लोग हमेशा सम्पन्न रहे।

नेल्लूर में तीन जातियाँ ऐसी थीं, जिनको ज़मीदार काफ़ी दूर रखा करते थे। इन तीन जाति के लोगों की परछाई को भी लोग अपवित्र मानते थे। माला, मादिगा और येरुकला जाति के लोग 'अछूत' माने जाते थे। इन तीन जातियों के लोगों के मकान गाँवों के बाहर हुआ करते थे। भेदभाव इतना था कि इन जातियों के लोगों के छूए हुए सामान को छूना भी लोग पसंद नहीं करते थे।

माला जाति के लोग मूल रूप से कृषि मजदूर थे। इस जाति के लोग खेतों में काम करने के अलावा कपास की बुनाई करते थे। इस जाति के लोगों की एक ख़ासियत थी। ये लोग गाय-बैल के चमड़े से ढ़ोल, डफ़ली, नगाड़ा जैसे वाद्य-यंत्र बनाते थे। गाँवों में जब भी कोई त्योहार या उत्सव मनाया जाता, जब वाद्य बजाने के लिए माला जाति के लोगों को बुलाया जाता था।

मादिगा जाति के ज़्यादातर लोग चमार थे। ये लोग चमड़े का काम करते थे। जूते-चप्पल बनाना इनका मुख्य पेशा रहा।

येरुकला जाति के लोग छोटे समझे जाने वाले काम करते थे। टोकरी-चटाई बनाना, रस्सी बनाना, सूअर-मुर्गी पालना जैसे काम येरुकला जाति के लोग करते थे। येरुकला जाति की भी अपनी एक अलग ख़ासियत है। शताब्दियों से इस जाति की महिलाएँ लोगों का चेहरा देखकर उनका भविष्य बताती आयी हैं। परेशानियाँ दूर करने के मक़सद से ये लोगों को पहनने के लिए तावीज़ देती हैं। इन तीन जातियों के लोगों के साथ छुआछूत वाला मामला नेल्लूर में भी था। छुआछूत की एक बड़ी वजह इन लोगों का गोमांस का सेवन करना था। इतना ही नहीं, इन जातियों के लोग जो काम करते थे, उन्हें बहुत हीन माना जाता था।

नेल्लूर ज़िले में यानादि जाति के लोग भी रहते थे। ये लोग मूलतः आदिवासी थे, लेकिन सत्रहवीं शताब्दी में समाज की मुख्यधारा में आ गये। इस जाति के लोग जानवरों का शिकार कर अपना पेट भरते थे। इस जाति के ज़्यादातर लोग श्रीहरिकोटा द्वीप में रहा करते थे। कहा जाता है कि उन दिनों खेतों में काम करते समय विषैले साँपों के काटने से किसानों और मजदूरों की मौत की घटनाएँ आम बात थी। लेकिन दिन-ब-दिन बढ़ते मामलों से परेशान लोगों ने साँपों को मारने के लिए यानादि जाति के लोगों की मदद लेनी शुरू की और इस तरह से ये आदिवासी समाज की मुख्यधारा में आ गये। जानकार बताते हैं कि यानादि शब्द 'अनादि' शब्द का अपभ्रंश है। चूँकि आदिकाल से यानादि जाति के लोग जंगलों में रहे हैं, वे पहले कपड़े नहीं पहना करते थे। लेकिन जब ये लोग समाज की मुख्यधारा में शामिल हुए, उन्हें कपड़े पहनने के लिए मजबूर किया गया। इस जाति के लोगों की यह ख़ासियत थी कि ये लोग अन्य सभी लोगों की तुलना में सबसे कम कपड़े पहना करते थे।

नेल्लूर ज़िले के गाँवों में निचली जातियों में सबसे ऊँचा स्थान यादवों का था। रेड्डी ज़मींदार यादवों से अच्छे से पेश आते थे। ज़मींदारों के खेतों और मकानों में काम करने के अलावा यादव इनके पशुओं - गाय, बैल, बकरी, भेड़ आदि की देखभाल किया करते थे। यादवों को ज़मींदारों की कोठी में प्रवेश का अधिकार था। शयन-कक्ष रसोई-घर और पूजा-घर को छोड़कर यादव ज़मींदारों की कोठी में कहीं भी आ-जा सकते थे।

वेंकट सुबय्या को भरोसा था कि ज़मींदार पढ़ाई-लिखाई में सुंदरय्या की मदद करेंगे। जब वेंकट सुबय्या ने अपने छोटे भाई को स्कूल भिजवाने की बात कही, तब ज़मींदार ने न सिर्फ़ पटिया और चाक के टुकड़े दिये, बल्कि सुंदरय्या के लिए नये कपड़े भी सिलवाये। इससे ज़मींदार के प्रति वेंकट सुबय्या और सुंदरय्या के मन में सम्मान और भी बढ़ गया।

अब बालक सुंदरय्या हर रोज़ जोश और उत्साह के साथ स्कूल जाने लगे। नये कपड़े, नयी चप्पल और पढ़ने-लिखने का नया सामान साथ होने की वजह से अब सुंदरय्या की चाल में तेज़ी आ गयी। बीस किलोमीटर का सफ़र आसान जान पड़ने लगा।

सुंदरय्या ने हमेशा मन लगाकर पढ़ाई-लिखाई की। हर शिक्षक की हर बात मानी। ख़ूब मेहनत करनी शुरू की। मेहनत का नतीजा यह हुआ कि हर परीक्षा में अच्छे नंबर मिलने शुरू हुए।

सुंदरय्या की स्मरण-शक्ति ग़ज़ब की थी। जिस बात को एक बार सुन लेते थे, उसे मन-मस्तिष्क में गाँठ बाँधकर बिठा लेते थे। सुनी हुई बात याद रखने की उनकी आदत विद्यार्थी के नाते फ़ायदेमंद साबित होने लगी। वे साल-दर-साल परीक्षाएँ पास करते हुए कक्षा-दर-कक्षा आगे बढ़ते चले गये।

भाभी हर दिन दोपहर का भोजन एक डिब्बे में रखकर सुंदरय्या को दे दिया करती थीं। लेकिन जिन दिनों सुबह सवेरे खेत में काम करने जाना होता, उन दिनों भाभी सुंदरय्या के लिए दोपहर का भोजन नहीं बना पातीं। ऐसी हालत में सुंदरय्या को स्कूल के पास ज़मींदारों की मदद लेनी पड़ती थी। वे किसी दिन एक ज़मींदार के यहाँ भोजन माँगने चले जाते, तो अगले दिन दूसरे ज़मींदार के यहाँ। इसी तरह ज़मींदारों और रईस लोगों के यहाँ दोपहर का भोजन करते हुए सुंदरय्या ने अपनी पढ़ाई-लिखाई आगे बढ़ाई।

छुट्टी वाले दिन सुंदरय्या घर पर खाली नहीं बैठते थे। वे खेत में जाकर काम में अपने बड़े भाई का हाथ बंटाते या फिर भेड़-बकरियों को चराने ले जाते। बुलावा आने पर ज़मींदार के यहाँ जाकर काम भी करते। सुंदरय्या स्वभाव से मेहनती थे। उन्हें काम से कोई परहेज़ नहीं था। हर तरह के काम करने के लिए तैयार रहते थे। उम्र अभी बारह साल की भी नहीं हुई थी कि खेतों में बुवाई, कटाई, और निराई-गुड़ाई का काम सीख लिया था।

खेलकूद में भी सुंदरय्या हमेशा आगे रहे। जब भी समय मिलता, वे अपने दोस्तों के साथ मिलकर कबड्डी खेला करते। छापा मारने में सुंदरय्या ने महारत हासिल कर ली थी। अपने खेमे में आये प्रतिद्वंद्वी की टाँग और जाँघ सुंदरय्या कुछ इस तरह कस के पकड़ते थे कि प्रतिद्वंद्वी चारों खाने चित होकर गिर जाता था। मैदान में आक्रमण और रक्षा, दोनों में निपुणता हासिल कर ली थी। स्थिति-परिस्थिति और प्रतिद्वंद्वियों के कौशल को ध्यान में रखते हुए सुंदरय्या रणनीति बनाते थे। विद्यालय हो या खेल का मैदान, या फिर खेत-खलिहान, सुंदरय्या हर काम मन लगाकर पूरी एकाग्रता के साथ करते थे।

जब सुंदरय्या सातवीं कक्षा की परीक्षाएँ पास कर हाई स्कूल में पहुँचे, तब उनका ध्यान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की गतिविधियों की ओर आकर्षित हुआ। उन दिनों आज़ादी की लड़ाई चरम पर पहुँच गयी थी। देश-भर में अंगेज़ों के ख़िलाफ़ प्रदर्शन हो रहे थे। कोई भी शहर, गाँव, क़स्बा, मोहल्ला आज़ादी की लड़ाई से अछूता नहीं था। भारत को अंग्रेज़ों के शासन से मुक्त कराने के मक़सद से तरह-तरह के आंदोलन किये जा रहे थे। अंग्रेज़ी सत्ता को भारत की ज़मीन से उखाड़ फेंकने के लिए शुरू हुए महायुद्ध में महात्मा गांधी महानायक बनकर उभरे थे।

साल 1942 में अगस्त के महीने में बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के महाधवेशन का आयोजन किया गया। कांग्रेस के सभी बड़े नेता इस अधिवेशन में शामिल हुए। इसी अधिवेशन में महात्मा गांधी ने देशवासियों को आज़ादी के लिए 'करो या मरो' का नारा दिया। इतना ही नहीं, 8 अगस्त को इसी अधिवेशन में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ 'भारत छोड़ो आंदोलन' शुरू करने का एलान किया गया। इस एलान की वजह से देश-भर में एक व्यापक और तीव्र जन-क्रांति की शुरुआत हुई। अंग्रेज़ी हुकूमत ने 9 अगस्त 1942 को महात्मा गांधी और कांग्रेस के अन्य सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ़्तार कर अलग-अलग जेलों में डाल दिया। इन गिरफ़्तारियों की वजह से अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ जनता का आक्रोश और भी बढ़ गया। अंग्रेज़ विरोधी आंदोलन तीव्र हो गया। अंग्रेज़ सरकार की नींद हराम हो गयी। इस आंदोलन की वजह से अंग्रेज़ कमज़ोर पड़ने लगे। अंग्रेज़ों के कमज़ोर पड़ने की एक और बड़ी वजह थी। ब्रिटेन दूसरे विश्व युद्ध में उलझा हुआ था। युद्ध की वजह से ब्रिटेन को भारी नुक़सान हो रहा था। दुश्मन देश ख़ासकर जर्मनी के निशाने पर ब्रिटेन ही था। 1 सितंबर 1939 को द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत हुई थी। जर्मनी के शासक हिटलर ने पोलैंड पर आक्रमण किया था। इस आक्रमण के साथ ही द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत हो गयी थी। इस युद्ध की वजह से विश्व दो गुटों मे बँट गया - मित्र राष्ट्र और धुरी राष्ट्र। ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, चीन और इनके मित्र देश 'मित्र राष्ट्र' में थे, जबकि जर्मनी, जापान, इटली और उनके साथी देश 'धुरी राष्ट्र' में। युद्ध बहुत भीषण था। सत्तर से ज़्यादा देशों की थल, जल और वायु सेनाएँ इस युद्ध में सम्मिलित थीं। करोड़ों सैनिक जंग के मैदान में थे। दुनिया के कई हिस्सों में गोलीबारी, गोलाबारी लगातार हो रही थी। जर्मनी के लगातार हमलों की

वजह से सबसे ज़्यादा नुक़सान ब्रिटेन को रहा रहा था। उसके उपनिवेशीय देशों में भी हमले हो रहे थे। लगातार हो रहे इन हमलों और आज़ादी के लिए लोगों की जंग की वजह से ब्रिटेन की उपनिवेशीय देशों पर पकड़ कमज़ोर होने लगी थी। अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ जंग के लिए 'आज़ाद हिंद फ़ौज' बनाने वाले क्रांतिकारी नेता सुभाषचंद्र बोस ने जर्मनी और जापान का साथ देना शुरू कर दिया था। जापानी सेना ने मलेशिया, सिंगापुर और बर्मा में ज़बरदस्त हवाई आक्रमण कर अंग्रेज़ों को खदेड़ दिया था। ये तीनों देश अंग्रेज़ों के उपनिवेशीय इलाक़े थे।

इधर भारत में मुसलमानों के लिए अलग मुल्क की माँग की वजह से कई इलाक़ों में सांप्रदायिक तनाव का माहौल बनने लगा था। 'पाकिस्तान' की माँग ने कई प्रांतों, ख़ासकर पंजाब और बंगाल में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच नफ़रत पैदा करनी शुरू कर दी थी। वैसे तो 1930 में ही मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के लिए अलग देश की माँग उठानी शुरू कर दी थी, लेकिन चालीस के दशक की शुरुआत में इस माँग ने ज़ोर पकड़ लिया और राजनीतिक माहौल काफ़ी गरमा गया। हिंदू और सिख एक साथ हो गये। मुसलमान दूसरी तरफ़ हो गये। दोनों पक्षों का एक-दूसरे पर विश्वास कम होने लगा था। दोनों पक्षों के बीच प्यार, मोहब्बत, दोस्ती कम होने लगी थी। एक-दूसरे पर शक और अविश्वास बढ़ने लगा था। लोगों के व्यवहार से शहरों में यह अविश्वास साफ़ दिखाई देता था। गाँवों में हालात इतने ख़राब नहीं थे।

नेल्लूर में सांप्रदायिक तनाव जैसी कोई बात नहीं थी। नेल्लूर हमेशा सांप्रदायिक तनाव, जाति और धर्म के नाम पर हिंसा से अछूता रहा। नेल्लूर उन दिनों मद्रास प्रेसीडेंसी का हिस्सा था।

लेकिन चालीस के दशक में यहाँ भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की गतिविधियाँ बढ़ने लगीं। संघ की शाखाओं का नियमित रूप में आयोजन किया जाने लगा। विचारक और चिंतक डॉक्टर केशव बलिराम हेडगेवार ने साल 1925 में विजयदशमी के दिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की थी। उनका कहना और मानना था कि, "हिंदू संस्कृति हिंदुस्तान की धड़कन है। इसलिए यह साफ़ है कि अगर हिंदुस्तान की सुरक्षा करनी है, तो पहले हमें हिंदू संस्कृति को सँवारना होगा। ये याद रखा जाना ज़रूरी है कि ताक़त संगठन के ज़रिये आती है। इसलिए ये हर हिंदू का

कर्तव्य है कि वह हिंदू समाज को मज़बूत बनाने के लिए हर संभव कोशिश करे। संघ इसी लक्ष्य के लिए काम कर रहा है। देश का मौजूदा भाग्य तब तक नहीं बदल सकता, जब तक लाखों नौजवान इस लक्ष्य के लिए अपना जीवन नहीं लगाते। इसी के प्रति युवाओं की सोच को बदलना संघ का परम लक्ष्य है।" इसी विचार को केंद्र में रखते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की गतिविधियाँ आगे बढ़ीं।

संघ के शुरुआती दिनों में डॉक्टर हेडगेवार को भैयाजी दाणी, बाबासाहेब आप्टे, बालासाहेब देवरस और मधुकर राव भागवत जैसे नेताओं का साथ मिला। संघ की नींव महाराष्ट्र के नागपुर में रखी गयी थी। धीरे-धीरे देश के अलग-अलग शहरों और गाँवों में संघ की गतिविधियों को शुरू किया गया। स्वयं डॉ. हेडगेवार ने कई इलाक़ों का दौरा किया। कई सभाओं को संबोधित किया और लोगों को संघ की विचारधार और लक्ष्यों के बारे में समझाया। 21 जून, 1940 को डॉ. हेडगेवार का निधन हो गया। उनके अनुयायी माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर संघ के नये मुखिया बने और संगठन के विस्तार में जी-जान लगाना शुरू किया।

एक दिन सुबह अपने गाँव में किशोर सुंदरय्या ने देखा कि कुछ युवक मार्च करते हुए आगे बढ़े जा रहे हैं। ये सभी युवक सफ़ेद क़मीज़ और ख़ाकी हाफ पैंट पहने हुए हैं। सभी के हाथ में लाठी थी। कई युवकों को एक साथ क़दम से क़दम मिलाकर आगे बढ़ता देखकर किशोर सुंदरय्या का मन भी इस समूह में शामिल होने को मचलने लगा। युवाओं के इस समूह में गाँव के कुछ युवक भी थे। क़दमताल के बीच परिचित लोगों से प्रश्न पूछना सुंदरय्या को ठीक नहीं लगा। किशोर मन ने फ़ैसला किया कि शाम के समय वे इस समूह के बारे में पता लगाएँगे और इसके साथ जुड़ेंगे।

दिन-भर सुंदरय्या का मन बेचैन रहा। युवकों की उस टोली के बारे में जानने की उत्सुकता उन्हें बेचैन करती रही। शाम होते ही सुंदरय्या एक परिचित युवक के घर पहुँचे, जो उस टोली का हिस्सा था। सुंदरय्या को 'क़दमताल' से प्रभावित जानकर युवक गदगद हो गया। उसने बिना समय गँवाये सुंदरय्या को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसकी गतिविधियों के बारे में बताया। युवक की बातों का असर सुंदरय्या पर कुछ यूँ हुआ कि स्वयंसेवक बनने का फ़ैसला वहीं उसी वक़्त ले लिया गया। वह युवक सुंदरय्या को सीधे उस उद्यान में ले गया, जहाँ युवक जुट रहे थे। उस युवक

ने सुंदरय्या को समझाया कि संघ के कार्यकर्ता को स्वयंसेवक कहा जाता है और सभी स्वयंसेवक सुबह और शाम को एक जगह जमा होते हैं। जिस जगह स्वयंसेवक जमा होते हैं, उसे शाखा कहा जाता है। आमतौर पर युवकों और बड़ी उम्र के लोगों की शाखा सुबह और विद्यार्थियों की शाखा शाम को लगायी जाती है। वैसे तो किसी भी शाखा में किसी भी उम्र का कोई भी व्यक्ति शामिल हो सकता है। शाखा का समय एक घंटा होता है। ज़रूरत के मुताबिक़ इसे कम या ज़्यादा किया जाता है। शाखा के बारे में समझाने के बाद उस युवक ने सुंदरय्या का परिचय शाखा का संचालन करने वाले व्यक्ति से करवाया। इसके कुछ देर बाद जब सभी स्वयंसेवक जुट गये, तब भगवा ध्वज फहराया गया और सभी स्वयंसेवकों ने ध्वज को सलामी दी। सुंदरय्या ने ठीक वैसे ही किया, जैसे कि स्वयंसेवक कर रहे थे। ध्वज-वंदना होने के बाद शाखा प्रमुख ने सभी स्वयंसेवकों से सुंदरय्या का परिचर करवाया। जब परिचय करवाया जा रहा था, तब ख़ुशी और गर्व से सुंदरय्या का सीना चौड़ा हुआ जा रहा था। किशोर मन में तरह-तरह के ख़याल आ रहे थे। सुंदरय्या को लग रहा था कि अब उनका जीवन सही रास्ते पर आया है। अब तक वे बिना किसी लक्ष्य के जीवन जी रहे थे। लेकिन अब उन्हें जीवन का लक्ष्य मिल गया है। किशोर सुंदरय्या ने मन ही मन प्रण लिया कि अब से उनका जीवन राष्ट्र और हिंदूजनों की सेवा में समर्पित रहेगा। हिंदू संस्कृति की रक्षा में वे अपना तन-मन लगा देंगे।

सुंदरय्या ने पहले दिन से ही शाखा की गतिविधियों में हिस्सा लेना शुरू कर दिया। पहले दिन नये साथियों के साथ कसरत करते हुए सुंदरय्या को आनंद मिला। कसरत करवाने के बाद शाखा प्रमुख ने स्वयंसेवकों को अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ चल रही लड़ाई के बारे में बताया। स्वयंसेवकों को यह भी बताया गया कि किस तरह पाकिस्तान की माँग की वजह से बंगाल और पंजाब में तनाव है। कई स्वयंसेवकों को यह जानकर बुरा लगा कि देश के कुछ हिस्सों में हिंदुओं पर हमले किये जा रहे हैं। शाखा प्रमुख ने बंगाल में हुई कुछ घटनाओं का ज़िक्र भी किया।

शाखा ख़त्म होने पर दूसरे सभी स्वयंसेवकों की तरह सुंदरय्या भी अपने घर लौट आये। लेकिन उस रात उन्हें नींद नहीं आयी। उनके मन में हिंदुओं पर हो रहे हमले की बात गूँज रही थी। मन विचलित हुआ जा रहा था। सुंदरय्या को यक़ीन हो गया कि अंग्रेज़ों और पाकिस्तान की माँग करने वाले मुसलमानों की वजह से हिंदू

जन और हिंदू संस्कृति ख़तरे में है। इसके बाद से संघ की शाखा में सम्मिलित होना सुंदरय्या की आदतों में शुमार हो गया। पढ़ाई-लिखाई जारी रही, खेल-कूद जारी रहा, साथ ही सुंदरय्या के मन-मस्तिष्क पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा का प्रभाव लगातार बढ़ता चला गया। पंद्रह बरस की उम्र में सुंदरय्या दसवीं कक्षा में पहुँच गये।

एक दिन की बात है। सुंदरय्या संघ की शाखा में सम्मिलित होने के बाद अपने घर लौटे। घर पहुँचने पर उन्होंने देखा कि रिश्ते में बुआ लगने वाली आदियम्मा आयी हुई हैं। आदियम्मा ने जैसे ही अपने भतीजे को देखा, वे उसकी तरफ़ दौड़ीं और सुंदरय्या को अपनी बाहों में भर लिया। इसके बाद अपने साथ लायी एक थैली में से स्टेथोस्कोप निकाला और उसे सुंदरय्या के गले में डाल दिया। सुंदरय्या की समझ में नहीं आया कि बुआ ने आख़िर ऐसा क्यों किया। सुंदरय्या ने पहले एक-दो बार डॉक्टर के गले में स्टेथोस्कोप देखा था, लेकिन वे सही से नहीं जानते थे कि यह उपकरण किस काम का है और इसका नाम क्या है? सुंदरय्या के चेहरे से छलक रही बेचैनी और सवालों की झड़ी को देखकर बुआ ने कहा, "सुंदर, तुम्हें डॉक्टर बनना है। तुम कुछ और नहीं बल्कि डॉक्टर बनोगे। डॉक्टर बनकर लोगों की सेवा करोगे। देखो नेल्लूर-भर में कितने डॉक्टर हैं... दो या तीन बस। ये सभी नेल्लूर शहर में रहते हैं और वहीं लोगों का इलाज करते हैं। लोगों को इलाज के लिए दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। तुम डॉक्टर बनो और गाँवों में बीमार लोगों का इलाज करो।"

यह सुनकर सुंदरय्या आश्चर्य के सागर में गोते खाने लगे। उनके मन में सवाल खड़ा हुआ कि आख़िर बुआ उनसे डॉक्टर बनने को क्यों कह रही हैं? अपनी बात कहने के लिए बुआ को नाटकीय होने की क्या ज़रूरत थी? क्या ज़रूरत थी वह उपकरण ख़रीदने की, जो डॉक्टर इस्तेमाल करते हैं? आख़िर इस उपकरण को लाकर उनके गले में डालने से किसी को क्या हासिल होने वाला है?

संघ से जुड़ते ही सुंदरय्या को लगा था कि जीवन में अब उन्हें अपना लक्ष्य मिल गया है, जीवन का अर्थ समझ आ गया है, तब फिर क्यों बीच में बुआ इस तरह से आकर खड़ी हुई हैं?

सुंदरय्या अच्छे से जानते थे कि उनकी सबसे बड़ी हितैषियों में बुआ सबसे

आगे हैं। उन्हें यह मालूम था कि बुआ बहुत बुद्धिमान हैं और दुनिया-भर में हो रही बड़ी घटनाओं की जानकारियाँ जुटाती हैं। सभी बुआ आदियम्मा का बहुत आदर करते थे। उनकी बात को सभी मानते थे।

काफ़ी असहज महसूस कर रहे अपने भतीजे की भाव-भंगिमाओं को देखकर आदियम्मा ने पूछा, "सुंदर, तुम परेशान लग रहे हो? क्या बात है?

सुंदरय्या चुप रहे। बुआ ने आगे कहा, "अपनी बुआ को नहीं बताओगे?"

यह सुनकर सुंदरय्या कहने लगे, "बुआ, मैं स्वयंसेवक बन गया हूँ। मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ हूँ। मैं हर दिन शाखा जाता हूँ। मैंने वहाँ बहुत कुछ सीखा है। मैंने फ़ैसला कर लिया है कि मैं ज़िंदगी-भर स्वयंसेवक के तौर पर लोगों की सेवा करता रहूँगा। हिंदू संस्कृति ख़तरे में है। हिंदुओं पर हमले हो रहे हैं। अपने भाई-बहनों को बचाना हमारी ज़िम्मेदारी है।"

इतना कहने के बाद सुंदरय्या चुप हो गये। बुआ समझदार थीं। तेज़ दिमाग़ वाली महिला थीं। दुनिया-भर की ख़बर रखती थीं। अपने भतीजे की दुविधा समझने में उन्हें देर न लगी। समझाने की कोशिश करते हुए आदियम्मा ने कहा, "देखो सुंदर, तुम स्वयंसेवक बने रहो। संघ के साथ जुड़े रहो। तुम्हें कोई नहीं रोक रहा है। मैं भी तो वही कह रही हूँ, जो संघ कह रहा है। तुम लोगों की सेवा करो। अपना जीवन ग़रीब लोगों की सेवा में समर्पित करो। डॉक्टर बनकर तुम कई लोगों की मदद कर सकते हो। यही मदद देश की सेवा भी है। देखो, इसी गाँव में कितने लोग ग़रीब हैं। निःसहाय हैं। इनकी देखबाल करने वाला कोई नहीं है। बीमार होते हैं तो इलाज करने वाला कोई नहीं है। इलाज करवाने वाला भी कोई नहीं है। तुम डॉक्टर बनकर इन लोगों की मदद करो।"

बुआ नहीं रुकीं। वे आगे बोलीं, "तुम होशियार हो। पढ़ाई-लिखाई में तेज़ हो। तुम्हारा भविष्य बहुत उज्ज्वल है। तुम अपनी ताक़त का फ़ायदा उठाओ। तुम आसानी से डॉक्टर बन सकते हो। डॉक्टर बनो और ग़रीबों का इलाज करते हुए देश की सेवा करो। अच्छे से समझो, ग़रीबों की सेवा करने, लोगों को उनकी बीमारियों से छुटकारा दिलाने से बड़ी राष्ट्र-सेवा दूजी नहीं है।"

इस बार बुआ की बातों ने सुंदरय्या के मन-मस्तिष्क पर जादुई असर डाला। किशोर सुंदर ने अब एक नया प्रण लिया। प्रण था, डॉक्टर बनने का। डॉक्टर बनकर

लोगों की सेवा करने का, ग़रीब लोगों का इलाज करने का। साथ ही संघ की गतिविधियों में सक्रिय रूप से हिस्सा लेने का। सुंदरय्या की आँखों में नया उत्साह और जोश देखते ही बुआ समझ गयीं कि उनका भतीजा अब सही रास्ते पर आ जाएगा। भतीजे को उसका जीवन लक्ष्य मिल गया है।

इस घटना के अगले दिन सुंदरय्या जब शाखा में पहुँचे, तब उन्होंने अपने कुछ साथियों को डॉक्टर बनने के नये लक्ष्य के बारे में बताया। साथियों ने सुंदरय्या को यक़ीन दिलाया कि डॉक्टर बनकर कई लोगों की सेवा की जा सकती है। एक साथी ने कहा, "डॉक्टर भगवान का रूप होते हैं। वे जान बचाते हैं। दर्द दूर करते हैं। बीमारी दूर भगाते हैं। हमारे देश में डॉक्टरों की कमी है।" इस तरह की बातों से सुंदरय्या का हौसला बुलंद हो गया।

अब उनका बस एक ही लक्ष्य था - शानदार नंबरों से दसवीं की परीक्षा पास करना और डॉक्टर बनने के लिए अच्छे कॉलेज में दाख़िला लेना। सुंदरय्या ने पूरी तन्मयता के साथ पढ़ाई करनी शुरू की। शाखा जाना जारी रहा। सफ़ेद क़मीज़ और ख़ाकी हाफ पैंट पहनकर सुंदरय्या काफ़ी गौरवान्वित महसूस करते थे। प्रभातफेरी में साथियों के साथ क़दम से क़दम मिलाकर आगे बढ़ते समय उनकी ख़ुशी चरम पर होती। किशोरावस्था में थे, लेकिन सुंदरय्या यह मानने लगे थे कि अगर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नहीं होता, तो हिंदुओं पर लगातार हमले हो रहे होते और उन्हें डरा-धमकाकर उनका धर्म-परिवर्तन करवाया जा रहा होता।

दसवीं कक्षा के दौरान हुई हर परीक्षा में सुंदरय्या को शानदार नंबर मिले। वार्षिक परीक्षा में भी सुंदरय्या का प्रदर्शन शानदार रहा। उन्हें कुल 62 फ़ीसदी अंक मिले। उन दिनों इतने अंक पाना बड़ी कामयाबी मानी जाती थी। बहुत कम बच्चे स्कूल जाया करते थे। सरकारी स्कूलों में ज़्यादातर बच्चे ग़रीब परिवारों से हुआ करते थे। इनमें से कई बच्चे कई कारणों से बीच में स्कूल छोड़ने को मजबूर हो जाते थे। जो बच्चे दसवीं तक पहुँच पाते थे, उनमें से बहुत कम बच्चे परीक्षा पास हो पाते थे। अंग्रेज़ों का ज़माना था और दसवीं पास करने का मतलब था सरकारी नौकरी पक्की हो जाना। कई सरकारी स्कूलों में बमुश्किल बीस फ़ीसदी बच्चे दसवीं की वार्षिक परीक्षा पास कर पाते थे। जो बच्चे दसवीं पास करते थे, उनमें से कुछ ही आगे की पढ़ाई करते थे। ज़्यादातर बच्चे अपने परिवार के पुश्तैनी काम में लग जाते

थे या फिर नौकरी की तलाश में जुट जाते थे। चूँकि उन दिनों शिक्षित लोगों की कमी थी, दसवीं पास होते ही नौकरी मिलना तय माना जाता था।

रईस, रसूख़दार और अफ़सरों के बच्चे अंग्रेज़ी मीडियम स्कूलों में पढ़ने जाया करते थे। अंग्रेज़ों ने अपने बच्चों की शिक्षा के लिए देश के कई हिस्सों में अंग्रेज़ी मीडियम स्कूल शुरू किये थे। इन बच्चों की शिक्षा के लिए यूरोप ख़ासकर ब्रिटेन से शिक्षक भारत बुलवाये गये थे। ईसाई मिशनरियों ने भी कई स्कूल खोले थे। इन स्कूल के ज़्यादातर शिक्षक पादरी थे। ईसाई ननें भी इन मिशनरी स्कूलों में विद्यार्थियों को पढ़ाया करती थीं। कई हिंदू अपने बच्चों को इन स्कूलों में नहीं भेजते थे। इन लोगों को शक था कि ऐसे स्कूलों में ईसाई धर्म का प्रचार किया जाता है और बच्चों के मन-मस्तिष्क को प्रभावित करते हुए उन्हें ईसाई धर्म अपनाने के लिए बहलाया-फुसलाया जाता है।

सुंदरय्या की सारी स्कूली शिक्षा तेलुगु मीडियम स्कूल में हुई। उनके सभी शिक्षक हिंदू थे। सुंदरय्या को स्कूल में हुई किसी परीक्षा में अव्वल नंबर नहीं मिले, वे कभी क्लास में फ़र्स्ट नहीं आये। लेकिन वे हमेशा फ़र्स्ट रैंकर से ज़्यादा पीछे नहीं रहे। उनका रैंक तीसरा होता या फिर चौथा। दसवीं की वार्षिक परीक्षा में उन्हें स्कूल में तीसरा रैंक मिला।

इस शानदार प्रदर्शन पर सुंदरय्या के बाद अगर कोई सबसे ज़्यादा ख़ुश था, तो वे बुआ आदियम्मा थीं। दसवीं के परिणाम देखने के बाद बुआ को यक़ीन हो गया कि उनका भतीजा डॉक्टर बनने की राह पर चल पड़ा है।

सुंदरय्या के मामले में एक और ख़ास बात थी। निचली मानी जाने वाली जातियों के बच्चों में उनका प्रदर्शन सबसे बढ़िया था। इन जातियों के बहुत कम बच्चे दसवीं तक पहुँच पाते थे। जो बच्चे पहुँच भी जाते, उनमें से ज़्यादातर बच्चे परीक्षा पास नहीं कर पाते थे। जो बच्चे पास होते, उनमें से ज़्यादातर बच्चों को पचास फ़ीसदी से कम नंबर मिल पाते थे। गाय-भैंस पालने वाले, भेड़-बकरियाँ चराने वाले और खेतों में मज़दूरी करने वाले परिवार से आने वाले एक लड़के यानी सुंदरय्या ने साठ फ़ीसदी से ज़्यादा नंबर लाकर दसवीं की परीक्षा पास की थी। उन दिनों की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिस्थियों को ध्यान में रखते हुए यह कोई साधारण घटना नहीं थी।

वैसे भी भारत-भर में एक सामाजिक क्रांति की शुरुआत हो चुकी थी। जाति के नाम पर भेदभाव, हिंसा और छुआछूत के ख़िलाफ़ आंदोलन शुरू हो चुके थे। इस तरह के सबसे बड़े आंदोलन की अगुवाई कर रहे थे भीमराव रामजी अम्बेडकर, जो डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर के नाम से लोकप्रिय हुए। 14 अप्रैल 1891 को मध्य भारत के महू नगर सैन्य छावनी में जन्मे अम्बेडकर दलितों, अछूत जनों, शोषित वर्ग और महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष करने वाले महानायक के रूप में उभरे। अम्बेडकर का जन्म अछूत मानी जाने वाली महार जाति में हुआ था। अम्बेडकर के पूर्वज लंबे समय से ब्रिटेन की ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में कार्यरत थे। इनके पिता रामजी सकपाल, भारतीय सेना की महू छावनी में सेवारत थे। निचली जाति का होने की वजह से अम्बेडकर को भी बचपन में भेदभाव, छुआछूत, अपमानजनक टीका-टिप्पणी का शिकार होना पड़ा। स्कूली शिक्षा के दौरान अम्बेडकर को कई बार अपमान के घूँट पीने के लिए मजबूर होना पड़ा था।

अम्बेडकर की स्कूली शिक्षा महाराष्ट्र के सातारा नगर में राजवाड़ा चौक पर स्थित सरकारी हाईस्कूल में 7 नवंबर 1900 को शुरू हुई थी। जब 1904 में अम्बेडकर के परिवार को बंबई शिफ़्ट होना पड़ा, तब उनका दाख़िला महानगर के एल्फिंस्टोन रोड पर स्थित सरकारी हाईस्कूल में करवाया गया। अम्बेडकर ने 1907 में मैट्रिक परीक्षा पास की। उन दिनों अछूत मानी जाने वाली जातियों के बच्चों को स्कूलों में दाख़िला नहीं दिया जाता था। लेकिन अंग्रेज़ी हुकूमत द्वारा शुरू किये गये सुधार-कार्यों की वजह से इन्हें भी शिक्षा का अधिकार मिला। इसी वजह से अम्बेडकर स्कूल जा पाये। मैट्रिक पास करने वाले महार जाति के पहले विद्यार्थी शायद अम्बेडकर ही थे। मैट्रिक पास करने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए अम्बेडकर ने बॉम्बे विश्वविद्यालय से संबद्ध एल्फिंस्टन कॉलेज में दाख़िला ले लिया। 1912 में उन्होंने बॉम्बे विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र और राजनीतिक विज्ञान में बैचलर ऑफ़ आर्ट्स(बी.ए.) की डिग्री हासिल की। डिग्री मिलने के बाद वे बड़ौदा राज्य सरकार के लिए काम करने लगे। हुआ यूँ था कि जब अम्बेडकर बी.ए. की पढ़ाई कर रहे थे, तब उनके पिता उनकी शिक्षा पर होने वाले ख़र्च का भार उठाने में अक्षम हो गये। उन दिनों के जाने-माने समाज-सुधारक और मराठी साहित्यकार कृष्णजी अर्जुन केलुसकर ने बड़ौदा सरकार से अम्बेडकर को छात्रवृत्ति दिलवायी। इसी वजह से डिग्री

मिलने के बाद अम्बेडकर को बदोड़ा सरकार के लिए काम करने को बाध्य होना पड़ा। 2 फरवरी 1913 को अम्बेडकर के पिता का निधन हो गया। इसी साल वे मास्टर ऑफ़ आर्ट्स (एम.ए.) की पढ़ाई के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका चले गये। 1915 में उन्हें कोलंबिया विश्वविद्यालय से एम.ए. की डिग्री हासिल हुई। एम.ए. की पढ़ाई के दौरान अर्थशास्त्र उनका मुख्य विषय रहा। अम्बेडकर ने कोलंबिया विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र, इतिहास, दर्शनशास्त्र और मानवविज्ञान की भी पढ़ाई की। एम.ए. की पढ़ाई के दौरान उन्होंने 'प्राचीन भारतीय वाणिज्य' शीर्षक से एक शोध-पत्र प्रस्तुस्त किया था। अमेरिका-प्रवास के दौरान अम्बेडकर को मशहूर मानवविज्ञानी डॉ. अलेक्जेंडर गोल्डनवेइज़र का एक चर्चित शोध-पत्र पढ़ने का मौक़ा मिला। इस शोध-पत्र का विषय 'भारत में जातियाँ : उनकी तंत्र, उत्पत्ति और विकास' था। इस शोध-पत्र को पढ़ने के बाद अम्बेडकर ने अपने शोध और अध्ययन के काम जारी रखने का फ़ैसला किया। उन्होंने 'नेशनल डिविडेंड ऑफ़ इंडिया—ए हिस्टोरिक एंड एनालिटिकल स्टडी' विषय पर एक शानदार शोध-पत्र तैयार किया।

इसके बाद अर्थशास्त्र और राजनीति का अध्ययन करने के लिए अम्बेडकर अमेरिका से लंदन चले गये। अध्ययन जारी था कि बड़ौदा सरकार की ओर से विदेश में मिल रही छात्रवृत्ति समाप्त हो गयी और इस वजह से उन्हें भारत लौटना पड़ा। भारत लौटने के बाद बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय ने अम्बेडकर को अपना 'रक्षा सचिव' नियुक्त किया। लेकिन बड़ौदा में जाति के नाम पर भीमराव से भेदभाव किया गया। विलायत में उच्च शिक्षा लेने के बावजूद जाति की वजह से उनका विरोध किया गया, एक मायने में यह सामाजिक बहिष्कार था। अम्बेडकर नवंबर 1917 में बंबई लौट आये।

आजीविका के लिए अम्बेडकर ने निजी ट्यूटर और एकाउंटेंट के रूप में काम करना शुरू किया। उन्होंने अपनी ख़ुद की कंसल्टेंसी भी शुरू की। अछूत जाति से ताल्लुक़ रखने की वजह से कई लोगों ने अम्बेडकर को काम नहीं दिया और इस वजह से उनकी कंसल्टेंसी नहीं चल पायी।

इसके बाद अम्बेडकर ने बंबई के सिडेनहैम कॉलेज ऑफ़ कॉमर्स एंड इक्नोमिक्स में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफ़ेसर के रूप में काम करना शुरू किया।

पिछड़ी जातियों के उत्थान के लिए भीमराव ने 31 जनवरी 1920 को

'मूकनायक' नाम से एक पाक्षिक समाचार पत्र शुरू किया। यह समाचार पत्र कोल्हापुर के शाहू महाराज की मदद से शुरू किया गया था। शाहू महाराज निचली जातियों के उत्थान और विकास के पक्षधर थे। इसी दौरान अम्बेडकर ने कई सभाओं को संबोधित किया और पिछड़ी जाति के लोगों को अपने अधिकारियों और शिक्षा के लिए लड़ने को प्रेरित और प्रोत्साहित किया। आगे की पढ़ाई के लिए धन-राशि जुटा लेने के बाद सितंबर 1920 को अम्बेडकर लंदन चले गये। उन्होंने 1921 में अर्थशास्त्र में पोस्टग्रेजुएशन कोर्स पूरा किया और बैरिस्टर बने। इसके बाद 1923 में अर्थशास्त्र में 'डॉक्टर ऑफ़ साइन्स' की उपाधि हासिल की। उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय और लंदन स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स से पीएचडी की डिग्री हासिल की। विदेश में शोध-अध्ययन करने और उच्च स्तरीय शिक्षा हासिल करने के बाद अप्रैल 1923 में अम्बेडकर स्वदेश लौट आये।

भारत लौट आने के बाद भीमराव ने बॉम्बे हाईकोर्ट में प्रैक्टिस शुरू की। साथ ही भारत की आज़ादी की लड़ाई में नायक की भूमिका में आ गये। एक वकील, समाज-सुधारक, राजनेता, लेखक, संपादक के रूप में भीमराव ने दलितों, शोषित वर्ग के लोगों और महिलाओं के उत्थान और विकास के लिए तरह-तरह के कार्यक्रम आयोजित करने शुरू किये। इन सभी कार्यक्रमों ने एक सामाजिक और राजनीतिक क्रांति का रूप लिया।

अम्बेडकर ने छुआछूत के ख़िलाफ़ अपने अभियान के तहत 1924 में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य अछूत वर्ग को जीवन की मुख्यधारा में लाना और उन्हें शिक्षित करते हुए उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति सुधारना था। इस संगठन का नारा था, "शिक्षित बनो, आंदोलन करो और संगठित रहो।"

25 दिसंबर 1927 को अम्बेडकर ने एक काम कर देश-भर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। अम्बेडकर ने दलितों के साथ मिलकर हिंदुओं के प्राचीन धर्म-शास्त्र 'मनुस्मृति' की प्रतियों को आग के हवाले कर दिया। उनका कहना था कि भारतीय समाज में जो क़ानून चल रहा है, वह मनुस्मृति के आधार पर है। यह एक ब्राह्मण-प्रधान, पुरुष सत्तात्मक, भेदभाव वाला क़ानून है। इसे ख़त्म किया जाना चाहिए। 'मनुस्मृति' के ख़िलाफ़ दलितों का आक्रोश लगातार बढ़ता जा रहा था।

इस ग्रंथ में कई ऐसी बातें हैं, जिनको लेकर भीमराव का विरोध था। 'मनुस्मृति' में कहा गया है कि ब्राह्मणों की सेवा करना ही शूद्रों का मुख्य काम है। शूद्र जो कुछ करता है, उसका कर्म निष्फल होता है। इस ग्रंथ में यह भी कहा गया है कि ब्राह्मण की सम्पत्ति राजा द्वारा कभी भी नहीं ली जानी चाहिए, यह एक निश्चित नियम है, मर्यादा है, लेकिन अन्य जाति के व्यक्तियों की सम्पत्ति उनके उत्तराधिकारियों के न रहने पर राजा ले सकता है। इस पृथ्वी पर ब्राह्मण-वध के समान दूसरा कोई बड़ा पाप नहीं है। अतः राजा ब्राह्मण के वध का विचार मन में भी न लाये। इतना ही नहीं, इस ग्रंथ में यह भी लिखा है कि शूद्र को भोजन के लिए झूठा अन्न, पहनने को पुराने वस्त्र, बिछाने के लिए धान का पुआल और फ़टे-पुराने वस्त्र देना चाहिए। बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठ, मेंढक, कुत्ता, गोह, उल्लू, कौआ किसी एक की हिंसा का प्रायश्चित शूद्र की हत्या के प्रायश्चित के बराबर है, मतलब शूद्र की हत्या कुत्ता-बिल्ली की हत्या के समान है। यदि कोई शूद्र किसी द्विज को गाली देता है, तब उसकी जीभ काट देनी चाहिए, क्योंकि वह ब्रह्मा के निम्नतम अंग से पैदा हुआ है। निम्न कुल में पैदा कोई भी व्यक्ति यदि अपने से श्रेष्ठ वर्ण के व्यक्ति के साथ मार-पीट करे और उसे क्षति पहुँचाये, तब उसका क्षति के अनुपात में अंग कटवा दिया जाए। ब्रह्मा ने शूद्रों के लिए एक मात्र कर्म निश्चित किया है, वह है — गुणगान करते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना।

इसके बाद अम्बेडकर ने छुआछूत की घटनाओं को ख़त्म करने के मक़सद से एक और बड़ा काम किया। अम्बेडकर ने कहा, "छुआछूत ग़ुलामी से भी बदतर है।"

अम्बेडकर 20 मार्च 1927 को कई दलितों के साथ महाराष्ट्र राज्य के रायगढ़ ज़िले के महाड पहुँचे और वहाँ तालाब से पानी पिया। अम्बेडकर ने ख़ुद अपने हाथों से पानी पिया और दूसरे दलितों को भी तालाब का पानी पीने को कहा। उन दिनों इस तालाब पर दलितों का आना प्रतिबंधित था। गाँव के कट्टरपंथी सवर्णों ने यह प्रतिबंध लगाया हुआ था।

अम्बेडकर ने लगातार हिंदू धर्म में सवर्णों के विशेषाधिकार को चुनौती देना शुरू किया। एक के बाद एक कई आंदोलन किये। 1930 में अम्बेडकर ने नासिक के कालाराम मंदिर में दलितों के प्रवेश पर लगे प्रतिबंध के ख़िलाफ़ आंदोलन शुरू किया। दो मार्च 1930 को अम्बेडकर ने नासिक शहर मे एक जुलूस निकाला।

अम्बेडकर चाहते थे कि जुलूस में शामिल सभी दलित कालाराम मंदिर पहुँचें। मक़सद था, मंदिर में दलितों को प्रवेश दिलाना। लेकिन जब तक अम्बेडकर के नेतृत्व में लोग मंदिर पहुँचे, तब तक मंदिर के सभी दरवाज़े बंद कर दिये गये। अम्बेडकर तनाव की स्थिति नहीं चाहते थे, इस वजह से जुलूस के साथ लौट आये। अगले दिन फिर मंदिर में प्रवेश की योजना बनी। दूसरे दिन भी दलितों को प्रवेश करने नहीं दिया गया। यह सिलसिला चलता रहा। इसी बीच ब्राह्मणों और दलितों के बीच एक समझौता हुआ। इस समझौते के तहत राम नवमी के दिन निकलने वाले श्री राम रथ को खींचने का अधिकार दलितों को देने का फ़ैसला हुआ। लेकिन राम नवमी के दिन जब तक दलित मंदिर पहुँचते, सवर्ण जाति के कुछ युवक रथ लेकर चले गये। दलितों को रथ को छूने का मौक़ा भी नहीं मिला। इस घटना के बाद भी संघर्ष जारी रहा। दलितों पर हमले शुरू हुए। दलितों के बच्चों को स्कूल जाने से रोका गया। सड़क-मार्ग और दूसरे रास्ते बंद कर दिये गये। सवर्ण दुकानदारों ने सामान देना बंद कर दिया। सामाजिक बहिष्कार शुरू हुआ। लेकिन अम्बेडकर ने अपना आंदोलन बंद नहीं किया। उनका जन-जारूकता अभियान जारी रहा। अम्बेडकर ने हमेशा अहिंसा का रास्ता चुना। आंदोलनों को हिंसक नहीं होने दिया। अम्बेडकर क़ानून को तोड़ने के पक्षधर नहीं थे।

1935 में अम्बेडकर ने महाराष्ट्र के येवला में हुई एक सभा में भाषण दिया। इस भाषण की चर्चा पूरे देश में हुई। अम्बेडकर ने पहली बार आक्रामक तेवर अपनाया था। लोगों को प्रेरित करने के मक़सद से दिये इस भाषण में अम्बेडकर ने नीची समझी जाने वाली जातियों के लोगों की पीड़ा और वेदना को व्यक्त किया। इस ऐतिहासिक भाषण में अम्बेडकर ने शोषित वर्ग को धर्म चुनने का अधिकार देने की वकालत की। अम्बेडकर ने कहा, "आप एक सम्मानजनक जीवन चाहते हैं, तो आपको अपनी मदद ख़ुद करनी होगी और यही सबसे सही मदद होगी...अगर आप आत्मसम्मान चाहते हैं, तो धर्म बदलिए। अगर एक सहयोगी समाज चाहते हैं, तो धर्म बदलिए। अगर ताक़त और सत्ता चाहते हैं, तो धर्म बदलिये। समानता ... स्वराज ... और एक ऐसी दुनिया बनाना चाहते हैं, जिसमें ख़ुशी-ख़ुशी जी सकें, तो धर्म बदलिए।"

पिछड़ी जाति के लोगों को जागरूक करने के लिए अम्बेडकर के प्रयास जारी

रहे। उनका आंदोलन जारी रहा। अब भारत में लड़ाई सिर्फ़ अंग्रेज़ों को भारत से भगाने के लिए नहीं थी, बल्कि दलित और शोषित लोगों को अन्याय, अत्याचार से मुक्ति दिलाने और उन्हें उनके अधिकार दिलाने के लिए भी थी। भारत में सिर्फ़ राजनीतिक बदलाव के लिए क्रांति नहीं हो रही थी, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव के लिए भी क्रांति का सूत्रपात हो चुका था। भीमराव अम्बेडकर की कोशिशों और उनके आंदोलनों की वजह से यह क्रांति कामयाब होती नज़र आने लगी थी।

बीसवीं सदी की शुरुआत में अंग्रेज़ों ने अपने प्रशासन में हिंदू समाज में निचली मानी जाने वाली जातियों के लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने की कोशिश शुरू कर दी थी। लेकिन सवर्णों का यह कहना था कि दलितों की प्रशासन में भागीदारी सुनिश्चित करते हुए अंग्रेज़ हिंदू धर्म को बाँटने की कोशिश कर रहे हैं। उन दिनों एक वर्ग विशेष का कहना था कि अंग्रेज़ों ने दलितों को हिंदुओं से दूर करने के लिए एक साज़िश रची है।

ब्रिटेन की अंग्रेज़ हुकूमत ने 1908 में लार्ड रिपन को भारत का गवर्नर-जनरल नियुक्त किया। लार्ड रिपन ने भारत में शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए उठाये जाने वाले क़दमों पर सुझाव देने हेतु एक कमीशन गठित किया, जिसे 'भारतीय शिक्षा आयोग' कहा गया। 3 फरवरी 1882 को सर विलियम हंटर की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन हुआ। विलियम हंटर वाइसरॉय की कार्यकारी परिषद के सदस्य थे। इस आयोग ने कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये। उन दिनों समाज-सुधारक, विचारक, दार्शनिक और क्रांतिकारी नेता 'महात्मा' ज्योतिराव फुले समाज में शोषित वर्ग के अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे थे। ज्योतिराव फुले ने शिक्षा आयोग के समक्ष निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के साथ-साथ सरकारी नौकरियों में सभी के लिए आनुपातिक आरक्षण-प्रतिनिधित्व की माँग की थी। महात्मा फुले ने भारत में शोषित वर्ग को इंसाफ़ दिलाने के लिए जो आंदोलन शुरू किया था, अम्बेडकर ने उसे आगे बढ़ाया। अम्बेडकर के प्रयासों और सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों की वजह से ही भारत सरकार अधिनियम, 1909 में अछूत समाज के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया और अंग्रेज़ हुकूमत ने अलग-अलग जाति और धर्मों के लिए 17 अगस्त 1932 को 'कम्यूनल अवॉर्ड' की शुरुआत की। इसके तहत दलितों को अलग

निर्वाचन का स्वतंत्र राजनीतिक अधिकार मिला। दलितों को दो वोट का अधिकार मिला। दो वोट अधिकार व्यवस्था के तहत दलित एक वोट से अपना प्रतिनिधि चुन सकते थे और दूसरे वोट से सामान्य वर्ग के किसी प्रतिनिधि को चुन सकते थे। गांधीजी का मानना था कि अलग निर्वाचन क्षेत्र और दो वोट के अधिकार से हिंदू समाज बँट जाएगा। दलितों को मिले इस अधिकार का विरोध करते हुए गांधीजी ने अंग्रेज़ अधिकारियों को चिट्ठी लिखी। जब उनकी चिट्ठी पर कोई कार्यवाही नहीं, तब गांधीजी ने पुणे की यरवदा जेल में आमरण-अनशन शुरू कर दिया।

आमरण-अनशन से गांधीजी की हालत बिगड़ने लगी। देश में सवर्णों और दलितों के बीच तनाव की स्थिति बनने लगी। मजबूर होकर अम्बेडकर को एक समझौता करना पड़ा। 24 सितंबर 1932 को अम्बेडकर और महात्मा गांधी के बीच समझौता हुआ, जिसे 'पूना पैक्ट' कहा गया। इस समझौते की वजह से दलितों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र और दो वोट का अधिकार ख़त्म हो गया। इसके बदले में प्रांतीय विधान-मंडलों में दलितों की आरक्षित सीटों की संख्या 71 से बढ़ाकर 148 कर दी गयी और केंद्रीय विधायिका में कुल सीटों की 18 फ़ीसदी सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया गया।

पूना पैक्ट से दलितों को फ़ायदा या नुक़सान? इस सवाल में जवाब में इतिहासकारों के मत अलग-अलग हैं। कई इतिहासकार पूना पैक्ट को दलितों के ख़िलाफ़ बताते हैं और कहते हैं कि अम्बेडकर ने दुखी मन से समझौता किया था। वहीं कई अन्य इतिहासकारों का मानना है कि पूना पैकट से दलितों को फ़ायदा हुआ। जैसे कम्यूनल अवॉर्ड के तहत दलितों के लिए जो 71 सीटें आरक्षित थीं, उसे बढ़ाकर 148 कर दिया गया। इस पैक्ट की दूसरी अहम बात यह थी कि कांग्रेस पार्टी नागरिक सेवाओं से जुड़ी नौकरियों में दलितों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने के लिए राज़ी हो गयी। सरकारी नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान इसी पैक्ट की वजह से हुआ। महात्मा गांधी की तरह ही कई लोग ऐसे थे, जो यह मानते थे कि अंग्रेज़ एक बड़ी साज़िश के तहत हिंदू समाज को तोड़ने की कोशिश कर रहे हैं। अंग्रेज़ों का मक़सद दलितों को हिंदू समाज से अलग करना है। अंग्रेज़ समाज में 'फूट डालो, राज करो' की नीति अपना रहे हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रभाव में सुंदरय्या भी मानने लगे थे कि अंग्रेज़ एक

साज़िश के तहत हिंदू समाज को बाँटने की कोशिश में लगे हुए हैं। निचली जाति से ताल्लुक़ रखने के बावजूद सुंदरय्या यह मानने लगे थे कि संगठित रहने पर ही हिंदू सुरक्षित हैं। यही वजह थी कि सुंदरय्या ने जब दसवीं पास की, तब वे मिशनरी कॉलेज में शामिल नहीं हुए। मिशनरी कॉलेज में अंग्रेज़ी भी पढ़ाई जाती थी। सुंदरय्या अच्छे से जान गये थे कि डॉक्टर बनने के लिए अंग्रेज़ी का ज्ञान होना बेहद ज़रूरी है। लेकिन वे मिशनरी कॉलेज में दाख़िला लेकर अंग्रेज़ी सीखने के ख़िलाफ़ थे। उनके मन में यह बात गहरे से समा गयी थी कि मिशनरी स्कूलों और कॉलेजों में हिंदू विद्यार्थियों को प्रभावित कर उन्हें ईसाई धर्म अपनाने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया जाता है। निचली जाति से सम्बद्ध बच्चों को धर्म-परिवर्तन के लिए तरह-तरह के प्रलोभन दिये जाते हैं। इसी वजह से सुंदरय्या ने मिशनरी कॉलेज में दाख़िला न लेकर किसी हिंदू संगठन द्वारा संचालित कॉलेज में दाख़िला लेने का मन बनाया।

उन दिनों नेल्लूर शहर का वेंकटगिरी राजा हाई स्कूल हिंदू स्वाभिमान का प्रतीक बनकर उभरा था। सुंदरय्या ने इसी स्कूल में दाख़िला लेकर इंटरमीडिएट की पढ़ाई करने का फ़ैसला लिया।

वेंकटगिरी राजा हाई स्कूल की स्थापना से जुड़ा इतिहास रोचक है। उन्नीसवीं शताब्दी में ईसाई धर्म-प्रचारकों ने नेल्लूर में एक स्कूल की शुरुआत की। इस स्कूल का नाम रखा गया फ्री चर्च मिशन हाई स्कूल। यह नेल्लूर ज़िले का एक मात्र हाई स्कूल था। ईसाई धर्म-प्रचारकों ने घर-घर जाकर लोगों से अपने बच्चों का दाख़िला इस स्कूल में करवाने की अपील की। लेकिन कई हिंदू इसके ख़िलाफ़ थे। कई हिंदू ऐसे थे, जो यह मानने लगे थे कि इस स्कूल में बच्चों को ईसाई धर्म की शिक्षा दी जाएगी। बच्चों को हिंदू धर्म का अनुसरण न कर ईसाई धर्म को अपनाने के लिए प्रलोभित किया जाएगा। इसी शक की वजह से ज़्यादातर हिंदू परिवारों ने अपने बच्चों को इस स्कूल से दूर रखा। हिंदू बच्चों को आकर्षित करने के मक़सद से ईसाई मिशनरी ने 1873 में सुंकू नारायण स्वामी चेट्टी नामक एक हिंदू व्यक्ति को स्कूल का हेडमास्टर नियुक्त किया। नारायण स्वामी चेट्टी नेल्लूर ज़िले के पहले ग्रेजुएट थे। लेकिन स्कूल के संचालन को लेकर हेडमास्टर नारायण स्वामी चेट्टी की प्रिंसिपल रेवरेंड जॉन मैकमिलन से नहीं बनी। दोनों की सोच अलग थी। प्रिंसिपल जॉन

मैकमिलन से मतभेदों की वजह से नारायण स्वामी चेट्टी ने स्कूल छोड़ दिया। चेट्टी के स्कूल छोड़ते ही लोगों में यह धारणा और भी मजबूत हो गयी कि यह स्कूल ईसाई धर्म के प्रचार के लिए ही खोला गया है। चूँकि नारायण स्वामी चेट्टी शिक्षित थे और एक शिक्षक के रूप में काफ़ी लोकप्रिय हो गये थे, नेल्लूर के कुछ हिंदू लोगों ने उनसे एक हिंदू स्कूल शुरू करने का अनुरोध किया।

3 मई 1875 को नेल्लूर में एक हिंदू स्कूल की शुरुआत हुई। दान की गयीं पुस्तकों से पुस्तकालय की स्थापना हुई। इस स्कूल के संस्थापक और हेड मास्टर बने नारायण स्वामी चेट्टी। चेट्टी के अलावा पाँच अन्य शिक्षकों ने स्कूल में बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। पहले साल 152 विद्यार्थियों ने स्कूल में दाख़िला लिया। लेकिन ईसाई धर्म-प्रचारकों को हिंदू स्कूल की बढ़ती लोकप्रियता आँखों में खटकने लगी। हिंदू स्कूल के ख़िलाफ़ ज़िला कलेक्टर से शिकायतें की गयीं। बार-बार स्कूल परिसर का दौरा कर हिंदू स्कूल के संचालकों का सताया जाने लगा। यह भी कहा गया कि नेल्लूर में एक स्कूल के रहते हुए दूसरे स्कूल की ज़रूरत नहीं है। इसी वजह से हिंदू स्कूल की मान्यता रद्द की जानी चाहिए। कलेक्टर ने स्कूल को दिया जाने वाला अनुदान रोक दिया। आर्थिक परेशानियाँ की वजह से स्कूल चलाना मुश्किल हो गया। नारायण स्वामी चेट्टी ने 1878 में हेडमास्टर पद से इस्तीफ़ा दे दिया, लेकिन हिंदू स्कूल को बनाये रखने के लिए कोशिश करते रहे। इसी कोशिश के तहत उन्होंने नेल्लूर के कैथोलिक पादरी सी. आर. मिशेल की मदद से मद्रास के रोमन कैथोलिक बिशप से मुलाक़ात की। मद्रास के बिशप हिंदू स्कूल को चलाने के लिए सहायता-राशि देने को राज़ी हो गये। इस राशि की वजह से स्कूल का संचालन फिर से नियमित हो गया। 1879 में अंग्रेज़ी हुकूमत ने स्कूल को दुबारा मान्यता दे दी।

शुरुआती दिनों में हिंदू स्कूल का संचालन नेल्लूर शहर में कलेक्टर के दफ़्तर के पास किराये पर लिये गये एक मकान से किया गया। लेकिन 27 फरवरी 1879 को वेंकटगिरी रियासत के पूर्व दीवान हाजी मोहम्मद रहीमतुल्ला ने अदालत की नीलामी में एक ज़मीन ख़रीदी। हाजी मोहम्मद रहीमतुल्ला ने इस ज़मीन को हिंदू हाई स्कूल के नाम कर दिया। फिर भी विद्यालय की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हो पाया। इसी दौरान वेंकटगिरी रियासत के राजा ने एक सरकारी बॉन्ड ख़रीदा। पंद्रह हज़ार रुपये की राशि अदा कर यह बॉन्ड इस शर्त के साथ ख़रीदा गया कि

हिंदू स्कूल का नाम उन्हीं के नाम पर रखा जाएगा। राजा ने स्कूल भवन की मरम्मत के लिए अनुदान-राशि भी दी। स्कूल के नये ब्लॉक का उद्घाटन 12 नवंबर 1888 को मद्रास के गवर्नर लॉर्ड कोनेमारा ने किया। इसी के बाद हिंदू हाई स्कूल का नाम बदलकर वेंकटगिरी राजा हाई स्कूल हो गया।

1889 में इस स्कूल को फिर से सरकारी अनुदान मिलना शुरू हो गया। साल 1901 में करीम ख़ान साहब नाम के एक शख़्स ने एक शाखा स्कूल चलाने के लिए दो हज़ार रुपये की कीमत का एक मकान दान में दिया। 1902 में मद्रास के गवर्नर लॉर्ड एम्प्थिल ने स्कूल का दौरा किया। इसी मौक़े पर स्कूल के नये भवन की आधारशिला रखी गयी। वेंकटगिरी के राजा के छोटे भाई वेलुगोटि कृष्ण याचेन्द्र ने ग्यारह हज़ार तीन सौ रुपये का दान दिया, ताकि नये कमरे बनाये जा सकें।

1889 में शहर में स्कूल की एक नयी शाखा शुरू की गयी, जिसे कुछ वर्षों के बाद मूल स्कूल में मिला दिया गया। 1905 में अक्कराजू राघवय्या प्राइमरी स्कूल हिंदू स्कूल का शाखा स्कूल बना। अक्टूबर 1908 में इसे भी मूल विद्यालय में मिला दिया गया। मई 1908 में नेल्लूर के रंगनायकुलापेट में एक और शाखा स्कूल खोला गया था, लेकिन वित्तीय परेशानियों के कारण इसे 1909 में बंद कर दिया गया। 1912 और 1928 के बीच चिन्ना बाज़ार में मुथराजू सुब्बा रामय्या स्कूल को एक शाखा स्कूल बनाया गया। जैसे-जैसे स्कूल की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा बढ़ी, वैसे-वैसे छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई।

किशोर सुंदरय्या ने ख़ुद को ईसाई मशनरियों के प्रभाव से बचाने और हिंदू स्वाभिमान को क़ायम रखने के मक़सद से वेंकटगिरी राजा हाई स्कूल में दाख़िला ले लिया। नाम वेंकटगिरी राजा हाई स्कूल था, लेकिन इस शिक्षा संस्थान में इंटरमीडिएट कोर्स के पाठ्यक्रम की भी शिक्षा दी जाती थी। चूँकि डॉक्टर बनना चाहते थे, इस वजह से इंटरमीडिएट की पढ़ाई के लिए सुंदरय्या ने विज्ञान को मुख्य विषय के रूप में चुना।

सुंदरय्या जानते थे कि डॉक्टर बनना आसान नहीं है। डॉक्टर बनने के लिए उन्हें इंटरमीडिएट की परीक्षा में शानदार नंबर लाने होंगे। मेडिकल कॉलेज में दाख़िले के लिए कई विद्यार्थी प्रयासरत हैं। प्रतिस्पर्धा तगड़ी है।

उन दिनों लगभग सभी मेडिकल कॉलेज अंग्रेज़ हुकूमत द्वारा संचालित किये

जाते थे। इंटरमीडिएट की परीक्षा में मिले नंबरों के आधार पर मेडिकल कॉलेज में दाख़िले के लिए विद्यार्थियों का चयन किया जाता था। सुंदरय्या ने पहले दिन से ही अपना पूरा ध्यान जीवविज्ञान, रसायनविज्ञान और भौतिकविज्ञान को आत्मसात करने में लगा दिया।

इंटरमीडिएट की पढ़ाई के शुरुआती दिनों में ही सुंदरय्या को जीवविज्ञान से बेइंतेहा प्यार हो गया। उन्हें अहसास हो गया कि जीवविज्ञान की परीक्षा में पास होने के लिए विश्लेषणात्मक कौशल की ज़रूरत नहीं है। यहाँ स्मरणशक्ति ज़्यादा मायने रखती है। विद्यार्थी को किताबों में लिखा ज्ञान याद रखना होता है। जो शिक्षक बताते हैं, उसे मन में गाँठ बाँधकर बैठा लेना होता है। गणित में पास होने के लिए विश्लेषणात्मक कौशल की ज़रूरत पड़ती है। दिमाग़ लगाना पड़ता है। प्रोब्लम सॉल्व करने पड़ते हैं। लेकिन जीवविज्ञान में सीधे सवाल का सीधा जवाब देना होता है। जीवविज्ञान जीवित चीजों, प्राणियों का वैज्ञानिक अध्ययन है। यहाँ बात सिर्फ़ अध्ययन की है, विषय को आत्मसात करने की है और अर्जित ज्ञान को हमेशा याद रखने की है।

इसी दौरान 15 अगस्त को भारत आज़ाद हो गया। आज़ादी मिली, लेकिन देश का बँटवारा हो गया। भारत से कटकर नया मुल्क पाकिस्तान बन गया। बँटवारे की वजह से देश के कई हिस्सों में तनाव का माहौल था। कई जगह हिंसक वारदातें हो रही थीं। पंजाब और बंगाल में हाल सबसे बुरा था। साम्प्रदायिक हिंसा की आग तेज़ी से फैल रही थी। विभाजन की वजह से कई हिंदुओं और सिखों को पाकिस्तान से भारत आने पर मजबूर होना पड़ रहा था। इधर भारत से भी कई मुसलमान पाकिस्तान की तरफ़ पलायन कर रहे थे। अख़बारों के ज़रिये सुंदरय्या को पता चला कि पाकिस्तान में लोग हिंदुओं और सिखों पर हमले कर रहे हैं। हिंदुओं और सिखों के मकान जलाये जा रहे हैं। लूटा और पीटा जा रहा। क़त्ल-ए-आम हो रहा है। महिलाओं और बच्चों का भी क़त्ल किया जा रहा है। औरतों का अपहरण कर उनकी आबरू लूटी जा रही है। जान और आबरू बचाने के लिए हिंदू और सिख बड़ी संख्या में पाकिस्तान से पलायन कर रहे हैं। एक तरफ़ जहाँ देश के कई हिस्सों में आज़ादी का जश मनाया जा रहा था, वहीं कई हिंदू और सिख जान और आबरू बचाने के लिए जद्द-ओ-जहद कर रहे थे। बँटवारे की वजह से हो रही हिंसा, मार-काट,

लूट-पाट, आगज़नी की वजह से कई ज़िंदगियाँ तबाह हो रही थीं। हिंदुओं और सिखों पर ज़ुल्म-ओ-सितम और क़त्ल-ए-आम की ख़बरों से सुंदरय्या का मन दुखी और विचलित रहने लगा।

देश में अजीब स्थिति थी। एक तरफ़ कई जगह आज़ादी का जश्न मनाया जा रहा था, दूसरी तरफ़ कई इलाक़ों में लोग बँटवारे का दंश झेल रहे थे। ये लोग जश्न की कल्पना भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि जान बचाना सबसे बड़ी चुनौती थी। बँटवारे के समय हुई हिंसा में कई लोग मारे जा रहे थे। कई लोग अपने परिवार से बिछड़ रहे थे। घर-मकान, खेत-खलिहान, ज़मीन-जायदाद सब लूट लिये जा रहे थे।

देश के उन हिस्सों में जहाँ बँटवारे का असर नहीं था, वहाँ आज़ादी का जश्न मनाया जा रहा था। नेल्लूर में भी आज़ादी का जश्न मनाया गया। सुंदरय्या ने भी जश्न में शिरकत की, लेकिन हिंदुओं और सिखों पर हो रहे हमलों की वजह से उनका मन व्यथित था। सुंदरय्या को उन नवाबों पर भी ग़ुस्सा आया, जो अंग्रेज़ों के छोड़कर चले जाने के बाद अपनी रियासतों को भारत में विलीन नहीं करवा रहे थे। रियासत-ए-हैदराबाद का निज़ाम भी बाग़ी तेवर दिखा रहा था। निज़ाम ने हैदराबाद को एक अलग मुल्क बनाने की कोशिश शुरू की थी। सुंदरय्या को लगा कि अगर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नहीं होता, तो हिंदुओं पर और भी ज़्यादा ज़ुल्म-ओ-सितम होते।

इंटरमीडिएट की पढ़ाई के दौरान भी सुंदरय्या नियमित रूप से संघ की शाखा में सम्मिलित होते रहे। कई बार तो सुंदरय्या स्वयंसेवक के गणवेश यानी सफ़ेद कमीज़ और ख़ाकी चड्डी पहनकर कॉलेज गये। संघ के कार्यक्रमों में नियमित रूप से हिस्सा लेने की वजह से उनका परिचय उस ज़माने के कई बड़े नेताओं से हुआ। इन नेताओं के भाषण सुनने की वजह से सुंदरय्या का न सिर्फ़ ज्ञान बढ़ा, बल्कि वे ख़ुद एक अच्छे वक्ता बन गये। सुंदरय्या भी गाँव-गाँव जाकर हिंदुस्तान के इतिहास, हिंदुओं पर हो रहे हमलों, हिंदू एकता की आवश्यकता, राष्ट्र-सेवा जैसे विषयों पर भाषण देने लगे। इसी दौरान दो सहपाठी - रमणा रेड्डी और कोटेश्वर राव उनके अंतरंग मित्र बन गये।

जब दो साल की पढ़ाई के बाद इंटर की परीक्षाएँ हुईं, तब सुंदरय्या ने पूरे

विश्वास के साथ सवालों के जवाब लिखे। और, जब उत्तर-पुस्तिकाओं की जाँच के बाद परीक्षा-परिणाम घोषित हुए, तब सुंदरय्या को उम्मीद के मुताबिक़ ही अच्छे नंबर मिले। लेकिन, नंबर इतने अच्छे नहीं थे कि उन्हें मेडिकल कॉलेज में दाख़िला मिल पाता। परीक्षा में उनसे ज़्यादा नंबर पाने वाले विद्यार्थी कई थे।

बैचलर ऑफ़ मेडिसिन एंड बैचलर ऑफ़ सर्जरी यानी एमबीबीएस कोर्स में दाख़िला न मिलने से सुंदरय्या को बहुत निराशा हुई। बुआ आदियम्मा को भी लगा कि भतीजे को डॉक्टर के रूप में देखने का सपना टूट गया है।

सीट न मिलने की वजह से लगे झटके से ख़ुद को उबारने के बाद सुंदरय्या ने पशु-चिकित्सा विज्ञान में स्नातक की डिग्री लेकर पशुओं का डॉक्टर बनने की सोची। फ़ैसला था कि जब इन्सान का डॉक्टर नहीं बन पा रहे हैं, तो पशुओं का डॉक्टर बनने की कोशिश की जाए। सुंदरय्या ने बैचलर ऑफ़ वेटरनेरी साइन्स में दाख़िले के लिए आवेदन किया। लेकिन इस कोर्स में भी उन्हें सीट नहीं मिली। सुंदरय्या को भी लगा कि डॉक्टर बनने का सपना हमेशा के लिए टूट गया है।

उन दिनों मेडिकल कॉलेजों में विद्यार्थियों का चयन इंटरमीडिएट की परीक्षा में मिले नंबरों के आधार पर किया जाता था। किसी भी कोर्स के लिए प्रवेश-परीक्षा का कांसेप्ट था ही नहीं। और तो और, सप्लमेन्टरी या फिर इम्प्रूवमेंट एग्ज़ाम जैसा भी कोई कांसेप्ट अस्तित्व में नहीं था। इसी वजह से सुंदरय्या को लगा कि वे डॉक्टर नहीं बन पाएँगे।

अब सुंदरय्या ने अपना पूरा ध्यान संघ की विचारधारा के प्रचार-प्रचार में लगा दिया। वे संघ के नेताओं के साथ गाँव-गाँव, शहर-शहर घूमने लगे। सभाओं को संबोधित करने लगे। समाज-सेवा में जुट गये।

देखते-देखते एक साल बीत गया। इसी बीच इंटरमीडिएट की परीक्षाएँ हुईं। कुछ दिनों बाद परीक्षा-परिणाम घोषित हुए। सुंदरय्या को पता चला कि इस बार विद्यार्थियों के नंबर अच्छे नहीं हैं। उन्हें इस तथ्य के पीछे उम्मीद की एक किरण नज़र आयी। जब मेडिकल कॉलेजों में दाख़िले की प्रक्रिया शुरू हुई, तब पिछले साल की परीक्षा में मिले नंबरों का हवाला देते हुए सुंदरय्या ने भी आवेदन दे दिया।

इस बार सुंदरय्या को मेडिकल कॉलेज में सीट मिल गयी। इस साल कई

विद्यार्थियों को मिले नंबरों से सुंदरय्या के नंबर काफ़ी ज़्यादा थे, चूँकि उनके नंबर दूसरे आवेदकों से ज़्यादा थे, उनकी सीट पक्की हो गयी।

डॉक्टर बनने का सपना फिर से ज़िंदा हो गया। बुआ ख़ुशी से झूम उठीं। घर-परिवार में माहौल त्योहार जैसा हो गया। सुंदरय्या को मद्रास मेडिकल कॉलेज में दाख़िला मिल गया। सुंदरय्या मद्रास जाकर डॉक्टरी की पढ़ाई करने की तैयारियों में जुट गये।

बड़ी बात यह रही कि नेल्लूर ज़िले से पहली बार शूद्र वर्ण और निचली जाति के व्यक्ति को मेडिकल कॉलेज में दाख़िला मिला था। सुंदरय्या से पहले 'शूद्र वर्ग' से कोई भी व्यक्ति मेडिकल कॉलेज में डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए नहीं पहुँच पाया था। सुंदरय्या को मेडिकल कॉलेज में दाख़िला मिलना भी कोई सामान्य बात नहीं थी। यह भारत में एक नयी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रांति की शुरुआत थी।

अध्याय 2

बदलाव की आँधी में इलाज-ए-दर्द

डॉक्टर बनकर जन-सेवा करने के दृढ़ संकल्प के साथ सुंदरय्या मद्रास पहुँचे। साल था 1949। देश को आज़ाद हुए दो साल होने को थे। जिस समय सुंदरय्या मद्रास पहुँचे, उस समय तेलुगुभाषियों के लिए अलग राज्य की माँग ज़ोर पकड़ने लगी थी। उन दिनों रायलसीमा और तटीय आंध्र, ये दोनों तेलुगुभाषी इलाक़े मद्रास राज्य का हिस्सा थे और मद्रास महानगर इस राज्य की राजधानी थी। राजधानी मद्रास में तमिलभाषियों का दबदबा था। उत्तरी केरल यानी मालाबार, बेल्लारी, दक्षिण कन्नड़ आदि क्षेत्र भी मद्रास राज्य का हिस्सा थे। मौजूदा समय के तमिलनाडु और आंध्रप्रदेश राज्यों का समस्त भूभाग मद्रास राज्य का हिस्सा था। इसके अलावा मौजूदा केरल, कर्नाटक और ओडिशा राज्यों का काफ़ी भूभाग भी मद्रास राज्य में था। चूँकि तमिलभाषियों का वर्चस्व था और मद्रास राज्य में रहने वाले सभी लोगों को शेष भारत में 'मद्रासी' कहा जाता था। तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ भाषा बोलने वाले लोगों ने अपने स्वाभिमान को बचाने और अपनी अलग पहचान बनाने के लिए भाषायी आधार पर राज्यों का गठन करने की माँग शुरू की।

मद्रास राज्य में आज़ादी से पहले और उसके बाद 'पेरियार' के नाम से मशहूर क्रांतिकारी नेता इरोड वेंकट नायकर रामासामी का काफ़ी प्रभाव था। पेरियार ने सामाजिक कुरीतियों, जाति-धर्म के नाम पर भेदभाव के ख़िलाफ़ आंदोलन छेड़ा हुआ था। युवावस्था में ही पेरियार धर्म के विरोधी हो गये थे। ब्राह्मणवाद के ख़िलाफ़ उन्होंने जंग छेड़ दी थी। हिंदू धर्म की कुरीतियों पर प्रहार करने शुरू कर दिये थे।

पेरियार ने खुलकर मूर्ति-पूजा का विरोध किया। हिंदू धार्मिक ग्रंथों को मानवता-विरोधी करार देते हुए उनकी होली जलायी। चूँकि मद्रास राज्य में शोषित समाज के लोग बहुसंख्यक थे, सभी पेरियार को अपना नेता मानने लगे। पेरियार के विचारों का मद्रास की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ने लगा।

17 सितंबर 1879 को तमिलनाडु के इरोड में एक सम्पन्न, परंपरावादी हिंदू परिवार में जन्मे रामासामी काशी की एक यात्रा के बाद धर्म विरोधी हो गये। रामासामी ने ब्राह्मणवाद के ख़िलाफ़ आंदोलन शुरू कर दिया। रामासामी ने शादी को 'पवित्र बंधन' की जगह 'साझेदारी' के रूप में देखने की वकालत की। बाल-विवाह की परंपरा ख़त्म करने के लिए जी-जान लगा दिया। विधवा महिलाओं को दोबारा शादी का अधिकार दिलाने के लिए भी पेरियार ने आंदोलन किया।

रामासामी के राजनीतिक जीवन की शुरुआत कांग्रेस से हुई थी। रामासामी ने आज़ादी की लड़ाई में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित होकर रामासामी ने नशाबंदी के ख़िलाफ़ जन-आंदोलन की शुरुआत की। खादी को बढ़ावा देना शुरू किया।

त्रावणकोर राज्य के वाइकोम में किये एक 'सत्याग्रह' की वजह से रामासामी शोषित समाज के महानायक बन गये। वे रामासामी से 'पेरियार' हो गये। शोषित वर्ग में, निचली मानी जाने वाली जातियों के लोगों में उनका सम्मान बढ़ गया।

बात बीसवीं शताब्दी के बीसवें दशक की है। उन दिनों त्रावणकोर राज्य में छुआछूत चरम पर था। त्रावणकोर राज्य में ज़्यादातर लोग मलयालमभाषी थे। उन दिनों न सिर्फ़ मंदिरों में दलितों का प्रवेश वर्जित था, बल्कि दलितों को उस रास्ते पर नहीं आने दिया जाता था, जिस रास्ते से राजा-महाराजा मंदिर की ओर जाते थे। इस कुरीति के ख़िलाफ़ आंदोलन शुरू हुआ था। लेकिन राजा की सेना और सवर्ण जाति के लोग इस आंदोलन को कुचलने के लिए एड़ी चोटी का ज़ोर लगा रहे थे। आंदोलनकारियों को गिरफ़्तार किया गया। उन्हें यातनाएँ दी जाने लगीं। जब आंदोलन कमज़ोर पड़ता नज़र आया, तब कुछ समाज-सुधारकों ने रामासामी से आंदोलन का नेतृत्व करने को कहा। रामासामी ने जब कमान संभाली, तब सवर्ण जाति के लोगों के पसीने छूट गये। उन्हें परंपरा रोकनी पड़ी। कुरीति बंद करनी पड़ी।

पेरियार ने अपने दृढ़ संकल्प और नेतृत्व-क्षमता से राजा को झुका दिया था। इसी वजह से वे महानायक बनकर उभरे।

आगे पेरियार ने जब नौकरी और शिक्षा में दलितों को आरक्षण देने की माँग को लेकर आंदोलन का बिगुल फूँका, तो कांग्रेस के कई सवर्ण नेता उनके ख़िलाफ़ हो गये। कांग्रेसी नेताओं और पेरियार में मतभेद और दूरियाँ बढ़ती गयीं। कांग्रेस को ब्राह्मणों के वर्चस्व वाली पार्टी करार देते हुए पेरियार उससे बाहर आ गये। दलितों और अन्य सभी पिछड़ी जातियों के लोगों को उनके अधिकार दिलाने और इंसाफ़ दिलवाने के मक़सद से पेरियार ने 1938 में अपनी पार्टी बना ली और उसका नाम रखा 'जस्टिस पार्टी'। 1944 में पेरियार ने जस्टिस पार्टी को 'द्रविड़ कझगम' में तब्दील कर दिया और इससे पिछड़ी जाति के लाखों लोग जुड़े। यह पेरियार के आंदोलनों का ही नतीजा था कि आज़ादी मिलने के बाद दलितों के स्वाभिमान को बचाने और उनके साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार को बंद करने के मक़सद से क़ानून बनने शुरू हुए। आज़ादी मिलते ही मद्रास राज्य में कांग्रेस की सरकार बनी। ओमांदुर रामासामी रेड्डी मुख्यमंत्री बने। रेड्डी के नेतृत्व वाली सरकार ने मद्रास मंदिर प्रवेश प्राधिकरण अधिनियम 1947 पारित करवाकर नया क़ानून बनाया। इस क़ानून की वजह से दलितों को मद्रास राज्य में मंदिरों में प्रवेश करने का अधिकार मिला। सरकार ने देवदासी प्रथा पर निषेध लगाते हुए भी क़ानून बनाया।

सुंदरय्या ऐसे समय मद्रास पहुँचे थे, जब वहाँ मनु-स्मृति के ख़िलाफ़ आंदोलन चरम पर था और कई लोग ऐसे थे, जो खुलकर हिंदू धर्म का विरोध कर रहे थे। पेरियार जैसे क्रांतिकारी नेताओं के प्रभाव में नास्तिक लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी। यानी, एक कट्टर हिंदू राष्ट्रवादी युवक नास्तिकों के बीच पहुँच गया।

मद्रास पहुँचने के बाद सुंदरय्या की ज़िंदगी बदल गयी। वे अब अपने घर-परिवार और गाँव से दूर थे। मद्रास मेडिकल कॉलेज में दाख़िले की औपचारिकताएँ पूरी करने के बाद सुंदरय्या हॉस्टल में रहने लगे। उन दिनों लगभग सभी मेडिकल कॉलेज सरकारी ख़र्च से चलते थे। मेडिकल विद्यार्थियों की शिक्षा, उनके रहने, खाने-पीने का सारा इंतज़ाम सरकार करती थी। सुंदरय्या मद्रास मेडिकल कॉलेज में सीट पाकर फूले नहीं समा रहे थे। इस मेडिकल कॉलेज का अपना गौरवशाली इतिहास है। इस मेडिकल कॉलेज को भी अंगेज़ों ने स्थापित किया था। मद्रास का

यह मेडिकल कॉलेज भारत में खुला तीसरा मेडिकल कॉलेज था। पॉन्डिचेरी और कलकत्ता के बाद मद्रास में मेडिकल कॉलेज खोला गया था।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने सैनिकों, कर्मचारियों और अफ़सरों के इलाज के लिए 1664 में मद्रास में एक अस्पताल खोला। मरीज़ों के इलाज के लिए ब्रिटेन से डॉक्टर और नर्स बुलवाये गये थे। कहा जाता है कि उस समय ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रमुख एजेंट रहे सर एडवर्ड विलियम की पहल और कोशिशों की वजह से मद्रास में यह अस्पताल शुरू हो पाया।

अंग्रेज़ों के बनाये फोर्ट सेंट जॉर्ज (सेंट जॉर्ज का क़िला) में स्थापित मद्रास के इस पहले अस्पताल में हर दिन मरीज़ों का इलाज किया जाने लगा। जैसे-जैसे मद्रास राज्य में ईस्ट इंडिया कंपनी के लोगों की संख्या बढ़ती गयी, वैसे-वैसे इस अस्पताल में मरीज़ों की संख्या बढ़ती चली गयी।

गवर्नर सर एलीह येल ने अस्पताल का विस्तार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। 1690 में अस्पताल को नये भवन में स्थानांतरित किया गया।

अठारहवीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत विशेषकर दक्षिण भारत में अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए कई युद्ध लड़ने पड़े। इन्हीं युद्धों की वजह से अस्पताल को क़िले के बाहर स्थानांतरित करने का फ़ैसला लिया गया। 1772 में अस्पताल 'पार्क टाउन' में शिफ़्ट हो गया। इसी दौरान मद्रास जनरल हॉस्पिटल के नाम से मशहूर हुए इस अस्पताल में यूरोप और भारत के चुनिंदा लोगों को एलोपैथी चिकित्सा-पद्धति का शिक्षण-प्रशिक्षण देने का काम शुरू हुआ। यानी, इस अस्पताल में डॉक्टर और नर्स तैयार किये जाने लगे। अस्पताल से आधुनिक चिकित्सा-पद्धति का ज्ञान हासिल कर डॉक्टर बनने वाले लोगों को छोटे-बड़े अस्पतालों में नियुक्त किया जाने लगा। 1820 में इस अस्पताल को 'मॉडल हॉस्पिटल' का दर्ज़ा हासिल हुआ। चूँकि अस्पताल का लगातार विस्तार हो रहा था, 1827 में सूपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त करने का फ़ैसला हुआ। डॉ. डी. मोर्टिमार मद्रास जनरल हॉस्पिटल के पहले सूपरिन्टेन्डेन्ट बने।

डॉ. मोर्टिमार द्वारा संचालित एक निजी मेडिकल हॉल को मेडिकल स्कूल के रूप में तब्दील किया गया। 2 फरवरी 1835 को मद्रास के तत्कालीन गवर्नर सर फ्रेडरिक एडम्स ने मेडिकल स्कूल का विधिवद उद्घाटन किया। साथ ही एक

आदेश जारी करते हुए इस मेडिकल स्कूल को मद्रास जनरल हॉस्पिटल से अनुबद्ध कर दिया।

1842 से इस अस्पताल में भारतीय लोगों का इलाज भी शुरू किया गया। इतना ही नहीं, भारतीय लोगों को मेडिकल स्कूल में भी शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए दाख़िला दिया जाने लगा। कुछ सालों बाद शिक्षण-प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम को व्यापक कर दिया गया। साथ ही मेडिकल स्कूल और हॉस्पिटल में डॉक्टरों, नर्सों, शिक्षकों और कर्मचारियों की संख्या बढ़ा दी गयी। स्कूल-प्रबंधन के प्रस्ताव को मानते हुए अंग्रेज़ सरकार ने 1850 में इसे महाविद्यालय का दर्ज़ा दे दिया, यानी मेडिकल स्कूल अब मेडिकल कॉलेज हो गया।

1 अक्टूबर 1850 को मद्रास मेडिकल कॉलेज अस्तित्व में आया। इसके बाद यहाँ से डॉक्टर पैदा किये जाने लगे। 1857 में भारतीयों के विद्रोह के बाद ब्रिटेन की संसद ने ईस्ट इंडिया कंपनी को भंग कर भारत में अपना शासन शुरू किया। मद्रास मेडिकल कॉलेज भी अंग्रेज़ी सरकार के नियंत्रण में आ गया। इसी दौरान मद्रास मेडिकल कॉलेज को मद्रास यूनिवर्सिटी से अनुबद्ध कर दिया गया। मेडिकल कॉलेज से सफलतापूर्वक शिक्षण-प्रशिक्षण लेने वाले लोगों को मद्रास यूनिवर्सिटी सर्टिफ़िकेट देने लगी। आगे चलकर मद्रास मेडिकल कॉलेज में महिलाओं को भी डॉक्टरी शिक्षा दी जाने लगी। मद्रास मेडिकल कॉलेज में सन् 1875 से योग्य महिला उम्मीदवारों को आधुनिक चिकित्सा-पद्धति का प्रशिक्षण दिया जाने लगा। महिलाओं को डॉक्टर बनाने वाला भारत का पहला कॉलेज मद्रास मेडिकल कॉलेज ही था। इस कॉलेज के बाद सभी मेडिकल कॉलेजों के दरवाज़े लड़कियों और महिलाओं के लिए खोल दिये गये।

इतिहास की किताबें बताती हैं कि भारत में सबसे पहले फ्रांसीसी सरकार ने मेडिकल कॉलेज की शुरुआत की थी। फ्रांसीसी सरकार ने अपने नागरिकों को आधुनिक चिकित्सा-पद्धति यानी एलोपैथी की शिक्षा देने के लिए पॉन्डिचेरी में स्कूल ऑफ़ मेडिसिन खोला था। साल 1823 में इस संस्था में शिक्षण-प्रशिक्षण शुरू हुआ। उन दिनों पॉन्डिचेरी फ्रांस की कॉलोनी हुआ करती थी। इसके बाद अंग्रेज़ी हुकूमत ने 1835 में कलकत्ता में मेडिकल कॉलेज की स्थापना की। इस कॉलेज से भारत में चिकित्सा-शिक्षा के क्षेत्र में एक नयी क्रांति की शुरुआत हुई। शुरुआती सालों में

14 से 20 वर्ष की आयु के युवाओं को एलोपैथी चिकित्सा-पद्धति के सिद्धांतों और प्रथाओं में प्रशिक्षित किया गया। इन युवाओं का चयन एक 'योग्यता-परीक्षा' के माध्यम से किया जाता था। हर साल 50 विद्यार्थियों को प्रशिक्षण के लिए चुना जाता। पाठ्यक्रम चार साल का था। सभी निर्धारित विषयों की परीक्षाओं में पास होने वाले विद्यार्थी को प्रमाण-पत्र दिया जाता था। जिस किसी के पास यह प्रमाण-पत्र होता, उसे एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धति के ज़रिये लोगों का इलाज करने और ज़रूरत समझे जाने पर सर्जरी करने की अनुमति होती। जो भारतीय इस कॉलेज से सर्टिफ़िकेट हासिल करते, उन्हें 'नेटिव डॉक्टर' यानी देशी डॉक्टर कहा जाता। साल 1835 में ही मद्रास में भी एक मेडिकल स्कूल खोला गया। चूँकि इसे भी अंग्रेज़ों ने खोला था, यहाँ भी नियम-क़ायदे कलकत्ता जैसे ही थे। पुर्तगाली सरकार ने गोवा में जो मेडिकल स्कूल शुरू किया था, वह 1842 में उन्नत होकर गोवा मेडिकल एंड सर्जिकल स्कूल बन गया। उन दिनों गोवा पुर्तगाल के अधीन था।

1843 में बॉम्बे में नये मेडिकल कॉलेज की आधारशिला रखी गयी। 1845 से इस कॉलेज में शिक्षण-प्रशिक्षण शुरू हुआ। 1912 में लखनऊ में किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज और 1925 में पटना में प्रिंस ऑफ़ वेल्स मेडिकल कॉलेज खुला। उस दौर में मद्रास का रॉयपुरम मेडिकल स्कूल और इंदौर का द किंग एडवर्ड मेडिकल स्कूल भी मशहूर था। 1917 में मद्रास में शुरू हुए स्टेनली मेडिकल स्कूल ने भी देश को अच्छे देशी डॉक्टर देने शुरू किये।

डॉ. रफ़ीउद्दीन अहमद ने 1928 में कलकत्ता में देश का पहला डेंटल कॉलेज खोला। अपनी ख़ुद की कमाई और मेहनत से कॉलेज की स्थापना की। डॉ.अहमद ने अमेरिका की यूनिवर्सिटी ऑफ़ लोवा से दंत-रोग चिकित्सा में डिग्री ली थी। भारत लौटकर उन्होंने कलकत्ता में डेंटल कॉलेज खोला। इसी वजह से वे भारत में 'दंत-चिकित्सा के जनक' के रूप में मशहूर हुए।

1943 में आगरा मेडिकल स्कूल को उन्नत बनाकर मेडिकल कॉलेज में तब्दील कर दिया गया।

एक के बाद एक भारत के सभी मेडिकल कॉलेजों में ब्रिटेन की तर्ज़ पर बैचलर ऑफ़ मेडिसिन एण्ड बैचलर ऑफ़ सर्जरी यानी एमबीबीएस पाठ्यक्रम की शुरुआत की गयी। देश-भर में पाठ्यक्रम एक समान कर दिया गया, यानी साल

1949 में भारत में एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धति का शिक्षण-प्रशिक्षण देने वाले संस्थान गिने-चुने थे। पश्चिम में विकसित आधुनिक चिकित्स-पद्धति वैसे तो भारत में सत्रहवीं शताब्दी से अपनायी जाने लगी थी, लेकिन बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में इसकी लोकप्रियता बढ़नी शुरू हुई। एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धति को सबसे पहले सोहलवीं शताब्दी में पुर्तगाली भारत लाये थे।

सुंदरय्या जिस साल मेडिकल विद्यार्थी बने, उस साल भारत-भर में सिर्फ़ सात मेडिकल कॉलेज थे। पॉन्डिचेरी, कलकत्ता, वेल्लूर, लखनऊ, पटना और पुणे के अलावा मद्रास में मेडिकल कॉलेज था। और, इन्हीं कॉलेजों में बैचलर ऑफ़ मेडिसिन एंड बैचलर ऑफ़ सर्जरी (एमबीबीएस) का कोर्स पढ़ाया जाता था। इसका सीधा मतलब यह था कि 1949 में भारत-भर में क़रीब 700 विद्यार्थी ही एमबीबीएस कोर्स में शामिल हुए थे और इनमें से एक थे सुंदरय्या। उन दिनों भारत-भर में बहुत कम एमबीबीएस डॉक्टर थे। कई लोग आयुर्वेद या फिर यूनानी चिकित्सकों के पास जाकर अपनी बीमारियों का इलाज कराया करते थे। एलोपैथी अस्पतालों को 'अंग्रेज़ी अस्पताल' कहा जाता था। यह धारणा बन गयी थी कि अगर अंग्रेज़ी अस्पताल के डॉक्टर मदद नहीं कर सकते हैं, तो उस मरीज़ की जान दुनिया में कोई नहीं बचा सकता है। सिर्फ़ अंग्रेज़ी दवाई में यह ताक़त है कि वह मरते हुए इन्सान को फिर से सेहतमंद बना सकती है। मौत के मुँह से इन्सान को बाहर ला सकती है।

उन दिनों सभी मेडिकल कॉलेजों में एमबीबीएस कोर्स का पाठ्यक्रम एक समान था। इन सभी कॉलेजों में ज़्यादातर शिक्षक वे चिकित्सक थे, जो अंग्रेज़ों के सैन्य अस्पतालों में काम कर चुके थे। लगभग सभी शिक्षक विदेश में पढ़कर आये हुए थे। मद्रास मेडिकल कॉलेज में भी ज़्यादातर शिक्षक ऐसे थे, जो अंग्रेज़ी सैन्य अस्पतालों में काम करके आये थे। सैन्य अस्पताल में काम करने की वजह से ये सभी शिक्षक नियम-क़ायदों और अनुशासन के मामले में पक्के और सख़्त थे। वैसे भी सुंदरय्या का जीवन अनुशासनबद्ध था। संघ का स्वयंसेवक होने की वजह से वे अनुशासनप्रिय थे। समय से पहले कक्षा में पहुँचना उनकी आदत थी। मद्रास में भी यह आदत बनी रही।

चूँकि मद्रास मेडिकल कॉलेज में ज़्यादातर बच्चे तमिल, मलयालम, कन्नड़ या तेलुगु मीडियम स्कूलों से पढ़ाई कर आये थे, अंग्रेजी भाषा पर इनकी पकड़ मजबूत

करने के मक़सद से विशेष कक्षाएँ चलायी गयीं। सुंदरय्या भी इन कक्षाओं में शामिल हुए। एमबीबीएस कोर्स की सारी शिक्षा अंग्रेज़ी में दी जाती है। परीक्षाएँ भी अंग्रेज़ी में होती हैं। कई विद्यार्थी ऐसे होते हैं, जिनका विषय-ज्ञान शानदार होता है, लेकिन अंग्रेज़ी भाषा पर पकड़ न होने के कारण वे परीक्षा में सवालों का सही तरह से जवाब नहीं लिख पाते हैं। एमबीबीएस कोर्स पूरा करने और एलोपैथी का डॉक्टर बनने के लिए अंग्रेज़ी का ज्ञान होना बेहद ज़रूरी होता है।

उन दिनों एमबीबीएस कोर्स के पहले साल में विद्यार्थियों को एनाटॉमी, फ़िज़ियोलॉजी और फ़ार्माकालॉजी के बारे में बताया-सिखाया जाता था। पहले दिन से ही सुंदरय्या ने सारा ध्यान पढ़ाई-लिखाई पर लगाना शुरू किया। सुंदरय्या अच्छे से जानते थे कि बिना मेहनत किये वे डॉक्टर नहीं बन सकते हैं। और, अगर उन्हें अच्छा डॉक्टर बनना है, तो ज़्यादा मेहनत करनी होगी। एक शानदार डॉक्टर बनने के मक़सद से सुंदरय्या ने विषयों को आत्मसात करना शुरू कर दिया।

चूँकि मद्रास शहर में उन दिनों तरह-तरह के राजनीतिक, सामाजिक आंदोलन हो रहे थे, सुंदरय्या जैसे युवा के लिए इन आंदोलनों के प्रभाव से दूर रहना संभव नहीं था। वैसे भी मद्रास शहर काफ़ी बड़ा था। यह नेल्लूर की तरह छोटा शहर नहीं था, यह एक महानगर था। एक ऐसा महानगर, जहाँ दक्षिण भारत के कई क्षेत्रों से अलग-अलग लोग आकर बसे हुए थे। इस शहर में कई संस्कृतियों का संगम था। यह शहर सत्रहवीं शताब्दी में अंग्रेज़ों द्वारा बनाया और बसाया गया था। इतिहास की किताबों के मुताबिक़, 1639 में ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी फ्रांसिस डे ने विजयनगर के राजा से कुछ ज़मीन लेकर इस शहर की स्थापना की थी। इसके बाद इस शहर का लगातार विस्तार होता चला गया। शहर सड़क-मार्ग, फिर जहाज-मार्ग से जोड़ा गया। आगे चलकर रेल-मार्ग और हवाई-मार्ग से भी शहर को दुनिया-भर से जोड़ा गया। कुछ ही सालों में यह ईस्ट इंडिया कंपनी के सबसे बड़े केंद्र के रूप में उभरा। दक्षिण भारत में अपनी पकड़ मजबूत करने के मक़सद से ईस्ट इंडिया कंपनी ने मद्रास को अपनी राजधानी बनाया। मद्रास प्रेसीडेंसी की राजधानी बना मद्रास शहर। 1857 में ईस्ट इंडिया कंपनी को हटाकर, जब ब्रिटेन की सरकार ने भारत में अपना प्रत्यक्ष शासन शुरू किया, तब भी मद्रास की प्रधानता और महत्ता बनी रही। अंग्रेज़ों ने कलकत्ता, मद्रास और बंबई को केंद्र बनाकर देश-भर में राज

करने के कोशिश की। चूँकि मद्रास एक बड़े प्रेसीडेंसी यानी उपनिवेशीय कॉलोनी का सबसे बड़ा केंद्र था, यहाँ बड़े-बड़े भवन बनाये गये। यह अंग्रेज़ों की छावनी भी बना रहा। शहर में नयी सड़कें बिछायी गयीं। लोगों की सुविधा के लिए बिजली और पेयजल की सप्लाई शुरू की गयी। कोर्ट और अस्पताल स्थापित किये गये। बड़े-बड़े पार्क बने। खेल-कूद के मैदान विकसित किये गये।

दूर-दूर से लोग आकर यहाँ बसने लगे। मद्रास न सिर्फ़ राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों का बड़ा केंद्र बना, बल्कि यह सांस्कृतिक और कला की गतिविधियों का भी प्रमुख केंद्र बनकर उभरा। दक्षिण भारत की चारों प्रमुख भाषाओं में फ़िल्में यहीं बनने लगी थीं।

आज़ादी की बाद भी मद्रास की महत्ता कम नहीं हुई। इस महानगर पर पाश्चात्य संस्कृति का काफ़ी प्रभाव रहा। अलग-अलग विचारधाराओं के लोगों के रहने की वजह से शहर का स्वभाव महानगरीय बना रहा।

कुछ दिनों के प्रवास में सुंदरय्या ने ग़ौर किया कि मद्रास में ज़्यादातर लोग ख़ुद को 'प्रगतिशील' बताते हुए गर्व महसूस करते हैं। ये लोग खुलकर हिंदू रीति-रिवाजों, धार्मिक और पौराणिक ग्रंथों के ख़िलाफ़ बोलते हैं। हिंदू विरोधी अवधारणा से सुंदरय्या बहुत आहत हुए। उन्हें लगा कि अगर इसी तरह से मद्रास में हिंदू शास्त्रों, रामायण-महाभारत जैसे पौराणिक ग्रंथों का विरोध होता रहा, तो हिंदू समाज टूट जाएगा। मद्रास महानगर में हिंदू विरोधी गतिविधियों ने सुंदरय्या के मन में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रति विश्वास और आस्था को और भी बढ़ा दिया। सुंदरय्या ने मद्रास में उस जगह का पता लगा लिया, जहाँ संघ की शाखाएँ आयोजित की जाती थीं। वे नियमित रूप से संघ की सायंकालीन शाखा में शामिल होने लगे।

एक दिन सुंदरय्या ने ऐसा काम किया, जिसे देखकर मेडिकल कॉलेज में सभी लोग दंग रह गये। सुंदरय्या संघ के गणवेश में, यानी सफ़ेद कमीज़ और ख़ाकी हाफ पैंट पहनकर मेडिकल कॉलेज में क्लास अटेंड करने पहुँच गये। जिस किसी ने सुंदरय्या को इस बेश में देखा, वह स्तब्ध रह गया। किसी ने सुंदरय्या से कुछ नहीं कहा। सभी चुप रहे। संघ के स्वयंसेवक की वेशभूषा में कॉलेज आकर सुंदरय्या ने यह संदेश दिया कि वे हिंदू राष्ट्रवाद के समर्थक हैं। इतना ही नहीं, उनकी यह कार्यवाही नास्तिकों को, वामपंथियों को, पेरियार के समर्थकों को खुली चुनौती भी

थी। सुंदरय्या ने इसी वेशभूषा में क्लास अटेंड की और कक्षाएँ ख़त्म होते ही हॉस्टल लौट आये। पूरे दिन कॉलेज और हॉस्टल में सुंदरय्या की इस खुली चुनौती पर चर्चा हुई। कुछ शिक्षकों को लगा कि अगर वामपंथी और नास्तिक नाराज़ हो गये, तो कॉलेज का माहौल बिगड़ सकता है। कॉलेज में नास्तिकों और कट्टर हिंदुवादियों में संघर्ष शुरू हो सकता है। शांति भंग हो सकती है। हिंसा हो सकती है और यह मेडिकल कॉलेज के लिए बिलकुल ठीक नहीं है। इन शिक्षकों ने प्रिंसिपल से सुंदरय्या के व्यवहार और रवैये की शिकायत की।

अगले दिन भी जब सुंदरय्या स्वयंसेवक संघ की वेशभूषा में कॉलेज पहुँचे, तब उन्हें क्लास अटेंड करने नहीं दिया गया। शिक्षक ने उन्हें पहले प्रिंसिपल से मिलने और उनकी अनुमति लेकर क्लास में शामिल होने को कहा। सुंदरय्या सीधे प्रिंसिपल के कमरे में गये।

सुंदरय्या को देखते ही प्रिंसिपल ने पूछा, "ये क्या पहनकर आये हो? क्या मेडिकल के विद्यार्थी इसी तरह के कपड़े पहनते हैं?

जवाब में सुंदरय्या ने कहा, "इन कपड़ों से क्या आपत्ति है? सभी विद्यार्थी तो अपनी मर्ज़ी के हिसाब से कपड़े पहनकर आते हैं। फिर मेरे कपड़ों पर आपत्ति क्यों?

प्रिंसिपल - "देखो, ज़्यादा होशियार मत बनो। तुम्हारे इस तरह के व्यवहार से दूसरों की भावनाओं को ठेंस पहुँच रही है। क्या तुम इस बात को जानते हो?"

सुंदरय्या - "नहीं, मैं नहीं जानता। वैसे भी मेरी वेशभूषा से किसी की भावना को ठेंस क्यों पहुँच सकती है?"

प्रिंसिपल - "तुम ज़्यादा ही होशियार बनने की कोशिश कर रहे हो। तुम्हें मालूम होना चाहिए की मद्रास स्टेट में क्या हो रहा है। यहाँ लोग आरएसएस से चिढ़ते हैं। आरएसएस के विरोधी हैं। कई लोगों को संघ की विचारधारा पसंद नहीं है।"

सुंदरय्या - "तो इससे मेरा क्या लेना-देना है? मुझे भी द्रविड़ कझगम की विचारधारा पसंद नहीं है। मैं पेरियार का विरोधी हूँ। लेकिन मैंने कभी किसी से कुछ नहीं कहा। न मैंने कभी किसी की वेशभूषा, किसी की भाषा पर आपत्ति की। मैं अपना काम कर रहा हूँ। वे भी अपना काम करें। मैंने कुछ ग़लत नहीं किया है।"

प्रिंसिपल - "सुंदरय्या, शायद तुम्हें लगता है कि तुम कुछ ग़लत नहीं कर रहे हो। लेकिन मैं तुमसे कह रहा हूँ, तुम ग़लत कर रहे हो। तुम्हें शायद नहीं मालूम ... तुम्हारी

इस वेशभूषा की वजह से कॉलेज में कभी भी लड़ाई-झगड़ा हो सकता है। तुम शायद नहीं देख पा रहे हो। तुम्हारे व्यवहार को लेकर तुम्हारे कुछ साथी बहुत नाराज़ हैं।"

सुंदरय्या - "आप क्या चाहते हैं? मुझे क्या करना चाहिए? मुझे दूसरों के सामने झुक जाना चाहिए? क्या मुझे दूसरों की तरह अपनी मर्ज़ी के कपड़े पहनने का अधिकार नहीं है? मैं न किसी के ख़िलाफ़ एक शब्द बोल रहा हूँ, न किसी को नुक़सान पहुँचा रहा हूँ। न अपने विचार किसी पर थोप रहा हूँ। मैं तो नियमों और अनुशासन का पालन कर रहा हूँ।

प्रिंसिपल - नहीं सुंदरय्या, तुम अनुशासन का पालन नहीं कर रहे हो। तुम्हें ऐसा कोई काम करने का अधिकार नहीं है, जिससे कॉलेज का माहौल बिगड़ता हो। किसी को भी अधिकार नहीं कि वह कोई ऐसा काम करे, जिससे लोगों में नफ़रत पैदा हो। मेरी बात मान जाओ। जैसे दूसरे विद्यार्थी कॉलेज आते हैं, वैसे ही तुम भी आओ। मेरी एक बात ध्यान से सुनो ... अस्पताल और मेडिकल कॉलेज में जाति, धर्म कोई मायने नहीं रखते। मायने रखती है विद्या और मानवता। यहाँ किसी विचारधारा की नहीं चलती। यहाँ बस विज्ञान की चलती है, चिकित्सा-शास्त्र की चलती है। तुम होनहार विद्यार्थी हो, मेरी बात समझो। कोई तुम्हें संघ का साथ देने से नहीं रोक सकता है, लेकिन कॉलेज में संघ ही नहीं, किसी अन्य संगठन की गतिविधि भी नहीं चलायी जा सकती है। कॉलेज के बाहर तुम्हें आज़ादी है, अपना मन का कहा मानने की। हर एक को कॉलेज में मर्यादा बनाये रखनी होगी।"

सुंदरय्या को बात समझ में आ गयी। उन्हें लगा कि अगर वे अपनी मर्ज़ी के हिसाब से काम करने की कोशिश करेंगे, तो उनके ख़िलाफ़ कार्यवाही हो सकती है। सुंदरय्या डॉक्टर बनने का लक्ष्य और दृढ़ संकल्प लेकर मद्रास आये थे। वे नहीं चाहते थे कि किसी कारण से उनकी डॉक्टरी पढ़ाई ख़राब हो। समझने और संभलने के बाद सुंदरय्या ने प्रिंसिपल से कहा, "सर, मैं आपके आदेश का पालन करूँगा। आप जैसा कहेंगे, वैसा करूँगा। मैं यहाँ डॉक्टर बनने आया हूँ और डॉक्टर बनने के बाद ही कॉलेज छोड़ूँगा।"

प्रिंसिपल ने सुंदरय्या के क़रीब जाकर उनकी पीठ थपथपायी और कहा, "शाबाश, जाओ, मन लगाकर पढ़ाई करो।" इसके बाद सुंदरय्या हॉस्टल गये और साधारण वेशभूषा में कॉलेज लौटे।

एक तरफ़ डॉक्टरी पढ़ाई चलती रही, दूसरी तरफ़ संघ के कार्यक्रमों में भागीदारी जारी रही।

पहले साल सुंदरय्या और उनके साथियों को लाश की चीर-फाड़ कर मानव-शरीर के अलग-अलग अंगों और उनके काम करने के तरीक़े के बारे में बताया गया। पहले साल सुंदरय्या ने मानव शरीर-संरचना के साथ-साथ अलग-अलग बीमारियों के इलाज के लिए अलग-अलग दवाइयों, औषधियों के इस्तेमाल के बारे में भी जाना।

मेडिकल कॉलेज में जब भी कोई परीक्षा हुई, सुंदरय्या हमेशा पास हुए। ऐसी कोई भी परीक्षा नहीं थी, जिसमें सुंदरय्या फेल हुए हों। उन दिनों भी कई विद्यार्थी मेडिकल कॉलेज की परीक्षाओं में फेल हो जाते थे। अलग-अलग परीक्षाओं में फेल होने की वजह से चार साल का एमबीबीएस कोर्स पाँच या छह साल में पूरा कर पाते थे। लेकिन सुंदरय्या इन विद्यार्थियों में शुमार नहीं थे। वे समय की कीमत को अच्छे से जानते थे। वे नहीं चाहते थे कि उनका एक साल भी बर्बाद जाए। वे निर्धारित समय-सीमा में, सही समय पर एमबीबीएस का कोर्स पूरा कर लोगों के इलाज में लग जाना चाहते थे। सुंदरय्या ने फ़ैसला कर लिया था कि वे अपना जीवन समाज के ग़रीब और निःसहाय वर्ग के रोगियों के इलाज में समर्पित करेंगे। यही वजह थी कि वे सिर्फ़ एमबीबीएस की डिग्री लेने के लिए पढ़ाई नहीं कर रहे थे, वे आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र को अच्छे से समझने और उसका कारगर तरह से इस्तेमाल करने के लिए शिक्षा ले रहे थे।

सुंदरय्या की स्मरण-शक्ति काफ़ी तगड़ी थी। इस वजह से परीक्षाएँ पास करने में उन्हें कोई ज़्यादा दिक़्क़त नहीं हुई। स्वभाव मेहनती था, इसका उन्हें मेडिकल कॉलेज के दिनों में फ़ायदा भी हुआ। ऐसा भी नहीं था कि सुंदरय्या का जीवन सिर्फ़ कॉलेज और संघ के बीच सिमटकर रह गया था। चूँकि मद्रास में ज़्यादातर लोग तमिल भाषा का इस्तेमाल करते थे, सुंदरय्या ने तमिल भाषा सीखनी शुरू की। एक साल के प्रवास में ही सुंदरय्या लोगों से तमिल में संवाद करने लगे। इतना ही नहीं, अंग्रेज़ी भाषा पर अपनी पकड़ मजबूत करने के मक़सद से सुंदरय्या हर दिन 'दि हिंदू' अख़बार पढ़ने लगे। अख़बार पढ़ने से उन्हें कई तरह से फ़ायदा हुआ। न सिर्फ़ अंग्रेज़ी भाषा पर पकड़ मजबूत होती चली गयी, बल्कि देश और दुनिया में क्या हो

रहा है, इसकी भी जानकारी उन्हें लगातार मिलती रही।

सुंदरय्या उम्दा दर्ज़े के खिलाड़ी थे। कबड्डी उनका पसंदीदा खेल रहा। मद्रास में भी सुंदरय्या ने कबड्डी के मैदान में अपने प्रतिद्वंद्वियों को ख़ूब छकाया। कुछ रईस विद्यार्थियों से दोस्ती की वजह से सुंदरय्या को मद्रास में टेनिस सीखने का मौक़ा मिला। कुछ महीनों में वे टेनिस के शानदार खिलाड़ी बन गये। उनके फोर्हैन्ड और बैक्हैन्ड शॉट, दोनों का ही प्रतिद्वंद्वियों के पास कोई जवाब नहीं होता।

मद्रास-प्रवास के दौरान संगीत से सुंदरय्या का प्रेम परवान चढ़ गया। उन्होंने न सिर्फ़ माउथ ऑर्गन और फिडिल बजाना सीख लिया, बल्कि पियानो पर भी अपना हाथ जमा लिया। चूँकि संघ की शाखाओं में नियमित रूप से शामिल होते थे, नेताओं के भाषण लगातार सुनते रहते थे, सुंदरय्या एक ओजस्वी वक्ता भी बन गये। संघ की शाखाओं में नये सदस्यों को अलग-अलग विषयों पर जानकारियाँ देने लगे। कॉलेज में और कॉलेज परिसर के बाहर होने वाली वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेने लगे। जो कोई सुंदरय्या का भाषण सुनता, वह उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। मेडिकल कॉलेज के दिनों में सुंदरय्या ने बहुमुखी प्रतिभा के धनी विद्यार्थी के रूप में ख्याति अर्जित की। जिस किसी को सुंदरय्या की कला देखने का मौक़ा मिलता, वह उनका प्रशंसक बन जाता।

सुंदरय्या जब एमबीबीएस कोर्स के तीसरे साल में थे, तब तेलुगुभाषियों ने अपने लिए अलग राज्य की माँग को लेकर आंदोलन तेज़ कर दिया। 19 अक्टूबर 1952 को महात्मा गांधी के अनुयायी और कांग्रेसी नेता पोट्टि श्रीरामुलु तेलुगुभाषियों के लिए अलग राज्य की माँग के समर्थन में आमरण अनशन पर बैठ गये। श्रीरामुलु पक्के गांधीवादी थे। श्रीरामुलु ने आज़ादी की लड़ाई में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। 16 मार्च 1901 को मद्रास में रहने वाले एक तेलुगुभाषी वैश्य परिवार में जन्मे पोट्टि श्रीरामुलु पढ़ाई में तेज़ थे। स्कूली शिक्षा पूरी होते ही उन्हें रेलवे में नौकरी मिल गयी थी। नौकरी के दौरान श्रीरामुलु ने एक बार गांधीजी का भाषण सुना। इस भाषण से वे इतना प्रभावित हुए कि सरकारी नौकरी छोड़ दी और गांधीजी से मिलने अहमदाबाद के साबरमती आश्रम चले गये। गांधीजी के कहने पर वे आज़ादी की लड़ाई में कूद पड़े। श्रीरामुलु ने 1930 में हुए नमक सत्याग्रह में हिस्सा लिया। अंग्रेज़ सरकार ने जब नमक पर टैक्स लगा दिया था, तब महात्मा गांधी ने इस क़ानून के

ख़िलाफ़ एक आंदोलन की शुरुआत की। गांधीजी ने लोगों से उनके साथ समुद्र की तरफ़ चलने और फिर नमक हाथ में लेकर नमक विरोधी क़ानून भंग करने का आह्वान किया। गांधीजी के साथ 77 लोगों ने अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से समुद्र तट के समीप बसे गाँव दांडी तक पैदल यात्रा की और 6 अप्रैल 1930 को नमक हाथ में लेकर नमक विरोधी क़ानून को तोड़ा। क़ानून तोड़ने पर गांधीजी समेत सभी सत्याग्रहियों को गिरफ़्तार कर लिया। सत्याग्रह में शामिल होने पर श्रीरामुलु को भी अंग्रेज़ हुकूमत ने जेल में डाल दिया।

श्रीरामुलु ने गांधीजी के हर आदेश का पालन किया और उनके कहे मुताबिक़ काम करते हुए लोगों को आज़ादी की लड़ाई में शामिल होने के लिए प्रेरित करते रहे। 1942 में जब गांधीजी ने 'अंग्रेज़ों भारत छोड़ो' का नारा दिया, तब भी आज़ादी के दीवानों के साथ श्रीरामुलु सत्याग्रह करने लगे। एक बार फिर अंग्रेज़ हुकूमत ने श्रीरामुलु को गिरफ़्तार किया।

श्रीरामुलु न सिर्फ़ आज़ादी की लड़ाई में नायक की भूमिका निभा रहे थे, बल्कि सामाजिक कुरीतियों को मिटाने के लिए संघर्ष भी कर रहे थे। उन्होंने बाल-विवाह, छुआछूत जैसी कुरीतियों के ख़िलाफ़ आंदोलन शुरू किया हुआ था। 1946 में दलितों को मंदिरों में प्रवेश दिलाने की माँग को लेकर श्रीरामुलु आमरण अनशन पर बैठ गये थे। चूँकि गांधीजी को लग रहा था कि आज़ादी दूर नहीं है, उन्होंने श्रीरामुलु से अनशन ख़त्म करने और आज़ादी की लड़ाई पर पूरा ध्यान केंद्रित करने को कहा। गांधीजी की बात मानते हुए श्री रामुलु ने अनशन ख़त्म किया और आज़ादी की लड़ाई में जुट गये।

आज़ादी मिलने के बाद श्रीरामुलु ने एक बार फिर सामाजिक कुरीतियों के ख़िलाफ़ आंदोलन तेज़ कर दिया। चूँकि उनका जन्म मद्रास में हुआ था और उन्होंने काफ़ी समय मद्रास में बिताया था, वे भी मद्रास राज्य में तमिलभाषियों के दबदबे का शिकार हुए थे। श्रीरामुलु ने भाषायी आधार पर नये राज्य बनाने के लिए भारत सरकार पर दबाव डालना शुरू कर दिया था। जब केंद्र सरकार ने तेलुगुभाषियों के लिए अलग राज्य की माँग पर कोई कार्यवाही नहीं की, तब श्रीरामुलु अनशन पर बैठ गये। इस अनशन की वजह से तमिल और तेलुगु भाषियों के बीच मनमुटाव बढ़ गया। मेडिकल कॉलेज में इस मनमुटाव का असर कुछ ख़ास नहीं था, लेकिन विद्यार्थी, शिक्षक और कर्मचारी भाषा के नाम पर बँट गये थे।

श्रीरामुलु के अनशन का भारत सरकार पर कोई असर नहीं हुआ। कुछ कांग्रेसी नेताओं ने श्रीरामुलु को अनशन तोड़ने के लिए मनाने की कोशिश की, लेकिन वे नहीं माने। अनशन के पचास दिन पूरे होने पर भी जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व वाली सरकार से कोई सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं मिली। अनशन की वजह से श्रीरामुलु की हालत लगातार बिगड़ती चली जा रही थी। अनशन के 56वें दिन वे कोमा में चले गये। अनशन के 58वें दिन, यानी 15 दिसंबर 1952 को उन्होंने दम तोड़ दिया था। श्रीरामुलु के बलिदान की वजह से तेलुगुभाषियों का केंद्र सरकार के ख़िलाफ़ ग़ुस्सा परवान चढ़ गया। हर तरफ़ तेलुगुभाषी लोग सरकार के ख़िलाफ़ आंदोलन करने लगे। श्रीरामुलु की मौत के चार दिन बाद यानी 15 दिसम्बर 1952 को सरकार को तेलुगुभाषियों के लिए अलग 'आंध्र' राज्य के गठन की घोषणा करनी पड़ी। 1 अक्टूबर 1953 को आंध्र राज्य का आधिकारिक तौर पर गठन हुआ। रायलसीमा का कर्नूल शहर नये राज्य की राजधानी बना।

लेकिन सुंदरय्या को केंद्र सरकार पर बहुत ग़ुस्सा आया। वे नेहरूजी के विरोधी हो गये। उनका ग़ुस्सा इस बात को लेकर था कि अनशन के पचास दिन बाद भी सरकार ने श्रीरामुलु की माँग पर कोई कार्यवाही नहीं की। श्रीरामुलु कोई सामान्य व्यक्ति नहीं थे। वे प्रमुख स्वतंत्रता-सेनानी थे। गांधीजी के प्रिय शिष्यों में एक थे। एक बार गांधीजी ने श्रीरामुलु की देशभक्ति और समर्पण-भाव से प्रभावित होकर कहा था कि, "अगर मेरे पास श्रीरामुलु की तरह ग्यारह समर्थक और होते, तो भारत को ब्रिटिश शासन से एक साल में आज़ादी मिल जाती।"

1953 में हुई एक और बड़ी राजनीतिक घटना की वजह से सुंदरय्या नेहरूजी के मुखर और प्रखर विरोधी हो गये। रहस्यमयी हालातों में भारतीय जन संघ के संस्थापक डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की कश्मीर में मौत ने सुंदरय्या को अंदर से हिलाकर रख दिया। मद्रास में जब सुंदरय्या को डॉ. मुखर्जी की मौत की ख़बर मिली, तो वे बहुत दुखी हुए और नेहरू सरकार के ख़िलाफ़ उनका ग़ुस्सा आसमान छू गया।

डॉक्टर मुखर्जी भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 के विरोधी थे। वे चाहते थे कि कश्मीर पूरी तरह से भारत का हिस्सा बने और वहाँ अन्य राज्यों की तरह समान क़ानून लागू हो। अनुच्छेद 370 के विरोध में उन्होंने आंदोलन की शुरुआत की। डॉक्टर मुखर्जी का कहना और मानना था कि, "एक देश में दो निशान, दो

विधान और दो प्रधान नहीं चलेंगे।" डॉक्टर मुखर्जी चाहते थे कि कश्मीर में जाने के लिए किसी भारतीय को किसी तरह की परमिट यानी अनुमति न लेनी पड़े। कश्मीर भारत का हिस्सा है और उसे भी भारत के दूसरे राज्यों के समान अधिकार दिये जाने चाहिए।

उन दिनों कश्मीर जाने के लिए भारत के अन्य राज्यों में रहने वाले नागरिकों को कश्मीर-सरकार से परमिट लेनी पड़ती थी। 8 मई 1953 को डॉक्टर मुखर्जी बिना अनुमति के दिल्ली से कश्मीर के लिए रवाना हुए। दो दिन बाद, यानी 10 मई को वे पंजाब के जालंधर पहुँचे। जालंधर में डॉक्टर मुखर्जी ने कहा था, "हम जम्मू-कश्मीर में बिना अनुमति के जाएँ, ये हमारा मूलभूत अधिकार होना चाहिए।" 11 मई को श्रीनगर जाते वक़्त डॉक्टर मुखर्जी को गिरफ़्तार कर लिया गया। उन्हें नज़रबंद कर लिया गया। 22 जून को उनकी तबीयत बिगड़ने लगी और 23 जून को रहस्यमय परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हो गयी। इस मृत्यु को लेकर कई सवाल खड़े हुए। केंद्र सरकार और जम्मू-कश्मीर सरकार पर कई तरह के आरोप लगे। सवाल पूछा जाने लगा कि आख़िर डॉक्टर मुखर्जी की तबीयत अचानक कैसे बिगड़ी? जब उनकी तबीयत बिगड़नी शुरू हुई, तब उनका इलाज क्यों नहीं किया गया? उन्हें अस्पताल क्यों नहीं ले जाया गया? चूँकि डॉक्टर मुखर्जी प्रखर राष्ट्रवाद के अगुआ थे, उनकी मौत को लेकर हिंदू राष्ट्रवादी काफ़ी आक्रोशित हुए।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी देश के अग्रणी नेताओं में एक थे। 6 जुलाई 1901 को एक प्रतिष्ठित बांग्लाभाषी ब्राह्मण परिवार में उनका जन्म हुआ। उनके पिता आशुतोष बाबू अपने ज़माने के मशहूर शिक्षाविद् थे। बचपन से वे पढ़ाई-लिखाई में काफ़ी तेज़ थे। होनहार और गुणवान थे। उन्होंने 1917 में मैट्रिक की परीक्षा पास की। इसके बाद 1921 में बी.ए. की डिग्री हासिल की। श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने 22 वर्ष की आयु में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी साल इनकी शादी सुधादेवी से हुई। क़ानून की पढ़ाई करने के लिए 1923 में वे विदेश चले गये और 1926 में इंग्लैंड से बैरिस्टर बनकर लौटे। 33 वर्ष की अल्पायु में वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति बने। इस पद पर नियुक्ति पाने वाले वे सबसे कम आयु के कुलपति थे। एक विचारक तथा प्रखर शिक्षाविद् के रूप में उनकी उपलब्धि तथा ख्याति निरंतर आगे बढ़ती गयी।

तीस के दशक में श्यामा प्रसाद राजनीति में सक्रिय हो गये। आज़ादी की लड़ाई में नायक की भूमिका निभाने लगे। उन्होंने ग़ैर-कांग्रेसी हिंदुओं की मदद से 'कृषक प्रजा पार्टी' से मिलकर 'प्रगतिशील गठबंधन' बनाया। 12 दिसंबर 1941 को वे बंगाल के प्रधानमंत्री ए. के. फ़ज़रूल हक़ के मंत्रिमंडल में वित्त मंत्री बने। इसी दौरान वे क्रांतिकारी नेता, स्वतंत्रता-सेनानी, और विचारक विनायक दामोदर सावरकर के राष्ट्रवाद के प्रति आकर्षित हुए और हिंदू महासभा में शामिल हो गये।

मुसलमानों के लिए अलग देश, पाकिस्तान की माँग को लेकर मुस्लिम लीग के आंदोलन के ख़िलाफ़ थे श्यामा प्रसाद। वे मुस्लिम लीग को लेकर कांग्रेस के नरम रवैये के भी ख़िलाफ़ थे। श्यामा प्रसाद उन नेताओं में थे, जो यह मान रहे थे कि गांधीजी और नेहरूजी मुसलमानों को लेकर तुष्टीकरण की राजनीति कर रहे हैं। उन्होंने महात्मा गांधी की अहिंसावादी नीति का विरोध किया। एक बयान में श्यामा प्रसाद ने कहा था, "वह दिन दूर नहीं, जब गांधीजी की अहिंसावादी नीति के अंधानुसरण के फलस्वरूप समूचा बंगाल पाकिस्तान का अधिकार क्षेत्र बन जाएगा।" उन्होंने नेहरूजी और गांधीजी की तुष्टिकरण की नीति का भी हमेशा खुलकर विरोध किया। वे धर्म के नाम पर देश के विभाजन के ख़िलाफ़ हो गये। लेकिन श्यामा प्रसाद विभाजन को नहीं रोक पाये। भारत आज़ाद हुआ, साथ ही मुल्क का बँटवारा हो गया। पाकिस्तान बन गया। आधा पंजाब और आधा बंगाल पाकिस्तान में चला गया।

आज़ादी के बाद नेहरूजी देश के पहले प्रधानमंत्री बने। गांधीजी और सरदार वल्लभभाई पटेल के अनुरोध पर श्यामा प्रसाद मुखर्जी आज़ाद भारत के पहले केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल हुए। उन्हें उद्योग और इस्पात मंत्री बनाया गया। देश में नये कारख़ाने शुरू करवाने में श्यामा प्रसाद ने महती भूमिका निभानी शुरू की।

लेकिन 1950 में भारत के संविधान के मंजूर होने के बाद श्यामा प्रसाद ने नेहरू मंत्रिमंडल से इस्तीफ़ा दे दिया। उन्हें नेहरूजी की कई नीतियाँ पसंद नहीं आयीं। वे कश्मीर को मिले अधिकारों को लेकर नाराज़ थे। वे कश्मीर को भारत में विलीन करवाने के पक्षधर थे। जिस तरह से हैदराबाद, जूनागढ़ और दूसरी रियासतें भारत में विलीन हो गयी थीं, वे कश्मीर को भी उसी तरह भारत में विलीन करवाना चाहते थे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर-संघचालक माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर से सलाह-मशवरा करने के बाद मुखर्जी ने 21 अक्टूबर 1951 को राष्ट्रीय जनसंघ

की स्थापना की। 1952 में पहली बार देश में आम चुनाव हुए। इन चुनावों में राष्ट्रीय जनसंघ के तीन सांसद चुने गए, जिनमें मुखर्जी एक थे।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 की वजह से जम्मू-कश्मीर को विशेष राज्य का दर्ज़ा मिला। इतिहास बताता है कि साल 1947 में भारत-पाकिस्तान के विभाजन के समय जम्मू-कश्मीर के राजा हरि सिंह स्वतंत्र रहना चाहते थे। लेकिन बाद में उन्होंने कुछ शर्तों के साथ भारत में विलय के लिए सहमति जतायी। जम्मू-कश्मीर का भारत के साथ कैसा संबंध होगा, इसका मसौदा जम्मू-कश्मीर सरकार ने ही तैयार किया था। जम्मू-कश्मीर की संविधान-सभा ने 27 मई, 1949 को कुछ बदलाव सहित अनुच्छेद 306 ए (बाद में अनुच्छेद 370) को स्वीकार कर लिया। फिर 17 अक्टूबर 1949 को यह अनुच्छेद भारतीय संविधान का हिस्सा बन गया। भारतीय संसद ने 26 नवंबर 1949 को संविधान को स्वीकार किया। 'इंस्ट्रूमेंट्स ऑफ़ ऐक्सेशन ऑफ़ जम्मू एंड कश्मीर टु इंडिया' की शर्तों के मुताबिक़, आर्टिकल 370 में यह उल्लेख किया गया कि देश की संसद को जम्मू-कश्मीर के लिए रक्षा, विदेश मामले और संचार के सिवा अन्य किसी विषय में क़ानून बनाने का अधिकार नहीं होगा।

इसके बाद भारतीय संविधान में अनुच्छेद 370 का प्रावधान किया गया, जिसके तहत जम्मू-कश्मीर को विशेष अधिकार दिये गये। इसके बाद साल 1951 में राज्य की संविधान-सभा को अलग से बुलाने की अनुमति दी गयी। जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए अलग संविधान की माँग भी उठनी शुरू हुई।

कई इतिहासकारों का कहना है कि डॉ. भीमराव अम्बेडकर भारतीय संविधान में अनुच्छेद 370 के पक्ष में नहीं थे। इस अनुच्छेद को संविधान में जोड़ने का प्रस्ताव शेख अब्दुल्ला ने रखा था और यह अनुच्छेद मामूली चर्चा के बाद संविधान में जोड़ दिया गया। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने पाँच महीनों की बातचीत के बाद अनुच्छेद 370 को संविधान में जोड़ने का प्रस्ताव पेश किया था। डॉक्टर अम्बेडकर ने कहा था कि वे जम्मू-कश्मीर को लेकर केंद्र की नीति से खुश नहीं हैं। आगे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 35 ए को 'प्रेसिडेंशियल ऑर्डर' के ज़रिये जोड़ा गया। जब इस प्रेसिडेंशियल ऑर्डर को जारी किया गया, उस समय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू थे और राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसाद थे। अनुच्छेद 370

के प्रावधानों के अनुसार, रक्षा, विदेश नीति और संचार मामलों को छोड़कर किसी अन्य मामले से जुड़ा क़ानून बनाने और लागू करवाने के लिए केंद्र को राज्य सरकार की अनुमति चाहिए। इसी विशेष दर्ज़े के कारण जम्मू-कश्मीर राज्य पर संविधान का अनुच्छेद 356 लागू नहीं होता। इस कारण भारत के राष्ट्रपति के पास राज्य के संविधान को बर्ख़ास्त करने का अधिकार नहीं है। अनुच्छेद 370 के चलते, जम्मू-कश्मीर का अलग झंडा होता है। इसके साथ ही जम्मू -कश्मीर की विधानसभा का कार्यकाल 6 वर्षों का होता है। वहाँ का मुख्यमंत्री वज़ीर-ए-आज़म यानी प्रधानमंत्री कहलाया जाएगा। अनुच्छेद 370 की वजह से भारत के राष्ट्रपति जम्मू-कश्मीर में आर्थिक आपालकाल नहीं लगा सकते हैं।

भारत की एकता और अखंडता के लिए दिये बलिदान की वजह से श्यामा प्रसाद मुखर्जी के प्रति सुंदरय्या के मन में सम्मान की भावना काफ़ी बढ़ गयी। इस बलिदान ने हिंदू राष्ट्रवादियों को अपना संकल्प और भी दृढ़ करने के लिए मजबूर किया। संघ के लाखों स्वयंसेवकों की तरह सुंदरय्या ने भी हिंदू अस्मिता, हिंदू स्वाभिमान, भारत की अखंडता को बनाये रखने के लिए सब कुछ न्योछावर करने का संकल्प लिया।

राजनीतिक और सामाजिक क्रांतियों के बीच सुंदरय्या की डॉक्टरी पढ़ाई जारी रही। साल-दर-साल वे परीक्षा में पास होते गये।

इसी बीच बुआ आदियम्मा के मन में सुंदरय्या को लेकर तरह-तरह के ख़याल आने लगे। बुआ को लगा कि महानगर के दूसरे युवाओं के प्रभाव में सुंदरय्या भी प्यार-व्यार के चक्कर में पड़ जाएँगे। उन्हें शक हुआ कि सुंदरय्या किसी लड़की के जाल में फँस भी सकते हैं। सुंदरय्या युवा थे, जोशीले थे, बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, उनका भविष्य उज्ज्वल था, ऐसे में लड़कियों का उनकी ओर आकर्षित होना सहज था। उन दिनों आदियम्मा ने विद्यार्थियों से जुड़े कई प्रेम-प्रसंग सुने हुए थे। वे यह जान चुकी थीं कि पेरियार के आंदोलनों की वजह से मद्रास में अंतर-जातीय विवाहों का चलन बढ़ गया था। बुआ नहीं चाहती थीं कि उनके भतीजे की शादी किसी ग़ैर-यादव लड़की से हो। बुआ को अपनी जाति पर बहुत अभिमान था। बुआ ने मेडिकल विद्यार्थियों के बारे में कई क़िस्से सुने थे। उन्होंने सुना था कि कई मेडिकल विद्यार्थी कॉलेज के दिनों में ही अपना जीवन-साथी चुन लेते हैं। इनमें से ज़्यादातर

मामलों में जीवन-साथी डॉक्टरी पेशे से जुड़ी लड़की होती है। चूँकि सुंदरय्या के पिता का बहुत पहले निधन हो चुका था और उनके बड़े भाई वेंकट सुबय्या उनके अभिभावक थे, बुआ ने शादी की बात इन्हीं से की। बुआ अपने एक बेहद क़रीबी रिश्तेदार की लड़की की शादी सुंदरय्या से करवाना चाहती थीं। यह बात उन्होंने पहले भी कई लोगों से कही थी। लेकिन अब उन्हें लगा कि अगर अभी सुंदरय्या की शादी नहीं की गयी, तो वे अपनी मर्ज़ी से शादी कर लेंगे। इसी वजह से उन्होंने शादी में देर न करने की ठान ली।

वेंकट सुबय्या को भी शादी का प्रस्ताव पसंद आया। वे भी बुआ की सुझायी लड़की लक्ष्मी कांतम्मा को बहुत प्यार करते थे। घर-परिवार में सभी लक्ष्मी कांतम्मा को 'कांतम्मा' कहकर बुलाते थे। कांतम्मा सुंदर थीं। पढ़ी-लिखी थीं। गुणवान थीं। घर-परिवार के कामकाज करना जानती थीं। संगीत में भी उनकी काफ़ी दिलचस्पी थी। उनकी आवाज़ बहुत मधुर थी। गायन-कला भी सीख रही थीं। वेंकट सुबय्या को भी लगा कि कांतम्मा ही सुंदरय्या के लिए आदर्श जीवन-साथी होंगी। कांतम्मा सुंदरय्या की फुफेरी बहन लगती थीं। कांतम्मा पाँच बहनों में सबसे छोटी थीं। उनकी चारों बहनों की शादी हो चुकी थी। कांतम्मा की सबसे बड़ी बहन सुभद्रम्मा के पति राघवय्या सरकारी नौकरी करते थे। समाज में उनका रुतबा बड़ा था।

दक्षिण भारत में रिश्तेदारी में शादी करने की परंपरा शताब्दियों से चली आ रही है। मामा-भाँजी की शादी आम बात है। दक्षिण में मामा-भाँजी की शादी को शुभ और उत्तम माना जाता है। आमतौर पर लड़कियों की शादी छोटी उम्र में कर दी जाती है और इसी वजह से वे माँ जल्दी बन जाती हैं। अगर छोटे भाई की उम्र ज़्यादा न हो तो, बहन अपनी बेटी का विवाह अपने छोटे भाई से करवाती है।

कुछ इतिहासकारों का कहना है कि मामा-भाँजी की शादी की परंपरा का मुख्य कारण ज़मीन-जायदाद है। बहन मायके में अपनी हिस्सेदारी न माँगे, इसलिए उसकी बेटी को घर में शादी करके रख लिया जाता है।

इतना ही नहीं, दक्षिण भारत में भाई-बहन के बच्चों के बीच विवाह का भी चलन है। चचेरे, ममेरे, फुफेरे भाई से शादी से कई परिवारों को परहेज़ नहीं है।

मेडिकल कॉलेज से छुट्टी मिलते ही सुंदरय्या शादी के किए कोवूरु आ गये। रीति-रिवाजों के साथ शादी सम्पन्न हुई। शादी समारोह में सभी रिश्तेदारों ने शिरकत

की। शादी से जुड़े कार्यक्रम पूरे होते ही सुंदरय्या डॉक्टरी पढ़ाई पूरी करने के लिए मद्रास लौट आये। सुंदरय्या अकेले ऐसे मेडिकल विद्यार्थी थे, जिनकी शादी हो गयी थी। बाक़ी सभी विद्यार्थी डॉक्टर बनने और फिर एक क़ाबिल डॉक्टर के रूप में शोहरत कमाने के बाद शादी करने का फ़ैसला ले चुके थे।

देश में आज़ादी के बाद भी गाँवों-देहातों में बाल-विवाह की प्रथा जारी थी। सुंदरय्या अपने परिवार में अकेले ऐसे थे, जिनकी शादी बीस साल उम्र पार होने के बाद हुई थी। परिवार में सभी की शादी छोटी उम्र में ही करवा दी गयी थी।

मेडिकल कॉलेज लौटने के बाद सुंदरय्या ने अपना सारा ध्यान पढ़ाई पर लगाया। एमबीबीएस कोर्स का तीसरा साल पूरा होने को था और वे चाहते थे कि इस साल की सारी परीक्षाएँ शानदार नंबरों से पास करें। सुंदरय्या अब काफ़ी समय लाइब्रेरी में बिताने लगे। किताबों से उन्हें दोस्ती हो गयी। चिकित्सा-विज्ञान से जुड़ी किताबें और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते हुए उन्हें अहसास हुआ कि मानव-शरीर के रहस्यों को समझने के लिए एक जीवन काफ़ी नहीं है। जैसे-जैसे वे किताबें पढ़ते गये, वैसे-वैसे नये-नये विषयों को आत्मसात करने की उनकी इच्छा बलवती होती चली गयी। पाठ्यक्रम के बाहर की किताबों के अध्ययन से सुंदरय्या को काफ़ी फ़ायदा हुआ। उनका ज्ञान बढ़ा। एलोपैथी चिकित्सा-पद्धति को लेकर उनकी समझ बढ़ी। सुंदरय्या की मेहनत रंग लायी और तीसरे साल की परीक्षाओं में भी उन्हें शानदार नंबर मिले। एमबीबीएस कोर्स के पहले तीन साल में सुंदरय्या ने अन्य सभी विद्यार्थियों के साथ एनाटॉमी, फिज़ीआलजी, माइक्रोबायोलॉजी, फार्माकालॉजी, बायोकेमिस्ट्री, फोरेंसिक मेडिसिन, टॉक्सिकोलॉजी, आफ्थैल्मालॉजी जैसे विषयों की पढ़ाई की। लेकिन सुंदरय्या उन विद्यार्थियों में थे, जो किसी भी विषय की परीक्षा में कभी फेल नहीं हुए। उन दिनों कई विद्यार्थी सभी विषयों की परीक्षा में पास नहीं हो पाते थे। विषय इतने कठोर होते थे कि उन्हें आत्मसात करना आम विद्यार्थियों के लिए आसान नहीं था। कई घंटों के अध्ययन के बाद भी कई विद्यार्थी विषय-ज्ञान हासिल नहीं कर पाते थे। मेडिकल विद्यार्थियों का परीक्षा में फेल होना आम बात थी। बैकलॉग होना आम बात थी। पाँच साल का कोर्स कई विद्यार्थी छह-सात सालों में पूरा कर पाते थे। सुंदरय्या उन विद्यार्थियों के समूह में थे, जो हर परीक्षा में पास होते थे।

तीसरे साल की परीक्षाएँ होने के बाद परिवारवालों के कहने पर सुंदरय्या ने अपनी पत्नी कांतम्मा को अपने पास मद्रास बुला लिया। मद्रास में सुंदरय्या कॉलेज परिसर में एक अलग कमरा लेकर पत्नी कांतम्मा के साथ रहने लगे। चौथे साल की पढ़ाई और दाम्पत्य-जीवन एक साथ शुरू हुआ।

चौथे साल में मेडिसिन की पढ़ाई जारी रही। इसी साल सुंदरय्या का परिचय 'सर्जरी' से हुआ। चिकित्सा-शास्त्र में मुख्य रूप से दो प्रमुख विभाग हैं - कायचिकित्सा (मेडिसिन) एवं शल्यचिकित्सा (सर्जरी)। इन्हीं दोनों प्रमुख विभागों के आधार पर डॉक्टरों यानी चिकित्सकों में भी दो परंपराएँ चलती हैं। एक कायचिकित्सक (फिज़िशन) और दूसरा शल्यचिकित्सक (सर्जन)। फिज़िशन दवाइयों से रोग दूर करने की कोशिश करते हैं, जबकि सर्जन शल्यचिकित्सा के ज़रिये इन्सान को रोगमुक्त करते हैं। जब दवाइयों से इलाज नहीं हो पाता है या फिर आपात स्थिति उत्पन्न होती है, तब मरीज़ की जान बचाने, उसे रोगमुक्त करने के लिए सर्जरी करनी पड़ती है। सर्जन बनने के लिए अलग कौशल की ज़रूरत होती है। सिर्फ़ मेडिसिन का ज्ञान पर्याप्त नहीं होता। आमतौर पर सर्जन दो तरह की प्रक्रियाएँ करते हैं, सर्जरी और ऑपरेशन। शरीर के किसी अंग में लगी चोट, कटना और टूटना जैसी समस्याएँ को दूर करने की प्रक्रिया सर्जरी कहलाती है। शरीर के किसी अंग में रोग, सड़न जैसी समस्याओं को दूर करने की प्रक्रिया को ऑपरेशन कहते हैं। सर्जरी और ऑपरेशन आसान काम नहीं हैं। ज़्यादातर लोगों के जीवन में सर्जरी की ज़रूरत नहीं पड़ती है। लेकिन जब दवाइयों से इलाज संभव नहीं हो पा रहा होता है, तब सर्जरी के ज़रिये समस्या को दूर करने की कोशिश की जाती है। दुर्घटना के समय हड्डी टूट जाने, ज़ख़्म गहरा और जानलेवा होने की स्थिति में मरीज़ की जान बचाने के लिए सर्जरी करनी पड़ती है। बड़ी बात यह भी है कि सिर्फ़ एक व्यक्ति सर्जरी नहीं कर सकता। सर्जरी करने के लिए सर्जन को सहायकों की मदद लेनी पड़ती है। मरीज़ को दर्द ज़्यादा होने पर उसे बेहोशी की दवा देनी होती है। यह काम एक्सपर्ट ही करते हैं। सर्जरी के दौरान डॉक्टर को चाकू, कैंची, सुई, धागा और दूसरे उपकरण देने के लिए सहायक होते हैं। सर्जरी छोटी हो बड़ी, सर्जन को कई तरह की सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं। सावधानी न बरतने की स्थिति में मरीज़ की जान जा सकती है। जिन दिनों सुंदरय्या एमबीबीएस की पढ़ाई कर रहे थे, उन दिनों ज़्यादातर मेडिकल विद्यार्थियों

की दिलचस्पी क्लिनिकल चिकित्सा-पद्धति अपनाने में थी। बहुत कम विद्यार्थी सर्जन बनने की सोचते थे। सुंदरय्या को पहले दिन से ही ऑपरेशन थिएटर से मोहब्बत हो गयी। उन्हें लगा कि मुश्किल काम करने में ही परमानंद है। अंग्रेज़ों के ज़माने में विद्यार्थियों को सर्जन बनने के लिए प्रेरित किया जाता था। इसकी वजह उन दिनों होने वाले युद्ध थे। युद्ध में घायल अपने सैनिकों के इलाज के लिए अंग्रेज़ों को सर्जनों की ज़रूरत थी। अंग्रेज़ चाहते थे कि ज़्यादा से ज़्यादा सर्जन तैयार किये जाएँ। लेकिन अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद चिकित्सा-क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए। ज़्यादातर नये विद्यार्थियों का रुझान क्लीनिक, अस्पताल में बैठकर दवाइयों से लोगों का इलाज करने की ओर रहा। लेकिन सुंदरय्या इनसे अलग थे। सर्जरी पर उनका मन आ गया। यही वजह थी कि सुंदरय्या को जब कभी ऑपरेशन थिएटर जाने और सीनियर प्रोफ़ेसरों को सर्जरी करते हुए देखने का मौक़ा मिलता, तब वे हर काम पर बारीकी से नज़र बनाये रखते। चौथे साल की पढ़ाई के दौरान ही सुंदरय्या को मेडिकल कॉलेज से अनुबद्ध अस्पताल के अलग-अलग वार्डों में जाकर मरीज़ों से मिलने, उनकी समस्या जानने के मौक़े भी मिलने लगे। मरीज़ों के इलाज में सुंदरय्या अपने सीनियर छात्रों और प्रोफ़ेसरों की मदद करने लगे। इसी दौरान कांतम्मा गर्भवती हुईं। जब जचगी का समय निकट आया, तब सुंदरय्या उन्हें गाँव ले आये। चिलचिलाती धूप और तेज़ गर्मी के दिन थे। मई का महीना था। हर किसी के लिए दिन के समय घर से बाहर निकलना मुश्किल था। भीषण गर्मी का प्रकोप था। सुबह से लेकर शाम तक धूप तेज़ थी। गर्म हवा और उमस के बीच कांतम्मा ने 22 मई 1954 को एक सुंदर और स्वस्थ्य बालक को जन्म दिया। सुंदरय्या की ख़ुशी का ठिकाना न रहा। पिता बनने की ख़ुशी से उनका दिल बाग़-बाग़ हो गया। उन दिनों सुंदरय्या के मन-मस्तिष्क पर राष्ट्रवादी नेता डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी छाये हुए थे। सुंदरय्या डॉ. मुखर्जी के बलिदान को सर्वोच्च बलिदान मान रहे थे। वे डॉ. मुखर्जी के व्यक्तित्व, उनके कार्यों और बलिदान से इतना प्रभावित थे कि उन्होंने अपनी पहली संतान का नाम श्यामा प्रसाद रखने का फ़ैसला कर लिया। नामकरण के समय सुंदरय्या ने सभी को बताया कि उनके बेटा का नाम होगा श्यामा प्रसाद पिगिलम।

अध्याय 3

डॉक्टरी फ़र्ज़ और ज़रूरतमंदों की मदद

पिता बनने के बाद सुंदरय्या की ज़िम्मेदारियाँ बढ़ गयीं। उन्हें डॉक्टरी पढ़ाई पूरी कर काम पर लगना था। न सिर्फ़ घर-परिवार के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों को संभालना था, बल्कि एक चिकित्सक के रूप में ग़रीब लोगों की सेवा करने के अपने संकल्प को पूरा करना था। पत्नी और बच्चे को ससुरालवालों के हवाले कर सुंदरय्या मद्रास लौट आये और डॉक्टरी पढ़ाई पूरी करने में लग गये। चौथे साल की पढ़ाई के दौरान सुंदरय्या को मद्रास जनरल हॉस्पिटल के अलग-अलग वार्डों में जाकर अलग-अलग बीमारियों का इलाज करने के तरीक़े सीखने को मिले। उन्हें मरीज़ों से सीधे संवाद करने, उनकी केस-शीट बनाने का मौक़ा भी मिलने लगा। सुंदरय्या को सर्जरी से मोहब्बत हो गयी थी, इस वजह से वे ज़्यादा समय ऑपरेशन थिएटर में बिताने लगे। ऑपरेशन थिएटर में उनका काम सर्जरी की प्रक्रिया को देखना, समझना और सीखना था।

दिसंबर 1954 में एमबीबीएस पाठ्यक्रम के आख़िरी साल की परीक्षाएँ हुईं। चूँकि तैयारी पक्की और तगड़ी थी, सुंदरय्या ने पूरे विश्वास के साथ परीक्षाएँ लिखीं। उम्मीद के मुताबिक़ नतीजे आये। सुंदरय्या सभी विषयों की परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित हुए। 16 फरवरी 1955 को मद्रास यूनिवर्सिटी के मेडिसिन संकाय ने बैचलर ऑफ़ मेडिसिन, बैचलर ऑफ़ सर्जरी (एमबीबीएस) की डिग्री प्रदान की। यह कोई साधारण घटना नहीं थी। वैसे तो कई साथी मेडिकल विद्यार्थी परीक्षाएँ पास कर डॉक्टर बन गये थे, लेकिन नेल्लूर ज़िले से एमबीबीएस डिग्री हासिल करने वाले पिछड़ी जाति

के पहले व्यक्ति बने सुंदरय्या। सुंदरय्या से पहले पिछड़ी जाति का कोई भी व्यक्ति डॉक्टर नहीं बना था। सुंदरय्या से पहले नेल्लूर ज़िले से कुछ डॉक्टर हुए थे, लेकिन ये सभी सवर्ण जाति के थे। पिछड़ी जाति के ज़्यादातर विद्यार्थी दसवीं के बाद आगे की पढ़ाई नहीं कर पाते थे। जो लोग दसवीं से आगे बढ़ पाते थे, वे या तो इंटर की परीक्षा पास नहीं कर पाते थे, या फिर इंटर की परीक्षा पास करने के बाद नौकरी में लग जाते थे। दलित समाज और पिछड़ी जातियों से बहुत कम विद्यार्थी ग्रेजुएट बन पाये थे। ये वे दिन थे, जब पिछड़ी जाति के किसी व्यक्ति का ग्रेजुएट बन पाना बड़ी कामयाबी माना जाता था। देश-भर में दलित वर्ग या फिर किसी अन्य पिछड़ी जाति के व्यक्ति का डॉक्टर या इंजीनियर बनना बिरली घटना मानी जाती थी। कहा और माना जाता था कि यादव समुदाय के बच्चे बड़े होकर हाथ में लाठी लेंगे और गाय, भैंस, भेड़-बकरियाँ चराएँगे। यादव समुदाय से किसी व्यक्ति के डॉक्टर बनकर हाथ में स्टेथस्कोप थामने की कल्पना करना भी मुश्किल था।

सुंदरय्या ने एमबीबीएस की डिग्री हासिल कर नायाब कामयाबी हासिल की थी। उनके डॉक्टर बनने की चर्चा दूर-दूर तक हुई। बड़ी बात यह भी थी कि सुंदरय्या पहले अटेम्प्ट में सभी परीक्षाएँ पास हुए थे। पढ़ाई के दौरान उन्होंने समय नहीं गँवाया। वे अपने कॉलेज में फ़र्स्ट या सेकंड रैंक हासिल न कर पाये हों, लेकिन उनके नंबर इन टॉपरों से ज़्यादा कम नहीं थे।

डॉक्टरी की डिग्री लेने के बाद सुंदरय्या अपना संकल्प पूरा करने के मक़सद से गाँव आ गये और ग़रीब लोगों का इलाज करने लगे। वे अब अपने परिवार के साथ थे। चिकित्सक के रूप में जन-सेवा जारी रही, साथ ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रचार भी अनवरत जारी रहा। स्वभाव मेहनती था और वक्ता प्रभावशाली थे, इस वजह से सुंदरय्या संघ में काफ़ी लोकप्रिय थे। संघ के बड़े-बड़े नेताओं का उनके घर आना-जाना लगा रहता था। संघ के पूर्णकालिक प्रचारक सोमपल्ली सोमय्या से भी सुंदरय्या की गहरी दोस्ती हो गयी।

1927 में प्रकाशम ज़िले के परलामिली गाँव में जन्मे सोमय्या एक समर्पित सामाजिक कार्यकर्ता और स्वयंसेवक थे। सोमय्या का जन्म एक ग़रीब परिवार में हुआ था। छोटी उम्र में ही उनके सिर से पिता का साया उठ गया। माँ ने सोमय्या और उनकी नौ बहनों का पालन-पोषण किया। माँ जीविका के लिए लकड़ियाँ बेचा

करती थीं। तेनाली हाई स्कूल में पढ़ाई के दौरान सोमय्या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की गतिविधियों की ओर आकर्षित हुए। 15 साल की उम्र से उन्होंने संघ की शाखाओं में हिस्सा लेना शुरू कर दिया। स्वयंसेवक के नाते सोमय्या ने कर्नाटक के बेलगाम में विशेष प्रशिक्षण हासिल किया और संघ के प्रचारक बन गये। पहले उन्हें गुंटूर का प्रभारी बनाया गया। इसके बाद वे पूरे आंध्रप्रदेश में लोकप्रिय हो गये। सोमय्या ने संघ का विस्तार करने के लिए आंध्र में गाँव-गाँव, शहर-शहर का दौरा करना शुरू किया। सोमय्या के प्रभावी भाषणों की वजह से कई किशोर और युवा संघ से जुड़े। 1948 में महात्मा गांधी की हत्या के बाद जब संघ पर प्रतिबंध लगा, तब इस प्रतिबंध के ख़िलाफ़ सत्याग्रह करने पर सोमय्या को गिरफ़्तार कर जेल में डाला गया। संघ पर से प्रतिबंध हटने के बाद सोमय्या जेल से रिहा हुए और समाज-सेवा में जुट गये। कुछ सालों में वे आंध्र में संघ के सबसे बड़े और प्रभावशाली नेता के रूप में उभरे। संघ के प्रचार में सोमय्या को सुंदरय्या जैसे ऊर्जावान युवाओं से सम्पूर्ण सहयोग मिला।

इसी दौरान सुंदरय्या और कांतम्मा को दूसरी संतान हुई। इस बार भी लड़का हुआ। सुंदरय्या ने अपने दूसरे बेटे का नाम रखा गोपी कृष्णा।

इसके एक साल बाद यानी 1957 में सुंदरय्या को सरकारी नौकरी मिल गयी और वे सरकारी डॉक्टर बन गये। उनकी पहली नौकरी कंदुकूरु के सरकारी अस्पताल में लगी। 12 नवंबर, 1957 को सुंदरय्या इस अस्पताल में असिस्टेंट सर्जन नियुक्त हुए। सरकारी अस्पताल में काम करने से सुंदरय्या को निःसहाय लोगों और ग़रीबों की सेवा करने का अच्छा अवसर मिला। सरकारी अस्पतालों में मरीज़ों का निःशुल्क इलाज किया जाता है। बिना शुल्क लिये मरीज़ों को दवाइयाँ दी जाती हैं। हर दिन सुंदरय्या अस्पताल आने वाले मरीज़ों का इलाज करने लगे। 9 अप्रैल 1958 को सुंदरय्या का तबादला नेल्लूर के ज़िला मुख्यालय से अनुबद्ध एक क्लीनिक में कर दिया गया। छह महीने बाद सुंदरय्या को पदोन्नति मिली और वे सिविल असिस्टेंट सर्जन बना दिये गये। इसके बाद 25 जून 1959 को उनका तबादला इस्कापालेम गाँव में हो गया। एक बार फिर सुंदरय्या को गाँव के लोगों की सेवा करने का मौक़ा मिला। लेकिन इस गाँव की हालत काफ़ी अलग थी। यहाँ गाँव के प्रेसिडेंट की मानसिकता सामंतवादी थी। वह ग़रीब लोगों पर न सिर्फ़ रौब झाड़ता था, बल्कि लोगों

के साथ अक्सर बदसलूकी किया करता था। कई एकड़ ज़मीन का मालिक होने की वजह से उसके यहाँ कई मजदूर काम किया करते थे। घर पर भी कई नौकर थे। इनमें से कुछ बंधुवा थे। प्रेसिडेंट मजदूरों से बहुत काम करवाता था और उन्हें काम के हिसाब से मेहनताना नहीं देता था। कइयों को रुपयों के बजाय अनाज दे देता था। प्रेसिडेंट के इस व्यवहार से सुंदरय्या को बहुत ग़ुस्सा आया। स्वभाव ऐसा था कि सुंदरय्या नाइंसाफ़ी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। गाँव में ग़रीब लोगों के साथ हो रही नाइंसाफ़ी के ख़िलाफ़ सुंदरय्या ने आवाज़ उठानी शुरू की।

डॉक्टर होने के नाते सभी गाँववाले सुंदरय्या की बहुत क़द्र किया करते थे। लेकिन गाँववालों के पक्ष में खड़ा होने की वजह से प्रेसिडेंट सुंदरय्या से खफ़ा हो गया। इतना ही नहीं, वह सुंदरय्या पर रौब जमाने की कोशिश करने लगा। सुंदरय्या को अव्यावहारिक आदेश देने लगा। तानाशाह की तरह व्यवहार कर रहे प्रेसिडेंट के ख़िलाफ़ सुंदरय्या का विरोध जारी रहा। चूँकि प्रेसिडेंट राजनीतिक तौर पर भी ताक़तवर था, गाँव में उसी की चली।

इसी दौरान सुंदरय्या और कांतम्मा को तीसरी संतान हुई। श्यामा प्रसाद और गोपी कृष्णा के जन्म के बाद एक लड़की का जन्म हुआ। 16 दिसंबर 1959 को सुंदरय्या के घर में एक नन्ही परी आयी। सुंदरय्या और कांतम्मा ने अपनी बिटिया का नाम रखा मैथिली। बेटी के जन्म पर सुंदरय्या बहुत ख़ुश हुए। लेकिन गाँव के प्रेसिडेंट का तानाशाही रवैया उनकी बेचैनी का कारण बना रहा। सुंदरय्या को उम्मीद थी कि एक न एक दिन सरकार प्रेसिडेंट के ख़िलाफ़ ज़रूर कार्यवाही करेगी। इसी उम्मीद ने उन्हें गाँव में बने रहने और लोगों की सेवा करते रहने के लिए प्रेरित किया।

इस्कापालेम गाँव में प्रवास के दौरान ही सुंदरय्या और कांतम्मा को चौथी संतान हुई। 5 जनवरी 1960 को कांतम्मा ने सुंदर, स्वस्थ्य और हृष्ट-पुष्ट कन्या को जन्म दिया। घर-परिवार में एक बार फिर से त्योहार जैसा माहौल बन गया। सुंदरय्या और कांतम्मा ने अपनी दूसरी बिटिया का नाम रखा शोभा रानी। दो लड़कों और दो लड़कियों के जन्म के बाद सुंदरय्या और कांतम्मा का लगा कि परिवार पूरा हो गया है। इसी वजह से दोनों ने मिलकर परिवार नियोजन का फ़ैसला ले लिया।

सुंदरय्या के घर-परिवार में हमेशा ख़ुशियाँ बनी रहीं। लेकिन गाँव में प्रेसिडेंट

के हाथों ग़रीब लोगों के शोषण की वजह से मन में एक अजीब कसक बनी रही। कई शिकायतों के बावजूद जब सरकार ने प्रेसिडेंट के ख़िलाफ़ कोई कार्यवाही नहीं की, तब सुंदरय्या का आक्रोश चरम पर पहुँच गया। सरकार और प्रशासन के रवैये से नाराज़ सुंदरय्या छुट्टी पर चले गये। लेकिन प्रण लिया कि वे सामंतवादी विचारधारा और तानाशाही रवैये के ख़िलाफ़ अपनी जंग जारी रखेंगे और निःसहाय लोगों को इंसाफ़ दिलाने के लिए जी-जान लगा देंगे।

सुंदरय्या को छुट्टी वाले दिन भी काम करने की आदत थी। वे छुट्टी वाले दिन भी अस्पताल जाते और मरीज़ों का इलाज करते। किसी कारण अगर अस्पताल नहीं जा पाते, तब घर पर ही मरीज़ों का इलाज करते। लोग जानते थे कि इलाज के लिए सुंदरय्या चौबीस घंटे उपलब्ध रहते हैं। सुंदरय्या अच्छे से जानते थे कि तकलीफ़ होने पर ही लोग डॉक्टर के पास आते हैं। अगर सही समय पर डॉक्टर न मिले, तब हालत इतनी बिगड़ सकती है कि मरीज़ अपनी जान गँवा सकता है। सुंदरय्या नहीं चाहते थे कि कोई मरीज़ उनकी वजह से परेशान हो। वे मरीज़ों की सेवा को अपना धर्म मानते थे। यही वजह थी कि लोग उन्हें भगवान का स्वरूप समझने लगे थे। लोगों की सेवा में दिन-रात एक करने की वजह से सुंदरय्या लोकप्रिय हो गये थे। उनके घर का दरवाज़ा मरीज़ों के लिए हमेशा खुला रहता था। सुंदरय्या ने कभी छुट्टी नहीं ली। जब उन्होंने इस्कापालेम गाँव के प्रेसिडेंट के तानाशाही रवैये के विरोध में छुट्टी पर जाने का फ़ैसला लिया, तब छुट्टी वाले दिन काम करने का उन्हें फ़ायदा मिला।

सरकारी कर्मचारी जब किसी छुट्टी का इस्तेमाल नहीं करते हैं, तब वह अर्जित छुट्टी में तब्दील हो जाती है। यानी, 'अर्जित छुट्टी' पर जाने पर भी सरकारी कर्मचारी और अधिकारी को तनख़्वाह मिलती है। उन दिनों यह नियम था कि एक कर्मचारी 30 दिन से ज़्यादा की अर्जित छुट्टी नहीं ले सकता है। इसी वजह से सुंदरय्या ने 30 दिन की अर्जित छुट्टी ली। प्रेसिडेंट के सामंतवादी व्यवहार के ख़िलाफ़ वे 9 जून 1960 से 8 जुलाई 1960 तक 'अर्जित छुट्टी' पर रहे। इस विरोध के बावजूद भी जब प्रेसिडेंट की व्यवहार-शैली में कोई बदलाव नहीं आया, तब सुंदरय्या ने हालत न बदलने तक इस्कापालेम गाँव न आने का बड़ा फ़ैसला ले लिया।

सुंदरय्या सरकारी नौकरी नहीं छोड़ना चाहते थे। सरकार उनका तबादला भी नहीं कर रही थी। इस्कापालेम गाँव से तबादले की उनकी अर्ज़ी पर कोई कार्यवाही

नहीं हो रही थी। नाराज़ सुंदरय्या ने 'असाधारण अवकाश' की सुविधा का लाभ उठाने का मन बना लिया। विशेष परिस्थितियों में सरकारी कर्मचारी अथवा अधिकारी को 'असाधारण अवकाश' दिया जाता है। जब अन्य तरह की कोई छुट्टी नहीं दी जा सकती हो, तब सरकारी मुलाज़िम को 'असाधारण अवकाश' दिया जा सकता है। और, जब अन्य तरह की छुट्टी दी जा सकती हो, लेकिन सरकारी मुलाज़िम ने लिखित में 'असाधारण अवकाश' के लिए ही आवेदन दिया हो, तब यह सुविधा दी जाती है। किसी भी सरकारी मुलाज़िम को लगातार पाँच साल से अधिक 'असाधारण अवकाश' नहीं दिया जा सकता है। 'असाधारण अवकाश' के दौरान मुलाज़िम को तनख़्वाह नहीं मिलती है, लेकिन वह सरकारी मुलाज़िम बना रहता है। 'असाधारण अवकाश' की अवधि समाप्त होने पर मुलाज़िम काम पर वापस आ सकता है। सुंदरय्या ने 9 जुलाई 1960 से 'असाधारण अवकाश' ले लिया। चूँकि अब उनके पास समय काफ़ी था, वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचार में ज़ोर-शोर से जुट गये। एक बार फिर गाँव-गाँव और शहर-शहर का दौरा शुरू हुआ। शाखाओं में भाषण देकर वे युवाओं के मन में नया जोश भरने लगे। ज़्यादा से ज़्यादा युवाओं को संघ से जोड़ने के लिए वे नियमित रूप से अलग-अलग गाँवों और शहरों में प्रभातफेरी भी निकालने लगे।

इसी दौरान सुंदरय्या को अलग-अलग राज्यों का दौरा करने और वहाँ लगने वाली शाखाओं में शामिल होने का मौक़ा मिला। संघ के बड़े-बड़े नेताओं से मुलाक़ातों की वजह से सुंदरय्या को अलग-अलग राज्यों में लोगों की समस्याओं को जानने और इन समस्याओं को दूर करने के लिए संघ की कोशिशों के बारे में पता चला। ऐसा भी नहीं था कि संघ की गतिविधियों से जुड़ने के बाद सुंदरय्या ने डॉक्टरी छोड़ दी थी। जब भी कोई मरीज़ उनके पास आता, वे उसका इलाज करते। लोग जानते थे कि सुंदरय्या अव्वल दर्ज़े के डॉक्टर हैं। इसी वजह से अपनी बीमारी का इलाज करवाने के लिए दूर-दूर से लोग उनके पास आते थे।

क़रीब दस महीने तक सरकारी अस्पताल से दूर रहने के बाद सुंदरय्या को अहसास हुआ कि अब और ज़्यादा दिन तक छुट्टी पर रहना ठीक नहीं है। सुंदरय्या यह मानने लगे थे कि सरकारी नौकरी करते हुए वे जितने लोगों का इलाज कर सकते हैं, उतने लोगों की सेवा वे बाहर रहकर नहीं कर सकते हैं। चूँकि अब बच्चों की

उम्र भी स्कूल जाने की हो गयी थी, वे नहीं चाहते थे कि बिना स्थाई आमदनी के जीवन चलाया जाए। सुंदरय्या ने सरकारी कामकाज पर वापस लौटने के लिए अर्ज़ी दे दी। इसी दौरान उन्हें विशाखपट्नम के आंध्र मेडिकल कॉलेज में 'मास्टर ऑफ़ सर्जरी' कोर्स में सीट मिल गयी। कोर्स पूरा होते ही उन्हें इसी मेडिकल कॉलेज के ऑर्थोपेडिक डिपार्टमेंट में ट्यूटर यानी शिक्षक नियुक्त कर दिया। उन्हें किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में ऑर्थोपेडिक सर्जन के सहायक की ज़िम्मेदारी भी सौंपी गयी।

बंगाल की खाड़ी के तट पर बसे विशाखपट्नम में जम जाने के बाद सुंदरय्या ने अपनी पत्नी और बच्चों को अपने पास बुला लिया। एक बार फिर से सारा परिवार एक जगह, एक साथ रहने लगा।

कुछ महीनों के प्रवास में सुंदरय्या और उनके परिवारवालों को विशाखपट्नम भा गया। सुंदरय्या को यह तटीय शहर इतना पसंद आया कि उन्होंने हमेशा के लिए यहीं बसने का मन बना लिया। सुंदरय्या को आंध्र मेडिकल कॉलेज और किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में काम करने के तौर तरीक़े भी पसंद आ गये।

आंध्र मेडिकल कॉलेज का अपना गौरवशाली इतिहास है। यह आंध्र का सबसे पुराना मेडिकल कॉलेज है। अंग्रेज़ों के ज़माने में जब भारत में मेडिकल शिक्षा को बढ़ावा देने का काम शुरू हुआ, तब बड़े शहरों में मेडिकल स्कूल और मेडिकल कॉलेज खोले जाने लगे। बीसवीं सदी की शुरुआत में विशाखपट्नम मद्रास प्रेसीडेंसी के बड़े शहरों में एक था। यह आंध्र का सबसे बड़ा शहर था। बंदरगाह होने की वजह से अंग्रेज़ों ने इस शहर में बड़े पैमाने पर विकास कार्य किये।

साल 1902 में अंग्रेज़ी हुकूमत ने महाराजा सर गोडे नारायण गजपति राव और महारानी चिट्टि जानकम्मा की मदद से विक्टोरिया डायमंड जुबली मेडिकल स्कूल की स्थापना की। इस स्कूल से एलोपैथी चिकित्सा-पद्धति की शिक्षा हासिल करने वाले विद्यार्थियों को लाइसेंसिएट सर्टिफ़िकेट दिया जाने लगा। जिस किसी के पास यह लाइसेंसिएट सर्टिफ़िकेट होता, वह एलोपैथी चिकित्सा-पद्धति अपनाते हुए मरीज़ों का इलाज कर सकता था। 1 जुलाई 1923 को इस स्कूल को कॉलेज में तब्दील कर दिया गया। फ्रेडरिक जैस्पर एंडरसन कॉलेज के पहले प्रिंसिपल बने। 10 मार्च 1886 को जन्मे फ्रेडरिक जैस्पर एंडरसन के पिता अल्फ्रेड जैस्पर एंडरसन ब्लैकपूल में स्वास्थ्य के चिकित्सा अधिकारी थे। फ्रेडरिक जैस्पर एंडरसन ने एप्सम कॉलेज और

सेंट बार्थोलोम्यू अस्पताल में एलोपैथी चिकित्सा-पद्धति की शिक्षा हासिल की। जनवरी 1912 में वे 'भारतीय चिकित्सा सेवा' से जुड़ गये। फ्रेडरिक जैस्पर एंडरसन ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान फ्रांस में 1914-15, इराक में 1916-18 और फिर मिस्र में काम किया और डॉक्टरी सेवाएँ दीं। 1915 में उन्हें पदोन्नत कर 'कैप्टन' बनाया गया। युद्ध के दौरान शानदार तरीक़े से काम करने और कई ज़ख़्मी सैनिकों का इलाज करने के लिए 1917 में फ्रेडरिक जैस्पर एंडरसन को 'मिलिट्री क्रॉस' से सम्मानित किया गया। उन्होंने 1922 में फैलोशिप ली और 1923 में उन्हें पदोन्नत कर मेजर बनाया गया। साल 1913 से लेकर 1923 तक फ्रेडरिक जैस्पर एंडरसन ने मद्रास में सिविल सर्जन के रूप में अपनी सेवाएँ दीं। उन्होंने मद्रास मेडिकल कॉलेज में मेडिकल विद्यार्थियों को 'सर्जरी' के गुर सिखाये। 'सर्जरी के प्रोफ़ेसर' के रूप वे काफ़ी मशहूर थे। 1923 में उन्हें विशाखपट्नम के मेडिकल कॉलेज का प्रिंसिपल नियुक्त किया गया।

फ्रेडरिक जैस्पर एंडरसन ने 1934 तक आंध्र मेडिकल कॉलेज में प्रिंसिपल की ज़िम्मेदारियाँ निभायीं। इसके बाद अंग्रेज़ हुकूमत ने उन्हें कलकत्ता भेजा। यहाँ उन्होंने 1945 तक काम किया। 1945 में लेफ्टिनेंट-कर्नल के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद फ्रेडरिक जैस्पर एंडरसन कलकत्ता में बस गये और वहाँ अपना क्लीनिक खोलकर मरीज़ों का इलाज करने लगे। एक उत्कृष्ट शिक्षक और बेहतरीन सर्जन के रूप में वे देश-भर में विख्यात हुए। फ्रेडरिक जैस्पर एंडरसन की वजह से ही आंध्र मेडिकल कॉलेज में तेज़ी से विकास हुआ। यहाँ से शिक्षण-प्रशिक्षण हासिल कर सभी परीक्षाएँ पास होने वाले विद्यार्थियों को एमबीबीएस की डिग्री दी जाने लगी।

जिन दिनों सुंदरय्या विशाखपट्नम पहुँचे थे, उन दिनों आंध्र मेडिकल कॉलेज से अनुबद्ध किंग जॉर्ज हॉस्पिटल आंध्रप्रदेश का सबसे बड़ा और व्यस्ततम अस्पताल था। अंग्रेज़ हुकूमत ने 1845 में विशाखपट्नम में एक सिविल डिस्पेंसरी खोली थी। यहाँ पर लोगों का इलाज शुरू हुआ। जैसे ही मरीज़ों की संख्या बढ़ने लगी और गंभीर रूप से बीमार लोगों को चौबीस घंटे निगरानी में रखना पड़ा, इस डिस्पेंसरी को अस्पताल में तब्दील कर दिया गया। 1857 में यह सिविल डिस्पेंसरी 30 बिस्तरों वाले अस्पताल में तब्दील हो गयी। इसके बाद से अस्पताल का लगातार विस्तार होता चला गया। 19 जुलाई 1923 को मद्रास के मुख्यमंत्री और पनागल के राजा पनगंटि

रामरायणिंगर ने अस्पताल के नये भवन का विधिवत उद्घाटन किया। इस अस्पताल को यूनाइटेड किंगडम के राजा और भारत के अंग्रेज़ सम्राट अल्बर्ट फ्रेडरिक आर्थर जॉर्ज यानी जॉर्ज XIII का नाम दिया गया। यह अस्पताल किंग जॉर्ज हॉस्पिटल के नाम से मशहूर हुआ।

एक शानदार मेडिकल कॉलेज में शिक्षक बनने और एक बेहतरीन अस्पताल में सर्जन बनने से सुंदरय्या काफ़ी ख़ुश थे। चूँकि अस्पताल बहुत बड़ा था और सरकारी भी, लोग दूर-दूर से इलाज करवाने के लिए यहाँ आते थे। आने वाले मरीज़ों में ज़्यादातर ग़रीब थे। ग़रीब लोगों का इलाज करते हुए सुंदरय्या को लग रहा था कि वे अपने मक़सद में कामयाब हो रहे हैं।

अध्याय 4

पिता सुंदरय्या की विचारधारा से प्रेरित श्यामा प्रसाद ने लिया डॉक्टर बनने का प्रण

जब बड़े बेटे की उम्र स्कूल जाने लायक़ हुई, तब सुंदरय्या ने श्यामा प्रसाद के लिए सबसे श्रेष्ठ स्कूल की तलाश शुरू की। उनकी तलाश सेंट एंथोनी हाई स्कूल पर आकार रुकी। यह स्कूल शहर के सबसे पुराने और प्रतिष्ठित विद्यालयों में एक था। इसकी स्थापना अंग्रेज़ों के ज़माने में हुई थी। ईसाई मिशनरियों ने गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए यह स्कूल शुरू किया था। चूँकि स्कूल का प्रबंधन मिशनरियों के हाथों में था, समाज के हर वर्ग के लोगों के बच्चों को यहाँ दाख़िला दिया गया। शुरुआती दिनों में धर्म-प्रचारकों ने शिक्षकों की भूमिका निभायी। लेकिन जैसे-जैसे स्कूल का विस्तार हुआ, नियमित शिक्षकों की भर्ती की गयी। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और सख़्त अनुशासन की वजह से सेंट एंथोनी हाई स्कूल की ख्याति दूर-दूर तक पहुँची। कुछ सालों में यह स्कूल बेहद लोकप्रिय हो गया। सुंदरय्या को भी लगा कि श्यामा प्रसाद की शिक्षा के लिए यही स्कूल सबसे उपयुक्त रहेगा।

सुंदरय्या ने श्यामा प्रसाद का दाख़िला सेंट एंथोनी हाई स्कूल में करवा दिया। अब हर दिन श्यामा प्रसाद स्कूल जाने लगे। श्यामा प्रसाद पढ़ाई-लिखाई के मामले में अपने पिता की तरह थे। वे कभी क्लास में फ़र्स्ट नहीं आये, लेकिन उनकी गिनती हमेशा क्लास के सबसे होनहार और बुद्धिमान विद्यार्थियों में होने लगी। श्यामा प्रसाद को परीक्षाओं में अव्वल नंबर नहीं मिले, लेकिन उनके नंबर टॉपर से ज़्यादा कम भी नहीं रहे।

एक बार की बात है। श्यामा प्रसाद चौथी क्लास में थे। स्कूल जाने का समय हो रहा था। लेकिन उस दिन श्यामा प्रसाद का मन स्कूल न जाकर घर पर रहने का था। इसी वजह से वे स्कूल जाने से बचने के लिए बहाने बनाने लगे। माँ के लाडले थे, इस वजह से माँ से मनुहार कर रहे थे। स्कूल के लिए घर से निकलने का समय जब नज़दीक आ गया, तब भी श्यामा प्रसाद तैयार नहीं हुए। बालक श्यामा प्रसाद को लगा कि अगर घर से निकलने में देर हो गयी, तब कोई भी स्कूल भेजने के लिए ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं करेगा। लेकिन जब सुंदरय्या ने देखा कि श्यामा प्रसाद टालमटोल कर रहे हैं, तब वे सीधे अपने बेटे के पास गये और पूछा, "अभी तक तैयार क्यों नहीं हुए? स्कूल जाने का टाइम हो गया है न।"

श्यामा प्रसाद ने पिता के सवाल को गंभीरता से नहीं लिया और यूँ ही हल्के में जवाब दे दिया कि, "हाँ, अभी तैयार हो जाऊँगा।"

पिता ने ग़ुस्से में कहा, "अगली बार से देर नहीं होनी चाहिए।"

कुछ कहे बिना श्यामा प्रसाद आगे बढ़ गये।

इसके कुछ देर बाद भी जब श्यामा प्रसाद तैयार नहीं हुए, तब सुंदरय्या अपने बड़े बेटे के पास पहुँचे और सीधे गाल पर एक ज़बरदस्त चाँटा जड़ दिया।

चाँटे की गूँज घर-भर में सुनायी दी।

यह पहली बार था जब सुंदरय्या ने अपनी किसी संतान पर हाथ उठाया था।

श्यामा प्रसाद ने अपने सबसे बड़े दुःस्वप्न में भी यह कल्पना नहीं की थी कि वे अपने पिता के हाथों चाँटा खाएँगे। इस चाँटे की वजह से श्यामा प्रसाद के होश उड़ गये।

जब माँ ने देखा कि बेटे की आँखों से आँसुओं की नदियाँ बहने लगी हैं, तब उन्होंने श्यामा प्रसाद को अपने आँचल में भर लिया और सांत्वना देने लगीं।

सुंदरय्या यहीं नहीं रुके। उन्होंने अपने बेटे से कहा, "जो मैं कह रहा हूँ, उसे ध्यान से सुनो। मैं अनुशासन का पक्का हूँ। मुझे लेटलतीफ़ी पसंद नहीं है। जो लोग काम से भागते हैं, वे मुझे पसंद नहीं। हर काम समय पर होना चाहिए। स्कूल जाना तुम्हारा काम है। तुम्हें हर दिन स्कूल जाना होगा। वहाँ जैसा कहा जाए, वैसा करना होगा। पढ़ाई-लिखाई के मामले में मुझे ढिलाई बर्दाश्त नहीं है। ये मत भूलो कि तुम एक डॉक्टर के बेटे हो। एक डॉक्टर अगर अपने काम में ढिलाई बरते, तो मरीज़

की जान जा सकती है। ज़िंदगी में हमेशा एक बात याद रखना। अगर तुम्हें कामयाब होना है, तो अनुशासन बहुत ज़रूरी है। ज़िंदगी में हर काम में अनुशासन बेहद ज़रूरी है। जो लोग अनुशासन का पालन नहीं करते, वे कामयाब नहीं होते।"

श्यामा प्रसाद को यह बात समझने में देर न लगी कि उनके पिता स्कूल और पढ़ाई-लिखाई के मामले में ढिलाई कतई बर्दाश्त नहीं करेंगे।

उसी समय नौ साल के बालक श्यामा प्रसाद ने अपनी ज़िंदगी का पहला प्रण ले लिया। प्रण था, ज़िंदगी में अनुशासन का पालन करने का। हर काम समय पर करने का। किसी काम में देरी न करने का। काम में ढिलाई न बरतने का। हर काम को गंभीरता से करने का।

इस प्रण के बाद श्यामा प्रसाद की ज़िंदगी बदल गयी। इसके बाद उन्होंने पिता से कभी कोई चाँटा नहीं खाया, न ही डाँट सुनी।

छठी कक्षा में श्यामा प्रसाद को नये सहपाठी मिले, और नये दोस्त बने। बदलाव स्वाभाविक था। पढ़ाई-लिखाई के मामले में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा, लेकिन नये शौक़ जगे, नयी आदतें पनपीं। अचानक श्यामा प्रसाद को किताबों से मुहब्बत हो गयी। किताबें स्कूल वाली नहीं थीं। ये किताबें कहानियों वाली थीं। शुरुआत बाल-पत्रिकाओं - 'बालमित्रा' और 'चंदामामा' से हुई।

श्यामा प्रसाद जब सातवीं कक्षा में थे, तब विशाखपट्नम में स्टील प्लांट स्थापित करने की माँग को लेकर शुरू हुआ आंदोलन तेज़ हो गया। अचानक आंदोलन ने उग्र रूप ले लिया। तेलुगुभाषी लोग इस बात से नाराज़ थे कि केंद्र सरकार आंध्र में स्टील प्लांट स्थापित करने की माँग को नज़रअंदाज़ कर रही है। आज़ादी के बाद से ही तेलुगुभाषी लोग आंध्र में स्टील प्लांट स्थापित करने की माँग करने लगे थे। आज़ादी के बाद भारत में विकास और निर्माण-कार्यों को गति मिली थी और स्टील यानी इस्पात की माँग कई गुणा बढ़ गयी थी। स्टील प्लांट स्थापित करने के लिए विशाखपट्नम शहर उपयुक्त जगह थी। आज़ादी के बाद केंद्र सरकार ने मध्यप्रदेश के भिलाई, ओड़िसा के राउरकेला, पश्चिम बंगाल के दुर्गापुर और बिहार के बोकारो में स्टील प्लाट की स्थापना की थी। इन इस्पात कारख़ानों की वजह से आसपास के इलाक़ों के लोगों को रोज़गार मिला। राज्यों में विकास की गति तेज़ हो गयी। लेकिन केंद्र ने आंध्र के विशाखपट्नम में स्टील प्लांट शुरू करने के प्रस्ताव

को ठंडे बस्ते में डाल दिया था। आंध्र को इस वजह से भी नुक़सान हो रहा था क्योंकि देश के अन्य राज्यों में बने स्टील प्लांटों के लिए कच्चा माल आंध्र से भी जा रहा था। तेलुगुभाषी लोग चाहते थे कि जब भारी मात्रा में कच्चा माल मौजूद है, तब स्टील बनाने के लिए आंध्र में भी प्लांट खोला जाना चाहिए। केंद्र की बेरुख़ी से नाराज़ कुछ राजनेताओं ने केंद्र के ख़िलाफ़ आंदोलन का बिगुल फूँक दिया। आंदोलन को उस समय नयी दशा-दिशा मिली, जब 16 अक्टूबर 1966 को पूर्व विधायक टी. अमृत राव ने विशाखपट्नम में स्टील प्लांट स्थापित करने की माँग करते हुए कलेक्टर ऑफ़िस के पास अनिश्चितकालीन अनशन शुरू कर दिया। इस अनशन की वजह से आंध्रप्रदेश की राजनीति में भूचाल आ गया। सत्ताधारी कांग्रेस के नेताओं पर इस आंदोलन में शामिल होने और केंद्र को मनाने के लिए दबाव डाला जाने लगा। उन दिनों एक नारा काफ़ी लोकप्रिय हुआ। नारा था, "विशाखा उक्कु, आंध्रुला हक्कु।" इस नारे का मतलब है, "विशाखा में स्टील प्लांट, आंध्र का अधिकार है।" अमृत राव ने जैसे ही अनशन शुरू किया, आंध्रप्रदेश राज्य के अलग-अलग हिस्सों में आंदोलन शुरू हो गये। अनशन के समर्थन में लोग स्कूल-कॉलेज, दुकान आदि बंद करवाने लगे। सरकारी दफ़्तरों और निजी संस्थानों में कर्मचारी हड़ताल पर चले गये। विशाखपट्नम में स्टील प्लांट स्थापित करने की माँग के समर्थन में 'चक्का-जाम' भी किया गया। 'रास्ता-रोको' कार्यक्रम आंदोलन का हिस्सा बन गया। चूँकि केंद्र सरकार और राज्य सरकार ने पुलिस-बल की मदद से आंदोलन को कुचलने की कोशिश की, लोगों का ग़ुस्सा और भी बढ़ गया और आंदोलन ने हिंसक रूप ले लिया। सरकारों के दमनकारी रवैये के विरोध में आंदोलनकारियों ने रेलवे और केंद्र सरकार के प्रतिष्ठानों की संपत्तियों को निशाना बनाना शुरू किया। आंदोलन की आग राज्य-भर में फैल गयी। हर तरफ़ आंदोलन के ही चर्चे थे। स्कूल-कॉलेज बंद कर दिये गये।

'बंद' की वजह से श्यामा प्रसाद का ज़्यादातर समय घर पर बीतने लगा। स्कूली पढ़ाई-लिखाई बंद हो गयी। इस जन-आंदोलन की वजह से श्यामा प्रसाद को एक नयी आदत पड़ गयी। उन्हें किताबों से मुहब्बत हो गयी। चूँकि दिन-भर घर पर रहना होता था, समय बिताने के लिए कुछ न कुछ करना ज़रूरी था। उन दिनों सुंदरय्या अपने बच्चों के लिए घर पर दो बाल-पत्रिकाएँ—'बालमित्रा' और 'चंदामामा'

मँगवाया करते थे। 'बालमित्रा' सबसे पुरानी बाल-पत्रिका है। इस पत्रिका का प्रकाशन साल 1940 में शुरू हुआ था। मद्रास से शुरू हुई इस पत्रिका के संस्थापक संपादक बी. वी. राधाकृष्ण थे। बी. आर. वरदराजू सहायक संपादक हुआ करते थे। इस पत्रिका में शिक्षाप्रद कहानियों के अलावा ऐतिहासिक और पौराणिक कथाएँ प्रकाशित की जाती थीं। पत्रिका सचित्र थी, इस वजह से बच्चे इसे ख़ूब पसंद करते थे। इस पत्रिका में उपन्यास और लघु उपन्यास भी श्रृंखलाबद्ध तरीक़े से छापे जाते थे। रोमांच से भरपूर कहानियाँ इस पत्रिका की जान थीं। उन दिनों 'चंदामामा' नाम से एक अन्य बाल-पत्रिका निकलती थी। यह पत्रिका बेहद लोकप्रिय थी। इस मासिक पत्रिका में तरह-तरह की कहानियाँ छपती थीं। पौराणिक और ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित कहानियों के अलावा इस पत्रिका में लोक- कथाएँ भी होती थीं। कई बच्चे इस मासिक पत्रिका के नये अंक का बेसब्री से इंतज़ार करते थे। 'चंदामामा' कई भाषाओं में प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका की शुरुआत तेलुगु से हुई थी। जाने-माने फ़िल्म निर्माताओं - बी. नागी रेड्डी और आलूरि चक्रपाणि ने बच्चों का ज्ञान बढ़ाने और उनमें किताबें पढ़ने की आदत डालने के मक़सद से साल 1947 में एक पत्रिका शुरू करने का मन बनाया। तेलुगु और तमिल भाषाओं में फ़िल्में बनाने वाले नागी रेड्डी और चक्रपाणि ने 'को कु' के नाम से मशहूर तेलुगु साहित्यकार कोडवातिगंटि कुटुंब राव को इस पत्रिका के संपादन के ज़िम्मेदारी सौंपी। बच्चे इस पत्रिका से आसानी से जुड़ें, इस मक़सद से पत्रिका का नाम 'चंदामामा' रखा गया। 'चंदामामा' का पहला अंक जुलाई, 1947 में तेलुगु और तमिल में प्रकाशित हुआ। कुछ महीनों में यह पत्रिका लोकप्रिय हो गयी। पत्रिका को मिली अपार लोकप्रियता से प्रभावित होकर नागी रेड्डी और चक्रपाणि ने 'चंदामामा' को हिंदी, मराठी जैसी अन्य भाषाओं में भी प्रकाशित करना शुरू किया। ऐसा भी नहीं था कि इन दो पत्रिकाओं में सिर्फ़ कहानियाँ हुआ करती थीं। इन पत्रिकाओं में बच्चों से प्रश्न पूछे जाते थे। सही जवाब लिखकर भेजने वाले बच्चों को पुरस्कार दिये जाते थे। पत्रिकाओं में बच्चों के सामने पहेलियाँ भी पेश की जाती थीं। मज़ेदार चुटकुले भी होते थे। गणित, विज्ञान, भूगोल, इतिहास, कला-संस्कृति, जीव-जंतुओं के बारे में भी रोचक जानकारियाँ दी जाती थीं।

यह सच है कि बच्चों की रुचियाँ एक जैसी नहीं होतीं। किसी को कुछ पसंद

होता है, तो किसी को कुछ और। सबकी अपनी-अपनी पसंद होती है। 'बालमित्रा' और 'चंदामामा' की सबसे बड़ी ख़ूबी यही थी कि इसमें सभी के लिए कुछ न कुछ ज़रूर था। कई बच्चों में इन दोनों पत्रिकाओं को लेकर एक अज़ाब जुनून सवार रहता था। श्यामा प्रसाद भी 'बालमित्रा' और 'चंदामामा' के दीवाने हो गये।

श्यामा प्रसाद अपने घर पर 'बालमित्रा' और 'चंदामामा' पढ़ने में व्यस्त थे, तो वहीं आंध्रप्रदेश आंदोलन की आग में जल रहा था। आंदोलन को कुचलने के मक़सद से राज्य सरकार ने आंदोलनकारियों कर लाठियाँ बरसानी शुरू कीं। लठियाँ खाने के बाद भी जब आंदोलनकारियों ने अपना प्रदर्शन नहीं रोका, तब पुलिस के आँसू गैस के गोले दागने शुरू किये। पुलिस के इस रवैये की वजह से आंदोलन और भी उग्र हो गया। आंदोलनकारियों ने जगह-जगह सरकारी संपत्ति को आग के हवाले करना शुरू किया। आंदोलनकारी इस बात से ग़ुस्साये हुए थे कि केंद्र और राज्य की सरकारों पर अमृत राव के अनशन का कोई असर नहीं पड़ रहा है। अमृत राव ने साहसिक क़दम उठाया था। केंद्र में इंदिरा गांधी की सरकार थी। इंदिरा गांधी देश की सबसे लोकप्रिय और प्रभावशाली नेता थीं। प्रधानमंत्री के नाते उन्होंने कई कठोर और ऐतिहासिक फ़ैसले लिये थे। उनके ख़िलाफ़ आंदोलन करने की बात कोई सोच नहीं सकता था। दूसरी तरफ़ आंध्रप्रदेश में भी एक मजबूत सरकार थी। ताक़तवर नेता कासु ब्रह्मानंद रेड्डी मुख्यमंत्री थे। पूर्व विधायक अमृत राव ने इंदिरा गांधी और कासु ब्रह्मानंद रेड्डी जैसे दिग्गज नेताओं के ख़िलाफ़ आंदोलन करने का साहस किया था। यही वजह थी कि हज़ारों लोग अमृत राव के समर्थन में आ खड़े हुए थे। अमृत राव ने अपने अनशन से स्टील प्लांट आंदोलन में नयी जान फूँकी थी। अमृत राव के अनशन पर बैठते ही विशाखा स्टील के लिए एक संयुक्त कार्रवाई समिति बनी। जाने-माने स्वतंत्रता सेनानी और विशाखपट्नम से लोकसभा सदस्य तेन्नेटि विश्वनाथम इस समिति के मुखिया चुने गये। संयुक्त कार्रवाई समिति ने तरह-तरह के विरोध प्रदर्शन करने शुरू किये। जब लाठीचार्ज के बाद भी आंदोलनकारी टस से मस नहीं हुए, तब पुलिस ने आंदोलनकारियों को तितरबितर करने के मक़सद से कुछ जगह गोलियाँ भी चलायीं। पुलिस की गोलीबारी में कुल 32 लोग मारे गये। विशाखपट्नम में सबसे ज़्यादा बारह लोग पुलिस की गोलियों का शिकार हुए। विजयवाड़ा और गुंटूर में पाँच-पाँच और विजयनगरम में दो लोगों की जान

गयी। पुलिस कार्यवाही में कई लोग ज़ख़्मी हुए।

दिन-ब-दिन तीव्र होते आंदोलन ने सत्ताधारी पार्टी कांग्रेस के नेताओं की नींद उड़ा दी। पुलिस की दमनकारी नीति और कार्यवाही के बाद भी आंदोलन लगातार बढ़ता चला गया। अनशन की वजह से अमृत राव की लगातार बिगड़ती हालत ने आंदोलन की आग में घी का काम किया। जब अमृत राव का अनशन बीसवें दिन प्रवेश कर गया, तब मुख्यमंत्री कासु ब्रह्मानंद रेड्डी घबरा गये। उन्हें लगा कि जिस तरह की आग पोट्टि श्रीरामुलु की अनशन के दौरान मृत्यु के समय भड़की थी, उसी तरह की आग अमृत राव की मृत्यु से भी भड़क सकती है। इस आग में उनकी सरकार भी स्वाहा हो सकती है। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को ज़मीनी स्थिति से अवगत करवाने के लिए ब्रह्मानंद रेड्डी ने दिल्ली के लिए उड़ान भरी। मुख्यमंत्री ने प्रधानमंत्री को बताया कि आंदोलन की आग राज्य-भर में फैल गयी है। राज्य के हर हिस्से में केंद्र सरकार के ख़िलाफ़ आंदोलन हो रहे हैं। जब तब विशाखा में स्टील प्लांट की स्थापना की घोषणा नहीं की जाती है, तब तक यह आंदोलन जारी रहेगा। स्कूल-कॉलेज बंद हैं। लोग दुकानें भी नहीं खोल रहे हैं। सड़क-मार्ग बंद कर दिये गये हैं। रेलगाड़ियाँ रोक दी जा रही हैं। हर तरफ़ सरकारी संपत्ति को निशाना बनाया जा रहा है। केंद्र के ख़िलाफ़ ग़ुस्सा चरम पर है। आंध्र के लोग यह मान रहे हैं कि केंद्र सरकार उनके साथ नाइंसाफ़ी कर रही है। उनके अधिकार छीन रही है।

इंदिरा गांधी को बात समझने में देर न लगी। 31 अक्टूबर, 1966 को आयोजित कांग्रेस संसदीय दल की बैठक में प्रधानमंत्री ने एलान किया कि केंद्र सरकार विशाखपट्नम में स्टील प्लांट बनाने की माँग पर विचार करेगी और आंध्र के लोगों के हित में फ़ैसला लेगी। इस एलान के बाद मुख्यमंत्री कासु ब्रह्मानंद रेड्डी विशाखपट्नम पहुँचे और अमृत राव से अनशन ख़त्म करने का अनुरोध किया। चूँकि ख़ुद प्रधानमंत्री ने एलान किया था, अमृत राव ने अनशन ख़त्म कर दिया। अनशन के ख़त्म होते ही आंदोलन भी ख़त्म हो गया। केंद्र ने कुछ दिनों बाद एलान कर दिया कि देश का पाँचवाँ सरकारी इस्पात संयंत्र विशाखपट्नम में स्थापित किया जाएगा। इस एलान के बाद एक जन-आंदोलन सफल होकर समाप्त हुआ। एक बार फिर केंद्र को लोगों के सामने झुकना पड़ा। एक बार फिर आंध्र के लोगों ने अपना लोहा मनवाया।

आंदोलन के समाप्त होते ही जन-जीवन एक बार फिर सामान्य हो गया। स्कूल-कॉलेज दुबारा खुल गये। दुकानें खुली। दफ़्तरों में कामकाज शुरू हो गया। हर तरफ़ शांति बहाल हो गयी।

श्यामा प्रसाद भी स्कूल जाने लगे। लेकिन विशाखपट्नम में स्टील प्लांट स्थापित करने की माँग को लेकर शुरू हुए आंदोलन ने श्यामा प्रसाद में एक नयी और फ़ायदेमंद आदत को जन्म दिया था। आदत थी पत्रिकाएँ पढ़ने की। बाल-पत्रिकाएँ पढ़ते हुए श्यामा प्रसाद का ज्ञान लगातार बढ़ने लगा। उनकी स्मरण-शक्ति बढ़ने लगी। सामाजिक-राजनीतिक सूझ-बूझ बढ़ने लगी। स्कूल खुलने के बाद भी 'बालमित्रा' और 'चंदामामा' से प्रेम कम नहीं हुआ, बल्कि लगातार बढ़ता चला गया। नया अंक पढ़े बिना उन्हें चैन नहीं मिलता था। श्यामा प्रसाद हर अंक में छपने वाले प्रश्नों का जवाब संपादक को भेजकर पुरस्कार जीतने की कोशिश में लगे रहते। उन्हें कई बार पुरस्कार भी मिले।

वैसे तो श्यामा प्रसाद को स्कूल में कई नये दोस्त मिले, लेकिन रायप्पा राजू से उनकी दोस्ती सबसे तगड़ी थी। रायप्पा राजू को भी पढ़ने का शौक़ था। दोनों मिलकर किताबें ख़रीदते थे और पढ़ते थे। उम्र छोटी थी, लेकिन दोनों की दिलचस्पी उपन्यास पढ़ने में भी हो गयी। बारह साल की उम्र में श्यामा प्रसाद ने साहित्यिक रचनाएँ पढ़ना शुरू कर दिया।

माँ श्यामा प्रसाद को हर हफ़्ते तीन रुपये दिया करती थीं। श्यामा प्रसाद इन रुपयों से या तो फ़िल्म देखते या फिर कोई किताब ख़रीदते थे। रायप्पा राजू भी अपने माता-पिता से मिलने वाली पॉकेट मनी से किताबें ख़रीदते थे। श्यामा प्रसाद जब कोई किताब पढ़ लेते थे, तब उसे रायप्पा राजू को दे देते थे। रायप्पा राजू भी ऐसा ही करते थे। किताब पढ़ लेने के बाद वे उसे अपने मित्र को दे देते थे। किताबों का यह आदान-प्रदान लगातार चलता रहा। उन दिनों बहुत कम बच्चों में किताबों और साहित्य के प्रति इस तरह का प्यार था। दोनों एक मायने में किताबी कीड़ा बन गये थे। दोनों पर एक जुनून सवार हो गया था। जैसे ही कोई नयी साहित्यिक किताब बाज़ार में आती, उसे या तो श्यामा प्रसाद ख़रीदते या फिर रायप्पा राजू। इस तरह साहित्यिक किताबें पढ़ने का सिलसिला जारी रहा।

श्यामा प्रसाद को जासूसी उपन्यास सबसे ज़्यादा पसंद थे। जासूसी उपन्यासों

और अपराध कथाओं से श्यामा प्रसाद को बेइंतहा मुहब्बत हो गयी। वे खोज-खोजकर अपराध की घटनाओं पर आधारित उपन्यास पढ़ने लगे। कोम्मुरि सांभशिव राव श्यामा प्रसाद के सबसे पसंदीदा साहित्यकार बन गये।

सांभशिव राव तेलुगु में अपराध-कथा की दुनिया के सबसे लोकप्रिय लेखक थे। सांभशिव राव ने छोटी उम्र में लिखना शुरू कर दिया था। 26 अक्टूबर 1926 को गुंटूर ज़िले के तेनाली में जन्मे सांभशिव राव के पिता वेंकट रामय्या तेनाली में एक प्रिंटिंग प्रेस चलाते थे। इनकी माँ पद्मावती अभिनेत्री थीं और नाटकों में अलग-अलग किरदार निभाती थीं। वे तेलुगु के सबसे मशहूर रंगमंच कलाकार बेल्लारी राघव के साथ स्टेज नाटकों में हिस्सा लिया करती थीं। सांभशिव राव के भाई चलम भी अपनी साहित्यिक रचनाओं के लिए बेहद मशहूर हुए।

तेलुगु में पहला हॉरर उपन्यास 'चावु तप्पिते चालू' (मौत टल जाए तो काफ़ी है) सांभशिव राव ने ही लिखा। इसके पहले इनके जासूसी उपन्यास 'नंबर 888' ने तेलुगु-साहित्य की दुनिया में धमाल मचाया। एक के बाद एक जासूसी उपन्यास लिखते हुए सांभशिव राव ने जासूसी-अपराध कथाओं में नये प्रतिमान खड़े किये। इनके जासूसी उपन्यासों में जासूस युगंधर, उनके सहायक राजू और इंस्पेक्टर स्वराज्य राव के किरदार लोगों को बहुत पसंद आये। इनके सभी उपन्यासों 'बेस्ट सेलर' बने। जब भी इनका नया उपन्यास बाज़ार में आता था, वह हाथों-हाथ बिक जाता था। श्यामा प्रसाद को विश्वप्रसाद के जासूसी उपन्यास भी बहुत प्रिय थे।

ऐसा नहीं था कि श्यामा प्रसाद सिर्फ़ और सिर्फ़ रोमांच से भरे जासूसी उपन्यास ही पढ़ते थे, उन्हें सामाजिक उपन्यास भी पसंद थे। कोडुरि कौशल्या देवी, यद्दनपुडि सुलोचना रानी और रंगनायकम्मा के जितने भी उपन्यास बाज़ार में आये थे, सभी श्यामा प्रसाद ने पढ़ डाले थे। कोडुरि कौशल्या देवी के ज़्यादातर उपन्यास पारिवारिक रिश्तों पर आधारित हैं। इनके कुछ उपन्यासों की कथा को आधार बनाकर तेलुगु भाषा में फ़िल्में भी बनायी गयीं। उपन्यास की तरह ही फ़िल्में भी हिट रहीं। डॉ. चक्रवर्ती, प्रेमनगर, चक्रवाकम और शंखूतीर्थम जैसी हिट फ़िल्मों की कहानी कौशल्या देवी के उपन्यासों पर आधारित थी। सुलोचना रानी के उपन्यास भी बेहद लोकप्रिय हुए। स्त्री-समस्याओं को आधार बनाकर साहित्यिक रचनाएँ लिखने वाली रंगनायकम्मा की कहानियाँ भी श्यामा प्रसाद ने पढ़ीं।

साहित्यिक रचनाएँ पढ़ने से श्यामा प्रसाद को कई फ़ायदे हुए। तेलुगु भाषा पर उनकी पकड़ लगातार मजबूत होती चली गयी। उनका ज्ञानवर्धन होता रहा। समाज में मौजूद समस्याओं को अच्छी तरह से समझने लगे। रिश्ते कैसे बनते और बिगड़ते हैं, इस बात की जानकारी भी उन्हें मिल गयी। साहित्य पढ़ने की वजह से श्यामा प्रसाद छोटी उम्र में ही जीवन में पारिवारिक रिश्तों के महत्व को अच्छे से समझने लगे।

साहित्यिक किताबें पढ़ने का शौक़ श्यामा प्रसाद को अपने हमउम्र साथियों से जुदा करता था। उन दिनों ज़्यादातर किशोर खेलने-कूदने या फिर फ़िल्में देखने का शौक़ पालते थे। बड़े लोग ही साहित्यिक किताबें पढ़ा करते थें। हाई स्कूल के बच्चे 'बालमित्रा' और 'चंदामामा' जैसी बाल-पत्रिकाएँ पढ़ा करते थे। शायद श्यामा प्रसाद और रायप्पा राजू ही ऐसे विद्यार्थी थे, जो हाई स्कूल के दिनों से क्राइम इन्वेस्टिगेशन थ्रिलर पढ़ने लगे थे। इस उम्र के बच्चों से कोई सामाजिक ताने-बाने पर लिखी गयी कहानियों को पढ़ने की उम्मीद नहीं कर सकता था। लेकिन श्यामा प्रसाद और रायप्पा राजू बारह साल की उम्र से ही सामाजिक समस्याओं, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर आधारित साहित्यिक रचनाएँ पढ़ने लगे थे। ऐसा भी नहीं था कि श्यामा प्रसाद सिर्फ़ और सिर्फ़ साहित्यिक रचनाएँ पढ़ने और फ़िल्में देखने में भी अपना समय बिताते थे। श्यामा प्रसाद ने स्कूली पढ़ाई-लिखाई पर भी समुचित ध्यान दिया। वे कभी भी किसी परीक्षा में फेल नहीं हुए। क्लास में फ़र्स्ट नहीं आ पाते थे, लेकिन उनकी गिनती कामयाब विद्यार्थियों में होती थी।

श्यामा प्रसाद को बस हिंदी से परेशानी थी। हिंदी जी का जंजाल बन गयी थी। लाख कोशिश करने पर भी उन्हें हिंदी पढ़ने-लिखने में दिक़्क़त होती थी। 1967 में जब तमिलनाडु में हिंदी विरोधी आंदोलन शुरू हुआ, तब श्यामा प्रसाद को लगा कि इस तरह का आंदोलन आंध्रप्रदेश में भी होना चाहिए। हिंदी भाषा थोपी नहीं जानी चाहिए। विद्यार्थियों को हिंदी भाषा सीखने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए।

हिंदी सीखने के लिए श्यामा प्रसाद को कई पापड़ बेलने पड़े। वे हिंदी सीखने के लिए हिंदी के शब्द और वाक्य तेलुगु में लिखने लगे। हिंदी पढ़ना-लिखना मजबूरी थी। अगली क्लास में बढ़ने के लिए हिंदी की परीक्षा में पास होना ज़रूरी था। उन

दिनों आंध्रप्रदेश में स्कूली शिक्षा में त्रिभाषा-सूत्री कार्यक्रम लागू था। हाई स्कूल के बच्चों के लिए अपनी मातृभाषा तेलुगु के अलावा अंग्रेज़ी और हिंदी सीखना अनिवार्य था। इन तीन भाषाओं के अलावा बच्चों को गणित, विज्ञान और समाजशास्त्र पढ़ना होता था। कुल मिलाकर छह परीक्षाएँ देनी पड़ती थी, तीन भाषा की और तीन विषय की।

स्कूल की पढ़ाई-लिखाई में अपने बेटे श्यामा प्रसाद को कोई दिक़्क़त न आये, इस मक़सद से सुंदरय्या ने 'प्राइवेट ट्यूशन' की व्यवस्था की। टीचर घर आकर श्यामा प्रसाद और उनके भाई-बहनों को पढ़ाया-लिखाया करते थे।

सुंदरय्या के अनुरोध पर उस ज़माने के मशहूर तेलुगु कहानीकार और कवि कालीपट्नम रामा राव श्यामा प्रसाद और उनके भाई-बहनों को पढ़ाने घर आने लगे थे। 'का रा मास्टर' के नाम से मशहूर कालीपट्नम रामा राव आजीविका के लिए सेंट एंथोनी हाई स्कूल में शिक्षक के रूप में काम कर रहे थे। साहित्यकार थे, इस वजह से वे अपने शिष्यों को भाषा का ज्ञान देने से खुद को नहीं रोक पाते थे।

'का रा मास्टर' की वजह से भी श्यामा प्रसाद की तेलुगु भाषा पर पकड़ काफ़ी मजबूत हुई। मास्टर अक्सर श्यामा प्रसाद से कहानियाँ लिखने को कहते। वैसे कोई भी मास्टर हाई स्कूल के किसी बच्चे से कहानी लिखने को नहीं कहता है, लेकिन 'का रा मास्टर' का अंदाज़ सबसे जुदा था। वे बच्चों से छोटी-छोटी कहानियाँ लिखवाते हुए उन्हें बहुत कुछ सिखाते थे। वे मानते थे कि लिखते हुए भी बच्चे बहुत सारी बातें सीखते हैं। जब बच्चों को कहानी लिखने के लिए विषय नहीं सूझता था, तब 'का रा मास्टर' ख़ुद उन्हें विषय देते थे। एक दिन 'का रा मास्टर' ने बच्चों से घर में माता-पिता के बीच होने वाले झगड़ों के बारे में लिखने को कहा। सभी बच्चों ने जमकर लिखा। बच्चों की लिखी बातें पढ़कर 'का रा मास्टर' समझ गये कि हर घर में झगड़ा होता है।

श्यामा प्रसाद ने हमेशा मन लगाकर पढ़ाई की। पिता सुंदरय्या ख़ुद अपने बच्चों को घर पर पढ़ाना चाहते थे, लेकिन दिन-रात मरीज़ों के इलाज में लगे रहने की वजह से वे समय नहीं निकाल पा रहे थे।

उन दिनों सुंदरय्या सबसे ज़्यादा व्यस्त डॉक्टर थे। हड्डियों का डॉक्टर होने की वजह से उनके पास इलाज के लिए मरीज़ों के आने का सिलसिला लगातार चलता

रहता था। दूर-दूर से लोग इलाज करवाने के लिए सुंदरय्या के पास आया करते थे। आंध्रप्रदेश के श्रीकाकुलम, विजयनगरम और विशाखपट्नम ज़िले के मरीज़ों के अलावा उड़ीसा के कई ज़िलों से भी लोग इलाज के लिए किंग जॉर्ज हॉस्पिटल आते थे। आंध्र का सबसे बड़ा सरकारी अस्पताल होने की वजह से मरीज़ों के आने का सिलसिला थमने का नाम नहीं लेता था। चूँकि सुंदरय्या ऑर्थोपेडिक सर्जन थे, उनके पास दुर्घटना का शिकार मरीज़ ज़्यादा आते थे। दुर्घटना में इनकी हड्डियाँ टूट जाती थीं और दर्द से कराहते हुए वे सुंदरय्या के पास इलाज के लिए आते थे। टूटी हड्डियों को जोड़ने में सुंदरय्या ने महारत हासिल कर ली थी। फ्रैक्चर के अलावा गठिया, जोड़ों में दर्द, माँसपेशिओं में दर्द, स्पाइन टीबी, हड्डी ट्यूमर, साइटिका, रीढ़ की हड्डी में दर्द जैसी शिकायतों वाले मरीज़ भी बड़ी संख्या में आते थे। उन दिनों सरकारी सर्जनों को घर पर भी मरीज़ों का इलाज करने की अनुमति थी। सुंदरय्या ने अपने मकान में एक क्लीनिक खोल लिया था। वे यहाँ छोटी सर्जरियाँ किया करते थे। सुंदरय्या पर लोगों का विश्वास इतना ज़्यादा था कि वे किसी दूसरे सर्जन के हाथों अपना इलाज करवाना पसंद नहीं करते थे। यही वजह थी कि जब सुंदरय्या अस्पताल में अपनी ड्यूटी पूरी कर घर लौटते थे, तब घर पर भी उनके इंतज़ार में कई लोग बैठे हुए होते थे। यानी, अस्पताल से लौटने के बाद भी लोगों का इलाज जारी रहता था।

श्यामा प्रसाद और उनके भाई-बहनों ने हमेशा अपने पिता को मरीज़ों के इलाज में व्यस्त ही देखा। इस व्यस्तता का बच्चों के मन-मस्तिष्क पर गहरा असर भी पड़ा। इलाज से ठीक होने पर मरीज़ जिस तरह से सुंदरय्या की तारीफ़ किया करते थे, उसे सुनकर बच्चों का सीना चौड़ा हो जाता था। सभी बच्चों को अपने पिता की क़ाबिलियत और लोकप्रियता पर बहुत नाज़ था।

एक घटना का साक्षी बनने के बाद श्यामा प्रसाद ने मन ही मन फ़ैसला कर लिया था कि वे भी पिता की तरह डॉक्टर बनेंगे और लोगों की सेवा में अपना जीवन समर्पित करेंगे।

एक दिन की बात है। एक मरीज़ दर्द से कराहते हुए सुंदरय्या के मकान पर पहुँचा। पूछने पर इस मरीज़ ने बताया कि वह एक दुर्घटना का शिकार हुआ है और उसका बायाँ कँधा ज़ख़्मी है। कँधे में दर्द बहुत ज़्यादा है। सुंदरय्या ने मरीज़ की जाँच की। जाँच के बाद सुंदरय्या ने मरीज़ से कहा, "घबराओ नहीं, तुम्हारा दर्द जल्द दूर

हो जाएगा।" इतना कहने के बाद सुंदरय्या ने मरीज़ को ज़मीन पर लिटाया। मरीज़ का बायाँ हाथ अपने दाहिने हाथ से कसकर पकड़ा। इसके बाद अपनी एक टाँग मरीज़ के कँधे के ऊपर से डालकर ज़मीन पर जमा दी। फिर अचानक एक झटके से हाथ खींच दिया। मरीज़ ज़ोर से चिल्लाया। उसकी चीख सुनकर आसपास के लोग घबरा गये। लेकिन इस चीख के कुछ पलों बाद वह शांत हो गया। उसका दर्द ग़ायब हो गया। उसे यक़ीन नहीं हो रहा था कि जो दर्द उसका जीना मुहाल कर रहा था, वह डॉक्टर के एक झटके से ग़ायब हो गया। एक झटके से कँधा ठीक हो गया और दर्द छूमंतर। मरीज़ डॉक्टर के पाँवों पर गिर पड़ा और शुक्रियाअदा करने लगा। सुंदरय्या ने मरीज़ को उठाया और अपने घर लौटने को कहा। घर लौटने से पहले मरीज़ ने सुंदरय्या से कहा, "डॉक्टर साहब, आप के हाथ में जादू है। आपने जादू ने मुझे बचा लिया। मुझे लग रहा था कि दर्द से मैं मर जाऊँगा।"

यह घटना श्यामा प्रसाद की आँखों के सामने हुई थी। उन्हें लगा कि वकाई डॉक्टर के हाथों के जादू आ जाता है। इसी जादू से वे मरीज़ों का इलाज करते हैं। तभी किशोर श्यामा प्रसाद ने मन बना लिया कि वे भी अपने पिता की तरह डॉक्टर बनेंगे और लोगों का दर्द दूर करेंगे।

श्यामा प्रसाद को पता नहीं था कि उनके पिता ने वैज्ञानिक-पद्धति से मरीज़ का इलाज किया था। मरीज़ की जाँच करते समय सुंदरय्या को यह समझने में देर न लगी कि कँधे की हड्डी अपनी जगह से सरक गयी है, यानी शोल्डर डिस्लोकेट हुआ है। जब तक शोल्डर सही जगह पर वापस नहीं ला लिया जाता, तब तक मरीज़ को दर्द होता रहेगा। सुंदरय्या ने अपनी जगह से हट गये कँधे को झटके से वापस अपनी जगह पर ला दिया था। यह काम सिर्फ़ अनुभवी डॉक्टर कर सकते हैं। वरना, कंधे को उसकी सही जगह पर लाने के लिए सर्जरी की जाती है। सुंदरय्या हर दिन कई मरीज़ों का इलाज करते थे। कई सर्जरियाँ करते थे। हड्डियों से जुड़ी समस्याओं के निदान में वे पारंगत हो गये थे।

सुंदरय्या इतना व्यस्त हुआ करते थे कि घर-परिवार के लिए समय निकाल पाना उनके लिए मुश्किल हो गया था। बच्चों की परवरिश की सारी ज़िम्मेदारी माँ कांतम्मा पर आ गयी थी। कांतम्मा ने बच्चों को संभाला और उनकी परवरिश की। अच्छी शिक्षा दी। अच्छे संस्कार दिये। माँ की ज़िम्मेदारी बख़ूबी निभायी और बच्चों

को अपना बचपन मज़े में जीने दिया। बच्चों को किसी तरह की कोई कमी महसूस नहीं होने दी। सुंदरय्या के एक कामयाब और लोकप्रिय डॉक्टर बनने में उनकी पत्नी कांतम्मा की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है।

श्यामा प्रसाद के छोटे भाई गोपी कृष्णा की पढ़ाई भी विशाखपट्नम में ही हुई। मैथिली की पढ़ाई तिरुपति में हुई। जबकि सबसे छोटी बेटी शोभा को सुंदरय्या ने अपने सबसे बड़े साढ़ू राघवय्या को दत्तक दे दिया था। राघवय्या संतानहीन थे। उनके अनुरोध को स्वीकार करते हुए सुंदरय्या और कांतम्मा ने अपनी दूसरी बेटी को दत्तक दे दिया। इसी वजह से शोभा की स्कूली शिक्षा राघवय्या के यहाँ गुडूर में हुई। राघवय्या सरकारी नौकरी करते थे। वे उप-तहसीलदार पद से सेवा-निवृत्त हुए।

अगस्त 1967 में सुंदरय्या का तबादला काकिनाडा हो गया। वे रंगराया मेडिकल कॉलेज में पढ़ाने लगे। साथ ही काकिनाडा के सरकारी जनरल अस्पताल में सर्जन की ज़िम्मेदारियाँ भी निभाने लगे। नये शहर में जम जाने के बाद सुंदरय्या ने पत्नी और बच्चों को अपने पास बुला लिया। चूँकि बड़े बेटे श्यामा प्रसाद दसवीं में आ गये थे, सुंदरय्या ने उनके लिए सबसे बढ़िया स्कूल की तलाश शुरू की। यह तलाश मैक लॉरिन हाई स्कूल पर आकर रुकी। साल 1930 में एक कनाडाई बैपटिस्ट मिशन ने इस स्कूल की स्थापना की थी। यह स्कूल काकीनाडा का सबसे पुराना मिशनरी स्कूल है। इस स्कूल ने उत्कृष्ट शिक्षा के ज़रिये एक नया मानक स्थापित किया था। श्यामा प्रसाद का दाख़िला मैक लॉरिन हाई स्कूल में हो गया। श्यामा प्रसाद भी अच्छे से जानते थे कि दसवीं की परीक्षा आसान नहीं होती। यह परीक्षा खुद के स्कूल में नहीं दी जाती है। परीक्षा देने के लिए किसी दूसरे स्कूल जाना होता है। परीक्षा-केंद्र का निर्धारण सरकार का स्कूली शिक्षा बोर्ड करता है। परीक्षा के लिए प्रश्न-पत्र भी बोर्ड तैयार करता है। दसवीं की परीक्षा में मिले नंबरों के आधार पर ही इंटर कॉलेज में दाख़िला मिलता है। जितने अच्छे नंबर होंगे, उतना बढ़िया कॉलेज होगा।

दसवीं में श्यामा प्रसाद ने मन लगाकर पढ़ाई-लिखाई की। गणित और विज्ञान पर अपनी पकड़ मजबूत की। प्राइवेट ट्यूशन से उन्हें फ़ायदा मिला। लेकिन हिंदी परेशानी का सबब बनी रही। हिंदी की परीक्षा में फेल होने से बचने के लिए श्यामा प्रसाद ने कड़ी मेहनत की। इसी मेहनत का नतीजा था कि वे हिंदी की परीक्षा में

पास हो गये। अन्य सभी विषयों की तुलना में उन्हें हिंदी में सबसे कम नंबर मिले। गणित, विज्ञान, समाजशास्त्र, तेलुगु और अंग्रेज़ी की परीक्षाओं में उन्हें शानदार नंबर मिले। हिंदी में कम नंबर मिलने के बावजूद सुंदरय्या दसवीं की परीक्षा में फ़र्स्ट डिवीज़न हासिल किया। अपने बेटे के शानदार प्रदर्शन पर पिता सुंदरय्या का सीना गर्व से चौड़ा हो गया। वे अपने बेटे की कामयाबी पर फूले नहीं समा रहे थे।

1969 यानी साठ के दशक के आख़िरी साल में श्यामा प्रसाद ने दसवीं पास की। उनकी स्कूली शिक्षा साठ के दशक में हुई। साठ के दशक में भारत में कई बड़े परिवर्तन हुए। कई राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्रांतियों की शुरुआत हुई। आंध्रप्रदेश में भी क्रांतियाँ हुईं। इन्हीं क्रांतियों के बीच श्यामा प्रसाद का बचपन बीता। साठ का दशक काफ़ी उथल-पुथल वाला भी रहा। भारत ने इस दशक में दो बड़े युद्ध लड़े। 1962 में चीन से युद्ध हुआ। इस युद्ध में भारत को भारी नुक़सान हुआ। इतिहास की किताबें बताती हैं कि चीन के अस्सी हज़ार जवानों का मुक़ाबला करने के लिए भारत की ओर से मैदान में सिर्फ़ बीस हज़ार सैनिक मौजूद थे। भारत ने चीन से हमले की उम्मीद नहीं की थी। लेकिन चीन ने अचानक भारत पर हमला कर सभी को चौंका दिया था। चीन ने भारत के साथ विश्वासघात किया था। लोग कहने लगे थे कि दोस्ती की पीठ पर चीन ने दगाबाज़ी का खंजर घोंपा है। भारत यही मान रहा था कि चीन बातचीत के ज़रिये सभी समस्याओं का समाधान निकालेगा। लेकिन चीन ने बातचीत के सिलसिले के बीच अचानक हमला कर दिया। 1962 के युद्ध में भारत को चीन के हाथों हार मिली थी। इस युद्ध में भारत के क़रीब 1300 सैनिक मारे गये। एक हज़ार सैनिक घायल हुए। डेढ़ हज़ार सैनिक लापता हो गये। क़रीब चार हज़ार सैनिक बंदी बना लिये गये। वहीं चीन के क़रीब 700 सैनिक मारे गये थे। इस युद्ध के बाद प्रधानमंत्री नेहरू की काफ़ी आलोचना हुई। चीन से दोस्ती को लेकर उनसे सवाल पूछे जाने लगे। उनकी विदेश-नीति पर भी उँगलियाँ उठायी जाने लगीं। भारत की सैन्य ताक़त को न बढ़ाने का भी आरोप लगा। चीन के विश्वासघात ने नेहरूजी को अंदर से हिलाकर रख दिया था।

24 मई 1964 को देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का निधन हो गया। सारा देश शोक के सागर में डूब गया। लाल बहादुर शास्त्री देश के नये प्रधानमंत्री चुने गये। शास्त्रीजी ने देश को “जय जवान, जय किसान” का नारा

दिया। उन्होंने श्वेत क्रांति और हरित क्रांति, दोनों को बढ़ावा दिया।

1965 में भारत का पाकिस्तान से युद्ध हुआ। इस युद्ध में भारत ने पाकिस्तान को करारी शिकस्त दी। इस युद्ध में जीत हासिल कर भारत ने पाकिस्तान की कश्मीर पर कब्ज़ा करने की कोशिश को नाकाम किया। युद्ध के ज़रिये भारत ने अपनी सैन्य ताक़त का भी शानदार प्रदर्शन किया।

लेकिन 11 जनवरी 1966 को लाल बहादुर शास्त्री की सोवियत संघ के ताशकंद में संदेहास्पद स्थिति में मौत हो गयी। 10 जनवरी 1966 को पाकिस्तान के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर करने के महज 12 घंटे बाद 11 जनवरी को रात 1:32 बजे उनकी मौत हो गयी। कहा जाता है कि शास्त्रीजी निधन से आधे घंटे पहले तक बिल्कुल ठीक थे, लेकिन 15 से 20 मिनट में उनकी तबीयत ख़राब हो गयी। इसके बाद डॉक्टरों ने उन्हें इंट्रा-मस्कुलर इंजेक्शन दिया। इंजेक्शन देने के चंद मिनट बाद उनकी मौत हो गयी। देश के लाडले वीर सपूत के निधन से देश एक बार फिर शोक में डूब गया।

नेहरूजी की बेटी इंदिरा गांधी देश की तीसरी प्रधानमंत्री बनीं। बतौर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने कई मजबूत और ऐतिहासिक फ़ैसले लेने शुरू किये। 1969 में 14 निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। इन 14 बैंकों में देश का क़रीब 70 फ़ीसदी जमा था। राष्ट्रीयकरण के बाद इन बैंकों का मालिकाना हक सरकार के पास आ गया। आर्थिक समानता को बढ़ावा देने के मक़सद से इंदिरा गांधी ने बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया था।

साठ के दशक में भारत ने दो युद्ध लड़े। दो प्रधानमंत्रियों का निधन इसी दशक के दौरान हुआ। दो बड़ी क्रांतियों - श्वेत क्रांति और हरित क्रांति की शुरुआत इसी दशक में हुई। देश को इंदिरा गांधी के रूप में एक प्रभावशाली और ताक़तवर नेता मिला। ऐसी बड़ी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों के बीच श्यामा प्रसाद ने अपनी स्कूल शिक्षा हासिल की और बचपन जिया।

1969 में दसवीं के नतीजे आने के कुछ दिनों बाद सुंदरय्या के मन में यह जानने की इच्छा हुआ कि उनका बड़ा बेटा कौन-सा पेशा चुनना चाहता है।

एक दिन सुंदरय्या ने श्यामा प्रसाद से पूछा, “बेटा, तुमने दसवीं की परीक्षा पास कर ली है। अब तुम्हारा दाख़िला इंटर कॉलेज में होगा। अब तुम्हें सभी विषय

पढ़ने की ज़रूरत नहीं होती। तुम्हें अपना पसंदीदा विषय चुनना होगा। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम क्या बनना चाहते हो?"

इस सवाल के जवाब में श्यामा प्रसाद ने तपाक से कहा, "पिताजी, मैं आपकी तरह डॉक्टर बनना चाहता हूँ। मैं आपसे भी बड़ा और कामयाब डॉक्टर बनना चाहता हूँ। आपने जो हासिल किया है, मैं उससे कुछ ज़्यादा हासिल करना चाहता हूँ।"

यह जवाब सुनकर सुंदरय्या का मन ख़ुशी से गदगद हो गया। उन्हें यक़ीन नहीं हो रहा था कि उनका बड़ा बेटा उनकी विरासत को आगे बढ़ाने की सोचने लगा है। मन में जन्मी कुछ शंकाओं को दूर करने के मक़सद से सुंदरय्या ने बेटे से कहा, "देखो श्याम, डॉक्टर बनना आसान नहीं है। इंटर में ख़ूब मेहनत करनी पड़ती है। अव्वल नंबर लाने होते हैं, तभी जाकर मेडिकल कॉलेज में सीट मिलती है।"

अपनी प्रतिक्रिया में श्यामा प्रसाद ने कहा, "पिताजी मैं मेहनत करूँगा। मैं डॉक्टर ही बनूँगा।"

बेटे के विश्वास पर सुंदरय्या को यक़ीन हो गया। फिर भी उन्होंने एक और प्रश्न श्यामा प्रसाद से पूछा।

कहा, "तुम डॉक्टर ही क्यों बनना चाहते हो?"

जवाब में श्यामा प्रसाद ने कहा, "मैंने आपको लोगों का इलाज करते हुए देखा है। आप लोगों का दर्द दूर करते हैं। मरीज़ों की बीमारियाँ दूर करते हैं। आपके इलाज की वजह से जो लोग दुबारा स्वस्थ्य हो जाते हैं, वे सभी आपको दुआएँ देते हैं। सभी आपको भगवान मानते हैं। मैं भी आप की तरह बनना चाहता हूँ। मैं आपसे भी ज़्यादा लोकप्रिय डॉक्टर बनना चाहता हूँ।"

सुंदरय्या के मन की सारी शंकाएँ दूर हो गयीं। उन्हें यक़ीन हो गया कि उनका बेटा उनकी विरासत को आगे बढ़ाएगा।

अध्याय 5

मेडिकल कॉलेज में दाख़िले का हक़दार बनने के लिए किया कठोर परिश्रम

डॉक्टर बनना आसान नहीं है। डॉक्टर बनने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। और तो और, डॉक्टर बनने के लिए कुछ विशेष गुणों का होना बेहद ज़रूरी होता है। डॉक्टर बनने के लिए बुद्धि तेज़ होनी चाहिए। स्मरण-शक्ति ग़ज़ब की होनी चाहिए। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से मजबूत होना भी ज़रूरी होता है।

आज़ादी से पहले अंग्रेज़ों ने भारत में एलोपैथिक मेडिकल कॉलेज खोले थे। अंग्रेज़ों ने ही भारत में एलोपैथी चिकित्सा-पद्धति के ज़रिये लोगों का इलाज शुरू किया था। एलोपैथी के आने से पहले भारत में आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा-पद्धतियों से लोगों की बीमारियों का इलाज किया जाता था। आयुर्वेद का इतिहास बहुत पुराना है और शताब्दियों से भारत में इसका उपयोग इलाज में किया जाता रहा है।

आज़ादी से पहले भारत के सभी मेडिकल कॉलेजों का नियंत्रण अंग्रेज़ हुकूमत के हाथों में था। आज़ादी के बाद इन सभी मेडिकल कॉलेजों का नियंत्रण भारत सरकार के हाथों में आ गया। राज्यों के गठन के बाद मेडिकल कॉलेजों को चलाने की ज़िम्मेदारी संबंधित राज्य सरकारों पर आ गयी। कुछ प्राइवेट मेडिकल कॉलेज भी खुले। लेकिन सभी मेडिकल कॉलेजों में हमेशा एक पाठ्यक्रम ही लागू हुआ।

जिस साल श्यामा प्रसाद ने दसवीं पास की, उस समय भारत में सिर्फ़ 98 मेडिकल कॉलेज थे। यानी, 1969 में भारत में 100 से कम मेडिकल कॉलेज थे। बैचलर ऑफ़ मेडिसिन ऐंड बैचलर ऑफ़ सर्जरी (एमबीबीएस) कोर्स के लिए इन

मेडिकल कॉलेजों में 50 से 100 सीटें हुआ करती थीं। 1969 में आंध्रप्रदेश में नौ मेडिकल कॉलेज थे। आंध्र का पहला मेडिकल कॉलेज, आंध्र मेडिकल कॉलेज विशाखपट्नम में साल 1923 में स्थापित किया गया था। इसके बाद 1946 में पहले गुंटूर मेडिकल कॉलेज और फिर हैदराबाद में उस्मानिया मेडिकल कॉलेज की शुरुआत हुई। आज़ादी के बाद आंध्रप्रदेश में पहला मेडिकल कॉलेज सिकंदराबाद में स्थापित हुआ। गांधी मेडिकल कॉलेज के नाम से शुरू हुए इस कॉलेज में 1954 से डॉक्टरी पढ़ाई शुरू हुई। इसके बाद 1957 में कर्नूल मेडिकल कॉलेज अस्तित्व में आया। 1958 में काकिनाडा में स्थापित रंगराया मेडिकल कॉलेज आंध्रप्रदेश का पहला निजी मेडिकल कॉलेज बना। 1959 में वरंगल में काकतीय मेडिकल कॉलेज की शुरुआत हुई। 1960 में तिरुपति में श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज स्थापित किया गया।

इन आठ मेडिकल कॉलेजों में सीट पाने के लिए विद्यार्थियों में कड़ी प्रतिस्पर्धा होती थी। 1968 तक इन मेडिकल कॉलेजों में विद्यार्थियों को दाख़िला इंटर की परीक्षाओं में मिले नंबरों के आधार पर दिया जाता था। यही वजह थी कि डॉक्टर बनने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थी इंटर की परीक्षा में सबसे ज़्यादा नंबर लाने की कोशिश करते थे। एमबीबीएस पाठ्यक्रम में दाख़िले के लिए इंटर में बॉटनी (वनस्पति विज्ञान), जूलॉजी (जीवविज्ञान), केमिस्ट्री (रसायन-शास्त्र) और फ़िज़िक्स (भौतिक-विज्ञान) की पढ़ाई अनिवार्य है। यानी, डॉक्टरी पढ़ाई करने के इच्छुक विद्यार्थियों को इंटर में बीपीसी (बायोलॉजी, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री) ग्रुप की पढ़ाई करनी होती है। आंध्रप्रदेश में इंटर के दौरान अंग्रेज़ी और चयनित दूसरी भाषा में भी परीक्षा लिखनी होती है।

इंटर की परीक्षाओं में सबसे ज़्यादा नंबर लाने वाले विद्यार्थियों को ही मेडिकल कॉलेज में दाख़िला मिल पाता था। मेडिकल कॉलेज में सीट पाने के लिए टॉप रैंकधारक होना ज़रूरी था।

वैसे तो कई विद्यार्थी डॉक्टर बनने का सपना देखते हैं, लेकिन हर विद्यार्थी का सपना पूरा नहीं हो पाता। उन दिनों इंटर की परीक्षा लिखने वाले विद्यार्थियों की संख्या लाखों में होती थी, जबकि एमबीबीएस सीटें एक हज़ार से कम थीं। बात साफ़ थी। मेडिकल कॉलेज में सीट पाने के लिए इंटर परीक्षा में 750 से कम रैंक लाना ज़रूरी था। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के लिए

सीटें आरक्षित थीं। इस वजह से मेडिकल सीट के लिए टॉप 750 विद्यार्थियों में एक होना अनिवार्य था।

श्यामा प्रसाद ने डॉक्टर बनना का मन बना लिया था, और वे भी अच्छे से जानते थे कि डॉक्टर बनना आसान नहीं है। डॉक्टर बनने के लिए उन्हें पढ़ाई-लिखाई में अपनी पूरी ताक़त झोंक देनी होगी। बायोलॉजी, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री जैसे जटिल विषयों को आत्मसात करना होगा। परीक्षा के लिए तगड़ी तैयारी करनी पड़ेगी। एक छोटी-सी लापरवाही या चूक डॉक्टर बनने के सपने को चकनाचूर कर सकती थी। सुंदरय्या ने भी ठान ली कि वे डॉक्टर बनने की कोशिश को कामयाब करने में श्यामा प्रसाद की हर मुमकिन मदद करेंगे।

फरवरी 1969 में सुंदरय्या का तबादला काकिनाडा से तिरुपति हो गया। वे श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में ऑर्थोपेडिक के प्रोफ़ेसर बने। सुंदरय्या श्री वेंकटेश्वर रामनारायण रुया सरकारी अस्पताल में सर्जन की ज़िम्मेदारियों भी निभाने लगे, यानी लोगों का इलाज जारी रहा। सुंदरय्या ने पत्नी और बच्चों को भी अपने पास बुला लिया।

उन्हीं दिनों तिरुपति में एक नये कॉलेज, गोविंदराजा स्वामी आर्ट्स कॉलेज, की स्थापना की गयी थी। तिरुमला के श्री वेंकटेश्वर स्वामी मंदिर का प्रबंधन संभालने वाले तिरुमला तिरुपति देवस्थानम ने इस कॉलेज की स्थापना की। तिरुमला तिरुपति देवस्थानम मंदिरों के प्रबंधन की ज़िम्मेदारी निभाने के साथ-साथ सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और शैक्षिक गतिविधियों को भी बढ़ावा देता है।

सुंदरय्या ने गोपी कृष्णा और मैथिली का दाख़िला तिरुपति के अलग-अलग स्कूलों में करवाया। श्यामा प्रसाद का दाख़िला गोविंदराजा स्वामी आर्ट्स कॉलेज में करवा दिया। पिता ने श्यामा प्रसाद के लिए अंग्रेज़ी मीडियम चुना। अनुभव की वजह से सुंदरय्या जानते थे कि सारी डॉक्टरी पढ़ाई अंग्रेज़ी में होती है। मातृभाषा या किसी अन्य भाषा पर पकड़ मजबूत होने से कोई फ़ायदा नहीं होता। डॉक्टरी पढ़ाई करने के लिए अंग्रेज़ी पर पकड़ मजबूत करना ज़रूरी होता है। सुंदरय्या ने बारहवीं तक तेलुगु माध्यम से पढ़ाई की थी। और, जब उन्हें मेडिकल कॉलेज में सीट मिली, तब अंग्रेज़ी में सीखने और समझने में बहुत दिक़्क़त आयी। विषय पर पकड़ मजबूत करने के लिए सुंदरय्या को पहले अंग्रेज़ी भाषा पर पकड़ मजबूत करनी पड़ी थी।

उन्हें लगा कि बारहवीं के दौरान अगर उनका बेटा अंग्रेज़ी पर पकड़ मजबूत कर लेता है, तब डॉक्टरी की पढ़ाई आसान रहेगी।

डॉक्टर बनना चाहते थे, इस वजह से श्यामा प्रसाद ने इंटर में बायोलॉजी, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री को अपना मुख्य विषय बनाया।

श्यामा प्रसाद के लिए तिरुपति में बहुत कुछ नया था। नया शहर, नया शिक्षा संस्थान, नया माहौल, नये सहपाठी, नये दोस्त और भी बहुत कुछ नया। श्यामा प्रसाद के लिए एक नयी चुनौती भी थी। दसवीं तक उनकी पढ़ाई-लिखाई तेलुगु माध्यम से हुई थी। लेकिन इंटर कॉलेज में उनका दाख़िला इंग्लिश मीडियम में करवाया गया था। तेलुगु भाषा पर तगड़ी पकड़ होने की वजह से श्यामा प्रसाद को दसवीं तक कोई दिक़्क़त नहीं हुई। विषयों को आत्मसात करना आसान था, क्योंकि पढ़ाई मातृभाषा में थी। परेशानी सिर्फ़ हिंदी से थी, जिसे उन्होंने कड़ी मेहनत से पार कर लिया था। लेकिन इस बार अंग्रेज़ी जी का जंजाल बनी। बायोलॉजी, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री को अंग्रेज़ी में पढ़ना और समझना आसान नहीं था। पहले दिन से ही दिक़्क़त पेश आने लगी। विज्ञान से जुड़े सभी विषयओं की पढ़ाई अंग्रेज़ी में होने लगी। जो बातें लेक्चरर कह रहे थे, वे उन्हें समझ नहीं पा रहे थे। ऐसा पहली बार हो रहा था कि जब वे अंग्रेज़ी में लेक्चर सुन रहे थे। अब तब सभी शिक्षकों ने उन्हें तेलुगु में पढ़ाया था। तेलुगु यानी मातृभाषा में जटिल से जटिल विषय को समझना आसान था। कई सारी तेलुगु पुस्तकें पढ़ने की वजह से श्यामा प्रसाद की भाषा पर पकड़ बेहद मजबूत हो गयी थी। कालीपट्नम रामा राव जैसे महापंडितों से शिक्षा मिलने की वजह से तेलुगु भाषा में पारंगत बन गये थे। वैसे तो श्यामा प्रसाद ने स्कूल में अंग्रेज़ी की पढ़ाई की थी, लेकिन यह पढ़ाई इंटर में बायोलॉजी, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री जैसे जटिल विषयों को समझने के लिए पर्याप्त नहीं थी।

इंटर कॉलेज में बायोलॉजी, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री विषयों पर अंग्रेज़ी लेक्चर सुनते हुए श्यामा प्रसाद को ऐसा लगने लगा कि वे किसी दूसरी दुनिया में आ गये हैं। पहले हफ़्ते में ही उन्हें लगने लगा कि यह पढ़ाई आसान नहीं है। जब दूसरे हफ़्ते भी हालत जस की तस बनी रही, तब उनका मनोबल टूटने लगा। अंग्रेज़ी में पढ़ाये जाने की वजह से बायोलॉजी, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री के मूलभूत सिद्धांत भी श्यामा प्रसाद नहीं समझ पा रहे थे। अब दिन-ब-दिन उनकी निराशा बढ़ने लगी।

वे मायूस रहने लगे। मन में अजीब-अजीब ख़याल आने लगे। कॉलेज की पढ़ाई शुरू हुए अभी एक महीना भी नहीं हुआ था कि उनके मन में नाउम्मीदी भर गयी। लगा कि वे कभी डॉक्टर नहीं बन पाएँगे।

नाउम्मीद और निराश होने की एक और बड़ी वजह थी। कॉलेज में कई ऐसे विद्यार्थी थे, जो अंग्रेज़ी मीडियम से पढ़कर कॉलेज आये थे। ये सभी फर्राटेदार अंग्रेज़ी बोलते थे। शिक्षकों के सवालों का अंग्रेज़ी में शानदार तरीक़े से जवाब देते थे। जबकि श्यामा प्रसाद जवाब नहीं दे पाते थे, क्योंकि अंग्रेज़ी में पूछे जाने की वजह से वे सवाल समझ नहीं पाते थे। अगर सवाल समझ भी जाते, तब भी विषय की जानकारी न होने की वजह से वे जवाब देने में अक्षम थे।

ऐसा भी नहीं था कि अपने बैच में श्यामा प्रसाद अकेले थे। और भी कई विद्यार्थी ऐसे थे, जो तेलुगु मीडियम से पढ़ाई कर कॉलेज आये हुए थे। इनकी हालत भी श्यामा प्रसाद जैसी थी। लेकिन इनमें से कई बिंदास थे। इन्हें किसी प्रकार की कोई चिंता नहीं थी। न ये उदास थे, न निराश। इनमें से शायद ही कोई डॉक्टर बनने का सपना देख रहा था। श्यामा प्रसाद इस वजह से चिंतित थे, क्योंकि वे डॉक्टर बनने का सपना देख रहे थे। उन्होंने संकल्प लिया था कि वे अपने पिता से ज़्यादा मशहूर डॉक्टर बनेंगे। इंटर कॉलेज में आने के बाद श्यामा प्रसाद को अहसास हुआ कि सपना देखना आसान है, लेकिन उन्हें हक़ीक़त में बदलना मुश्किल है। श्यामा प्रसाद सच का सामना कर रहे थे। अंग्रेज़ी भाषा चुनौती बनकर सामने खड़ी थी। अंग्रेज़ी कमज़ोर होने की वजह से ज़िंदगी का पहला और सबसे बड़ा सपना हमेशा के लिए टूटता नज़र आ रहा था।

डॉक्टर बनने के सपने को ज़िंदा रखने के लिए श्यामा प्रसाद ने अपनी कोशिश जारी रखी। उन्होंने रटकर प्रश्नों के उत्तर परीक्षा में लिखने की ठानी। श्यामा प्रसाद ने रटना शुरू किया। लेकिन यह कोशिश नाकाम रही। चूँकि विषय जटिल थे और सिद्धांतों पर आधारित थे, इस वजह से रटना काम न आया। ज़्यादा समय तक उन्हें बातें याद नहीं रहीं। रटने का फॉर्मूला फेल होने से श्यामा प्रसाद की निराशा और भी बढ़ गयी।

जब सुंदरय्या ने ग़ौर किया कि उनका लड़का उदास और बेचैन रह रहा है, तब उनके मन में भी कई तरह की आशंकाओं ने जन्म लिया। इन आशंकाओं को

दूर करने के मक़सद से सुंदरय्या ने एक दिन श्यामा प्रसाद से पूछा, “बेटा, पढ़ाई कैसे चल रही है?”

इस सवाल के जवाब में श्यामा प्रसाद ने कोई बात छुपाने की कोशिश नहीं की और सच बयां करते हुए कहा, “पिताजी, मुझे पढ़ाई में दिक़्क़त आ रही हैं। सारी पढ़ाई अंग्रेज़ी में हो रही है। लेक्चरर जो पढ़ाते हैं, वह मुझे समझ में नहीं आ रहा है। अंग्रेज़ी के शब्द मैं याद नहीं कर पा रहा हूँ। रट मारने की कोशिश के बावजूद मुझे वे शब्द याद नहीं हो पा रहे हैं। समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूँ। मुझे लगता है कि मैं आगे पढ़ नहीं पाऊँगा। मैं डॉक्टर नहीं बन पाऊँगा।“

पिता को बेटे की परेशानी समझने में देर न लगी। सुंदरय्या ख़ुद अंग्रेज़ी की परेशानी झेल चुके थे। इंटर तक उनकी पढ़ाई तेलुगु माध्यम से हुई थी। जब वे मेडिकल कॉलेज पहुँचे, तब अचानक सब कुछ बदल गया। डॉक्टरी की सारी पढ़ाई अंग्रेज़ी में होने लगी। अंग्रेज़ी कमज़ोर होने की वजह से लेक्चररों की बातें पल्ले नहीं पड़ रही थीं। उनकी हालत ठीक वैसे ही थी जैसे कि अब उनके बेटे की है।

सुंदरय्या समस्या का हल जानते थे। बेटे को पढ़ाई-लिखाई में दिक़्क़त न हो इस मक़सद से प्राइवेट ट्यूटर रखने का फ़ैसला लिया। सुंदरय्या ने तिरुपति में सर्वोन्नत शिक्षकों के बारे में पता लगाया और वे उन्हें उनके पास ट्यूशन के लिए भेजने लगे। उन दिनों तिरुपति शहर में गोविंदप्पा सबसे चर्चित शिक्षक थे। गोविंदप्पा विज्ञान के जानकार थे। इनके पढ़ाने का अंदाज़ निराला था। ये सरल भाषा में विद्यार्थियों को विज्ञान की बारीकियाँ समझाते थे। गोविंदप्पा अनुशासनबद्ध इन्सान थे और अपने विद्यार्थियों से भी यही उम्मीद करते थे।

गोविंदप्पा की वजह से श्यामा प्रसाद की ज़िंदगी बदल गयी। जीवन में कई बदलाव हुए। गोविंदप्पा अपने घर पर विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। चूँकि वे ख़ुद एक कॉलेज में लेक्चरर थे, वे सुबह पाँच से नौ और शाम को पाँच से दस बजे तक बच्चों को अपने घर पर पढ़ा सकते थे। सुबह नौ बजे से शाम पाँच बजे तक उन्हें कॉलेज में अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभानी होती थीं।

श्यामा प्रसाद हर दिन तड़के चार बजे उठने लगे। नींद से जागने के बाद वे ट्यूशन जाने के लिए तैयार होते। उन्हें ठीक पाँच बजे गोविंदप्पा के घर पहुँचना होता। गोविंदप्पा पाँच बजे से नौ बजे तक विद्यार्थियों को बायोलॉजी, फ़िज़िक्स,

केमिस्ट्री पढ़ाया करते। गोविंदप्पा जिस किसी विषय के बारे में पढ़ाते, विद्यार्थियों से नोटबुक में उस विषय के बारे में लिखवाते भी। गोविंदप्पा का मानना था कि सिर्फ़ सुनने-भर से बच्चों को बातें याद नहीं रहतीं। बातों को हमेशा के लिए मन-मस्तिष्क में बिठाने के लिए ध्यान लगाकर लिखना भी ज़रूरी होता है।

गोविंदप्पा डायग्राम यानी रेखा-चित्र बहुत सुंदर बनाते थे। डायग्राम बनाकर विद्यार्थियों को अलग-अलग विषयों के बारे में सिखाते थे। डायग्रामों के ज़रिये पढ़ाने से विद्यार्थियों को विषय आत्मसात करने में आसानी हुई। गोविंदप्पा ने श्यामा प्रसाद और दूसरे विद्यार्थियों को जीवविज्ञान के सिद्धांतों और तथ्यों से अवगत कराना शुरू किया। सुबह नौ बजे तक गोविंदप्पा के घर पर पढ़ाई करने के बाद श्यामा प्रसाद को कॉलेज जाना होता। कॉलेज में सुबह नौ बजे से पाँच बजे तक पढ़ाई-लिखाई होती। बीच में एक से दो बजे तक भोजनावकाश होता। यही वह समय होता, जब विज्ञान के विद्यार्थियों को आपस में बातचीत करने का मौक़ा मिलता। शाम कॉलेज से छूटने के बाद श्यामा प्रसाद घर लौट आते। घर पर फ्रेश होने के बाद वे फिर सीधे ट्यूशन के लिए जाते। यहाँ फिर रात दस बजे तक पढ़ाई होती। यानी, हर दिन श्यामा प्रसाद सुबह पाँच बजे से रात बजे बजे तक पढ़ाई-लिखाई में ही लगे रहते। बीच-बीच में खान-पान के लिए कुछ समय मिलता।

श्यामा प्रसाद अच्छे से जान गये थे कि अगर वे इस तरह से दिन-रात मेहनत नहीं करेंगे, तो डॉक्टर बनने का उनका सपना टूट जाएगा। डॉक्टर बनने के लिए उन्हें इंटर की पढ़ाई मन लगकर करनी है और मेडिकल कॉलेज में दाख़िले के लिए होने वाली परीक्षा में टॉप रैंक हासिल करना है। जिस साल श्यामा प्रसाद इंटर कॉलेज में दाख़िल हुए थे, उससे एक साल पहले मेडिकल कॉलेज में दाख़िले के लिए प्रवेश-परीक्षा शुरू की गयी थी। साल 1967 तक आंध्रप्रदेश में मेडिकल कॉलेजों में दाख़िले के लिए विद्यार्थियों को प्रवेश-परीक्षा नहीं देनी पड़ती थी। इंटर की परीक्षा में मिले नंबरों के आधार पर मेडिकल कॉलेजों में विद्यार्थियों को दाख़िला दिया जाता था। लेकिन साल 1968 से प्रवेश-परीक्षा शुरू की गयी। प्रवेश-परीक्षा में मिले नंबरों के आधार पर विद्यार्थियों को रैंक दिये जाने लगे और इन्हीं रैंकों के आधार पर मेडिकल कॉलेज में दाख़िला दिया जाने लगा। मेडिकल कॉलेज में सीट हासिल करने के लिए प्रवेश-परीक्षा में शानदार रैंक लाना ज़रूरी था। चूँकि

मेडिकल सीटें कम थीं और उम्मीदवार ज़्यादा, प्रतिस्पर्धा कड़ी थी। इसी कड़ी प्रतिस्पर्धा को ध्यान में रखते हुए श्यामा प्रसाद ने पढ़ाई-लिखाई में रात-दिन एक करने शुरू किये।

इंटर कॉलेज में श्यामा प्रसाद के कई दोस्त बन गये। सभी दोस्त उन्हीं की तरह डॉक्टर बनने का सपना देख रहे थे। इन दोस्तों में कइयों के पिता डॉक्टर नहीं थे, लेकिन अभिभावक यही चाह रहे थे कि उनका लड़का डॉक्टर बने और समाज में ख़ूब शोहरत पाये। रवि कुमार, सुधाकर बाबू और अरमुगम से श्यामा प्रसाद की दोस्ती तगड़ी थी। ये तीनों भी डॉक्टर बनने का सपना लेकर कॉलेज में दाख़िल हुए थे। लेकिन ये तीनों भी उसी समस्या से परेशान थे, जिससे श्यामा प्रसाद जूझ रहे थे। अंग्रेज़ी कमज़ोर होने की वजह से ये तीनों भी फ़िज़िक्स और केमिस्ट्री के लेक्चररों की बातें समझ नहीं पा रहे थे। ये चारों मित्र आपस में अपना दुख साझा करते थे। परेशानी साझा करने से वह कम होती है, चारों दोस्त यह बात अच्छे से जानते थे। ये चारों यह भी मानते थे कि सुख बाँटने से बढ़ता है। यही वजह थी कि सुख हो, या दुख, ख़ुशी हो या परेशानी, ये लोग आपस में साझा करते थे। एक जैसी सोच रखने वाले दोस्त मिलने की वजह से श्यामा प्रसाद को कॉलेज के तनावपूर्ण दिनों में राहत मिली थी।

श्री गोविंदराजा आर्ट्स कॉलेज के शिक्षक अनुभवी और प्रभावी थे। इसका फ़ायदा भी श्यामा प्रसाद और अन्य सभी विद्यार्थियों को हुआ। चंद्रशेखर राव जूलॉजी पढ़ाया करते थे। उन्होंने सबसे पहले सभी विद्यार्थियों में जीव-जंतुओं और पौधों-पेड़ों के बारे में दिलचस्पी पैदा की। उनकी एक बात को श्यामा प्रसाद ने मन में गाँठ बाँधकर बैठा लिया। चंद्रशेखर राव ने कहा था, "इन्सान को होने वाली अलग-अलग बीमारियों पर नियंत्रण पाने और इन बीमारियों से बचने के उपाय जानने के लिए जूलॉजी का अध्ययन ज़रूरी है। बीमारियों को फैलाने वाले कीटाणुओं और कीटों का ज्ञान जूलॉजी की पढ़ाई से ही संभव है।"

कॉलेज में रेड्डी मास्टर बॉटनी यानी वनस्पति-विज्ञान पढ़ाया करते थे। रेड्डी मास्टर ने पहले दिन ही विद्यार्थियों को पौधों के बारे में रोचक जानकारियाँ देकर उनमें विषय के प्रति प्यार पैदा करने की कोशिश की थी। मास्टर ने यह समझाया था कि इन्सानों के लिए पौधे अत्यधिक महत्वपूर्ण, लाभदायक और हितकारी होते हैं।

पेड़-पौधों के बिना इन्सानी जीवन की कल्पना करना संभव नहीं है। पेड़-पौधे सूर्य के प्रकाश से प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया द्वारा अपना भोजन बनाते हैं और मनुष्यों के लिए जीवनदायिनी ऑक्सीजन तैयार करते हैं। एक पेड़ एक साल में औसत इक्कीस किलोग्राम कार्बन डाइऑक्साइड अपने अंदर सोखता है और दिन में इतनी ऑक्सीजन देता है कि चार आदमी जिंदा रह सकें।

श्यामा प्रसाद को बॉटनी और जूलॉजी में ज़्यादा दिक़्क़त नहीं हुई। केमिस्ट्री और फ़िज़िक्स उनके लिए हमेशा चुनौती बने रहे।

इन दोनों विषयों की परीक्षा पास करने के लिए श्यामा प्रसाद ने प्रश्नों के उत्तरों को तेलुगु भाषा में लिखकर याद करना शुरू किया। विज्ञान के इन दोनों विषयों की शब्दावली को याद करने के लिए भी श्यामा प्रसाद ने यही तरकीब अपनायी। लेकिन उनके प्रयोग कामयाब नहीं हुए।

फ़िज़िक्स के लेक्चरर लक्ष्मीनारायण श्यामा प्रसाद के पिता के क़रीबी थे। सुंदरय्या की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। लोग उनका बहुत सम्मान करते थे। सुंदरय्या न सिर्फ़ मेडिकल विद्यार्थियों के गुरु थे, बल्कि अस्पताल में लोगों का इलाज भी करते थे। हड्डी-रोग विशेषज्ञ होने की वजह से हड्डियों और माँसपेशियों से जुड़ी बीमारियों का इलाज करवाने के लिए दूर-दूर से लोग सुंदरय्या के पास आते थे। वे एक बेहतरीन सर्जन थे। एक बार जब श्यामा प्रसाद फ़िज़िक्स की एक परीक्षा में फेल हो गये, तब लेक्चरर लक्ष्मीनारायण उत्तर-पुस्तिका लेकर सुंदरय्या के पास पहुँचे। सुंदरय्या से लक्ष्मीनारायण ने कहा, "डॉक्टर साहब, आपका लड़का पढ़ाई में बहुत कमज़ोर है। मैंने बहुत कोशिश की है। यह फ़िज़िक्स की हर परीक्षा में फेल हो रहा है। मुझे यह बड़े दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि आपका लड़का डॉक्टर नहीं बन सकता है।"

इन बातों का सुंदरय्या पर कोई ख़ास असर नहीं हुआ। वे जानते थे कि अंग्रेज़ी पर पकड़ मजबूत न होने की वजह से उनके बेटे को फ़िज़िक्स और केमिस्ट्री में कम नंबर मिल रहे हैं।

सुंदरय्या ने फ़िज़िक्स के लेक्चरर से कहा, "मैं अपने बेटे के बारे में अच्छे से जानता हूँ। अभी तो पढ़ाई की शुरुआत है। दो साल बाक़ी हैं। वह इम्प्रूव करेगा। आप अपनी कोशिश करते रहिएगा, वह अपनी कोशिश करेगा। हाँ, आप मेरी एक

बात याद रखना। श्याम मेहनती है। उस पर डॉक्टर बनने का जुनून सवार है। वह डॉक्टर ज़रूर बनेगा।"

जब पिता और फ़िज़िक्स के लेक्चरर के बीच इस संवाद के बारे में श्यामा प्रसाद को पता चला, तब उन्होंने संकल्प ले लिया कि वे अपने पिता के विश्वास को नहीं तोड़ेंगे और डॉक्टर बनकर ही आराम करेंगे।

श्यामा प्रसाद ने अपना सारा ध्यान कॉलेज की पाठ्य-पुस्तकों पर लगाना शुरू किया। साहित्य के अपने प्रेम को भुला दिया। फ़िल्में देखना कम कर दिया। फ़िज़िक्स और केमिस्ट्री के सिद्धांतों को आत्मसात करने के लिए जी-जान लगा दिया। केमिस्ट्री के लेक्चरर भास्कर नायुडु ने श्यामा प्रसाद की बहुत मदद की। भास्कर नायुडु ने श्यामा प्रसाद को समझाया कि फ़िज़िक्स और केमिस्ट्री की परीक्षाओं में पास होने के लिए रटने के बजाय विषय को लिखकर समझने की कोशिश करना फ़ायदेमंद साबित होता है। फ़िज़िक्स और केमिस्ट्री की परीक्षाओं में थ्योरी के साथ न्यूमेरिकल के प्रश्न भी आते हैं। इन्हें हल करने के लिए फॉर्मूले के साथ रिएक्शन (समीकरण) याद होने चाहिए। लिखकर समझने से परीक्षा के समय भूलने का ख़तरा नहीं रहता है। ऐसा करने से न्यूमेरिकल को भी हल करने में मदद मिलती है। भास्कर नायुडु ने प्रयोगशाला में अलग-अलग प्रयोग कर दिखाते हुए भी श्यामा प्रसाद और दूसरे विद्यार्थियों के लिए केमिस्ट्री को आसान बनाया।

धीरे-धीरे श्यामा प्रसाद का विश्वास बढ़ता गया। कॉलेज की पढ़ाई के साथ-साथ गोविंदप्पा मास्टर के यहाँ जाकर घंटों पढ़ने-लिखने का फ़ायदा मिलने लगा। लेकिन हिंदी की परेशानी दूर नहीं हुई। श्यामा प्रसाद ने इंटर में ज़्यादा नंबर पाने के मक़सद से द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी को चुना था। उन दिनों विद्यार्थियों में यह धारणा बन गयी थी कि तेलुगु उत्तर-पुस्तिकाओं की जाँच कड़ाई से की जाती है। हिंदी उत्तर-पुस्तिकाओं की जाँच कड़ाई से नहीं होती। हमेशा तेलुगु की तुलना में हिंदी के विद्यार्थियों को ज़्यादा नंबर मिलते हैं। द्वितीय भाषा की परीक्षा में ज़्यादा नंबर पाने के मक़सद से श्यामा प्रसाद ने हिंदी को चुना था। लेकिन हिंदी मोल ली गयी आफ़त बन गयी। लाख कोशिश के बावजूद श्यामा प्रसाद अपनी हिंदी नहीं सुधार पाये। जब उन्हें यक़ीन हो गया कि वे हिंदी का बेड़ा पार नहीं लगा पाएँगे,

तब उन्होंने शैक्षणिक वर्ष के बीच में हिंदी को त्याग कर तेलुगु को अपनी द्वितीय भाषा बना लिया।

पहले साल की पढ़ाई के दौरान क़रीब छह महीने तक श्यामा प्रसाद को तकलीफ़ हुई, लेकिन इसके बाद उनकी गाड़ी पटरी पर आ गयी। वे हर परीक्षा में पास होने लगे। धीरे-धीरे परीक्षाओं में उनका प्रदर्शन बेहतर होता गया। कॉलेज में दाख़िले के एक साल बाद वे शीर्ष तीन विद्यार्थियों में जगह बनाने में कामयाब हुए। यह कामयाबी मेहनत और लगन का नतीजा थी।

जब श्यामा प्रसाद कॉलेज में दाख़िल हुए, तब सभी शिक्षकों को लग रहा था कि वे कमज़ोर विद्यार्थी हैं। इतने कमज़ोर कि वे परीक्षा में पास नहीं हो सकते हैं। लेकिन श्यामा प्रसाद ने अपने दृढ़ संकल्प और अपने अथक प्रयासों से शिक्षकों की धारणा को बदल कर रख दिया।

जब इंटर फाइनल ईयर की परीक्षाओं के नतीजे आये, तब उनमें भी श्यामा प्रसाद की तपस्या नज़र आयी। कॉलेज में श्यामा प्रसाद तीसरे नंबर पर थे। गोविंदराजा आर्ट्स कॉलेज में बीपीसी कोर्स के पहले बैच के 200 विद्यार्थियों में तीसरा रैंक हासिल करना बड़ी कामयाबी थी।

इस कामयाबी से श्यामा प्रसाद ख़ुश थे, लेकिन उनके पिता सुंदरय्या की ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। इंटर के नतीजों से सुंदरय्या ने महसूस किया कि उनका लड़का मेडिकल कॉलेज में सीट से बस एक क़दम दूर है।

मेडिकल कॉलेज में सीट पक्की करने के लिए श्यामा प्रसाद को अब प्रवेश-परीक्षा में अच्छा रैंक लाना था। इसी वजह से समय गँवाये बग़ैर वे प्रवेश-परीक्षा की तैयारी में जुट गये।

लेकिन प्रवेश-परीक्षा में देरी होने लगी। सरकार यह फ़ैसला नहीं कर पा रही थी कि मेडिकल कॉलेजों में दाख़िले के लिए प्रवेश-परीक्षा रखी जाए या फिर इंटर की परीक्षा में मिले नंबरों के आधार पर मेडिकल कॉलेजों में विद्यार्थियों को दाख़िला दिया जाए। पिछले साल ही पहली बार राज्य सरकार ने प्रवेश-परीक्षा शुरू की थी। कई लोगों ने प्रवेश-परीक्षा का विरोध किया था। इन लोगों का कहना था कि इंटर परीक्षा में मिले नंबरों के आधार पर ही मेडिकल कॉलेज में दाख़िले की योग्यता तय की जानी चाहिए। जबकि कई शिक्षाविदों का कहना था कि इंटर की परीक्षाओं में

धांधलियाँ होती हैं और कई कॉलेजों में विद्यार्थियों से नकल करवायी जाती है। इसी वजह से मेडिकल कॉलेज में योग्य विद्यार्थियों के दाख़िले के लिए अलग से प्रवेश-परीक्षा होनी चाहिए। प्रवेश-परीक्षा के तरीक़े को लेकर भी विरोध था। पिछले साल जो परीक्षा हुई थी, उसमें सभी विषयों - बायोलॉजी, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री और अंग्रेज़ी भाषा से जुड़े अलग-अलग प्रश्न एक ही प्रश्नावली में पूछे गये थे। सभी विषयों के लिए एक ही परीक्षा हुई थी। कई अभिभावक चाहते थे कि अगल-अलग विषयों के लिए अलग-अलग परीक्षा ली जाए। राज्य सरकार इन्हीं माँगों पर विचार कर थी और अलग-अलग विद्वानों के अलग-अलग मत होने की वजह से निर्णय नहीं ले ला पा रही थी। फ़ैसला लेने में देरी की वजह से कई विद्यार्थी असमंजस में पड़ गये थे। इंटर के परिणाम घोषित होने की वजह से डिग्री कॉलेजों में भर्ती प्रक्रिया शुरू हो गयी थी। मेडिकल कॉलेज में दाख़िला लेने के इच्छुक कई विद्यार्थी डिग्री कॉलेज में दाख़िला लेने लगे थे। सुंदरय्या ने श्यामा प्रसाद को भी डिग्री कॉलेज में दाख़िला लेने की सलाह दी।

मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश की प्रक्रिया पर सरकार का फ़ैसला आने तक श्यामा प्रसाद ने डिग्री कॉलेज में पढ़ने का मन बना लिया। उन्होंने श्री वेंकटेश्वर आर्ट्स कॉलेज में दाख़िला ले लिया और बीएससी (बी.जेड.सी.) कोर्स की पढ़ाई करने लगे। बॉटनी, जूलॉजी और केमिस्ट्री की उच्च स्तरीय पढ़ाई शुरू हुई। इसके कुछ महीनों बाद ही यह घोषणा हुई कि आंध्रप्रदेश के मेडिकल कॉलेजों के लिए विद्यार्थियों का चयन प्रवेश-परीक्षा के आधार पर ही किया जाएगा। श्यामा प्रसाद ने प्रवेश-परीक्षा की तैयारी शुरू कर दी।

तैयारी तगड़ी होने की वजह से श्यामा प्रसाद ने परीक्षा अच्छे से दी। उन दिनों पिछड़ी जाति के विद्यार्थियों की उत्तर-पुस्तिकाओं की जाँच अलग से की जाती थी। जब जाँच पूरी हुई और नतीजे घोषित हुए, तब सुंदरय्या की ख़ुशी सातवें आसमान पर पहुँच गयी। और ऐसा हो भी क्यों न। श्यामा प्रसाद ने अव्वल नंबर हासिल किये थे। पिछड़ी जाति के विद्यार्थियों में उनका रैंक पहला था, यानी वे शीर्ष पर थे। मेडिकल कॉलेज में श्यामा प्रसाद की सीट पक्की हो गयी। इसी से यह भी तय हो गया कि लोगों का इलाज करते हुए लाखों लोगों को अपना मुरीद बनाने वाले डॉक्टर सुंदरय्या का लड़का भी डॉक्टर ही बनेगा। पिता ने बेटे की कामयाबी का जश्न

मानना शुरू किया। मिठाइयाँ मँगवायी गयीं और सभी रिश्तेदारों, दोस्तों, परिचितों के यहाँ भिजवायी गयीं। सुंदरय्या इस बात से भी ख़ुश थे कि उनका बड़ा बेटा दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत बना है। श्यामा प्रसाद से प्रेरणा लेकर उनके भाई-बहन भी कामयाबी की राह पकड़ने को लालायित हैं।

चूँकि श्यामा प्रसाद को शानदार रैंक मिली थी, वे मनचाहे मेडिकल कॉलेज में दाख़िला ले सकते थे। मेडिकल कॉलेज में दाख़िले के बारे में श्यामा प्रसाद ने पिता से सलाह ली। सुंदरय्या ने अपने बेटे को तिरुपति के श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में दाख़िला लेने का सुझाव दिया। पिता की सलाह मानते हुए श्यामा प्रसाद ने इस प्रतिष्ठित मेडिकल कॉलेज में दाख़िला ले लिया।

श्री गोविंदराजा स्वामी आर्ट्स कॉलेज के पहले बैच के विद्यार्थियों ने नया इतिहास रचा। बायोलॉजी, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री (बीपीसी) बैच के 200 विद्यार्थियों में से क़रीब 150 विद्यार्थी मेडिकल कॉलेज में सीट पाने में कामयाब हुए। इससे पहले आंध्रप्रदेश में किसी एक कॉलेज से इतने ज़्यादा विद्यार्थियों ने एमबीबीएस सीट हासिल नहीं की थी। श्री गोविंदराजा स्वामी आर्ट्स कॉलेज के अस्तित्व में आने से पहले विजयवाड़ा के आंध्र लोयोला कॉलेज और स्टेला मैरिस कॉलेज के विद्यार्थी मेडिकल कॉलेजों में सबसे ज़्यादा सीटें हासिल करते थे। अभिभावकाओं में यह धारणा बन गयी थी कि जो विद्यार्थी इंटरमीडिएट कोर्स के लिए आंध्र लोयोला कॉलेज में दाख़िला लेने में कामयाब हो जाता है, मेडिकल कॉलेज में उसकी सीट पक्की हो जाती है। लोयोला कॉलेज में सीट हासिल करना प्रतिष्ठा का विषय माना जाता था। यही कॉलेज आंध्रप्रदेश का नंबर वन कॉलेज था। लेकिन श्री गोविंदराजा स्वामी आर्ट्स कॉलेज ने लोयोला कॉलेज के सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये। उन दिनों विजयवाड़ा और गुंटूर शहरों के विद्यार्थी मेडिकल कॉलेजों में सबसे ज़्यादा सीटें हासिल किया करते थे। लेकिन साल 1971 में तिरुपति के विद्यार्थियों ने बाज़ी मारी।

श्यामा प्रसाद के कई दोस्तों को भी मेडिकल कॉलेज में सीट मिली। किसी ने कर्नूल मेडिकल कॉलेज में दाख़िला लिया, तो किसी ने गुंटूर मेडिकल कॉलेज में। आंध्र में कोई ऐसा मेडिकल कॉलेज नहीं था, जहाँ श्री गोविंदराजा स्वामी आर्ट्स कॉलेज के विद्यार्थियों को सीट न मिली हो।

लेकिन श्यामा प्रसाद के एक दोस्त ने क़ाबिल होने के बावजूद मेडिकल

कॉलेज में सीट हासिल नहीं की। यह दोस्त पढ़ाई के मामले में तेज़ था। सभी सहपाठी मानते थे कि इस साथी विद्यार्थी को मेडिकल कॉलेज में सीट ज़रूर मिलेगी। लड़के को भी यक़ीन था कि उसे मेडिकल कॉलेज में दाख़िला आसानी से मिल जाएगा। लेकिन ग़रीबी की वजह से इस लड़के ने मेडिकल कॉलेज में दाख़िला न लेने का फ़ैसला कर लिया था। उसे लगता था कि मेडिसिन की पढ़ाई करने पर ख़र्च बहुत होगा और इससे उसके ग़रीब माँ-बाप पर बोझ पड़ेगा। यह विद्यार्थी जानता था कि एमबीबीएस की डिग्री हासिल करने में पाँच साल से ज़्यादा का समय लगेगा। उसकी इच्छा थी कि वह जल्द से जल्द कोई डिग्री हासिल करे और नौकरी पर लग जाए, ताकि माता-पिता को राहत मिले। इस विद्यार्थी ने जान-बूझकर प्रवेश-परीक्षा में कई प्रश्नों के उत्तर नहीं दिये। इस वजह से उसे कम नंबर मिले। वह मेडिकल कॉलेज में दाख़िले का हक़दार नहीं बन पाया। श्यामा प्रसाद का यह दोस्त यही चाहता था। इंटर की परीक्षा में मिले नंबरों के आधार पर उसे बी. कॉम कोर्स में सीट मिली। इससे वह बहुत ख़ुश हुआ। उसे लगा कि तीन साल की पढ़ाई के बाद उसे डिग्री मिल जाएगी और डिग्री मिलते ही वह नौकरी पर लग जाएगा। लेकिन इस बात से श्यामा प्रसाद और दूसरे विद्यार्थियों को पीड़ा हुई। सभी चाहते थे कि यह दोस्त भी उनके साथ डॉक्टरी की पढ़ाई करे। वह इसके लिए सबसे क़ाबिल विद्यार्थी था। लेकिन माता-पिता की सेवा के लिए उसने मेडिकल कॉलेज की सीट को त्याग दिया। इस त्याग से कई विद्यार्थियों का दिल पसीज दिया। श्यामा प्रसाद को इस बात का अहसास हुआ कि ग़रीबी सपने पूरा करने में अड़चनें पैदा करती है। ग़रीबी क़ाबिलियत होने के बवाजूद इन्सान को दूसरों से पछाड़ देती है। श्यामा प्रसाद को अपने इस दोस्त के प्रति बहुत सहानुभूति थी।

लेकिन ज़िंदगी में आगे बढ़ने के लिए इन्सान को कई बातें भूलनी पड़ती हैं। कई बातों पर से अपना ध्यान हटाना पड़ता है। कई बातों को नज़रअंदाज़ करना पड़ता है। श्यामा प्रसाद को भी अहसास हुआ कि उन्हें अपने सपने पूरे करने के लिए बीती बातों को भूलना होगा। आगे की सुध लेनी होगी। इसी वजह से श्यामा प्रसाद ने अपने सपनों को साकार करने की दिशा में क़दम बढ़ाने शुरू किये।

अध्याय 6

राजनीतिक उथल-पुथल और सामाजिक बदलावों के बीच हुई डॉक्टरी पढ़ाई

पिता सुंदरय्या से भी ज़्यादा लोकप्रिय और क़ाबिल डॉक्टर बनने का मजबूत इरादा लेकर श्यामा प्रसाद ने तिरुपति के श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में एमबीबीएस कोर्स की पढ़ाई शुरू की। उधर पिता और बड़े भाई से प्रभावित होकर गोपी कृष्ण ने भी डॉक्टर बनने की ठान ली। दसवीं पास करने के बाद गोपी कृष्णा ने श्री वेंकटेश्वर जूनियर कॉलेज में दाख़िला ले लिया और बीपीसी ग्रुप में शामिल हुए।

एमबीबीएस कोर्स की अवधि साढ़े चार साल होती है। इसके बाद एक साल की हाउज़ सर्जनशिप करनी पड़ती है। एमबीबीएस चिकित्सा-विज्ञान का एक ऐसा कोर्स है, जिसके दौरान विद्यार्थी इन्सानी जिस्म में होने वाली बीमारियों और उनके इलाज के बारे में सीखते हैं। कोर्स के दौरान विद्यार्थी इन्सानी शरीर की संरचना और उसके काम करने के तरीक़े के बारे में जानकारी हासिल करते हैं। इस कोर्स को इस तरह से तैयार किया गया है कि विद्यार्थी इन्सानी शरीर के बारे में सब कुछ सीखते हैं। गर्भधारण से लेकर बच्चे का जन्म होने और उसके व्यस्क होने और फिर बूढ़ा होने तक के बारे में सभी जानकारी हासिल करते हैं। कोर्स के दौरान मेडिकल विद्यार्थियों को इन्सान के जन्म से लेकर मृत्यु तक की सारी प्रक्रिया के बारे में बताया जाता है।

सही गर्भधारण के लिए कुछ काम बेहद ज़रूरी होते हैं। गर्भधारण के बाद भी कई सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं। गर्भधारण के बाद गर्भवती महिला की सही

देखभाल की ज़रूरत होती है। इन्सानी जीवन के दौरान बीमारियों से बचने के लिए कई काम करने पड़ते हैं। किसी तरह की चोट लग जाने या किसी बीमारी का शिकार होने पर सही इलाज की ज़रूरत होती है, ताकि व्यक्ति का शरीर फिर से सही ढंग से काम कर सके। इन्सान को परेशान कर रही बीमारी का पता लगाने और उसका इलाज करने का काम डॉक्टर करते हैं। एमबीबीएस की पढ़ाई के दौरान शिक्षक प्रेक्टिकल पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं, ताकि विद्यार्थी किसी भी बीमारी और उसके लक्षण को सही ढंग से समझ सकें। इन्सान को होने वाली अलग-अलग बीमारियों का पता लगाने और बीमारी को दूर करने में सक्षम बनाने का काम एमबीबीएस कोर्स के दौरान किया जाता है।

उन दिनों श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज के एमबीबीएस पाठ्यक्रम में हर साल 100 विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता था। साल 1971 के बैच के इन्हीं 100 विद्यार्थियों में जगह पाकर श्यामा प्रसाद बहुत ख़ुश थे।

एमबीबीएस कोर्स के पहले साल मेडिकल विद्यार्थियों को बायोलॉजी, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री दुबारा से पढ़ाया गया। विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी भाषा भी नये सिरे से सिखायी जाने लगी। ऐसा करने के पीछे एक बड़ा मक़सद था। मेडिकल कॉलेजों में कई विद्यार्थी ऐसे थे, जो तेलुगु माध्यम से पढ़कर आये थे। इन्हें बायोलॉजी, फ़िज़िक्स और केमिस्ट्री के बारे में जानकारी तेलुगु में थी। लेकिन मेडिकल कॉलेज में अब इन्हें आगे की सारी पढ़ाई अंग्रेज़ी में करनी थी। सारी परीक्षाएँ अंग्रेज़ी में देनी थीं। इसी वजह से सभी विद्यार्थियों को डॉक्टरी पढ़ाई के क़ाबिल बनाने के मक़सद से विशेष फाउंडेशन कोर्स रखा गया। विद्यार्थियों को शिक्षण-प्रशिक्षण के दौरान कहीं भी अंग्रेज़ी भाषा की अड़चन न आए, इसके लिए विशेष फाउंडेशन कोर्स में अंग्रेज़ी की शिक्षा पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया। फाउंडेशन कोर्स के तहत मेडिकल विद्यार्थियों को बायोलॉजी, फ़िज़िक्स और केमिस्ट्री के बारे में बताया गया। अंग्रेज़ी भाषा पर सभी विद्यार्थियों की पकड़ मजबूत करने की कोशिश की गयी। विशेष फाउंडेशन कोर्स पूरा होने बाद एमबीबीएस कोर्स की पढ़ाई शुरू हुई।

प्रवेश-परीक्षा देर से होने की वजह से 1971 बैच के विद्यार्थियों के लिए एमबीबीएस कोर्स अगले साल अप्रैल माह में शुरू हुआ। आमतौर पर आंध्रप्रदेश में मार्च और अप्रैल में इंटर की परीक्षाएँ पूरी हो जाती हैं। परीक्षा-परिणाम मई में घोषित

हो जाते हैं। जब प्रवेश-परीक्षा नहीं थी, तब मेडिकल कॉलेजों में दाख़िले की प्रक्रिया जून में शुरू हो जाती थी। अगस्त में एमबीबीएस कोर्स की पढ़ाई शुरू करवा दी जाती थी। 1970 में जब पहली बार प्रवेश-परीक्षा रखी गयी, तब भी कोर्स अगस्त में शुरू हो गया था। लेकिन 1971 में काफ़ी देरी हुई। दिसंबर में प्रवेश-परीक्षा हुई।

विशेष फाउंडेशन कोर्स जून 1972 तक चलता रहा। इसी दौरान तटीय आंध्र और रायलसीमा के लोगों ने 'जय आंध्र आंदोलन' शुरू कर दिया। इस आंदोलन ने हिंसक रूप ले लिया। जगह-जगह हिंसक वारदातें होने लगीं। विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी होने की वजह से आंदोलन का असर हर तरफ़ दिखाई देने लगा था। आंध्र और रायलसीमा में स्कूल-कॉलेज बंद करवा दिये गये। पढ़ाई-लिखाई ठप हो गयी। हर दिन शिक्षा-संस्थानों में विरोध प्रदर्शन होने लगे। सरकार के ख़िलाफ़ आवाज़ें बुलंद होने लगीं। बार-बार 'बंद' का आह्वान किये जाने से सामान्य जन-जीवन बुरी तरह से प्रभावित होने लगा।

आंध्र और रायलसीमा के लोग अलग 'आंध्र' राज्य की माँग करने लगे। 1956 में जब 'आंध्रप्रदेश' राज्य अस्तित्व में आया था, तभी से अलग-अलग क्षेत्रों के लोग अलग-अलग कारणों से आंदोलन करते आये थे। तेलंगाना के लोग शुरू से ही अलग राज्य की माँग कर रहे थे। ये लोग तेलंगाना को आंध्र और रायलसीमा में मिलाकर एक नया राज्य बनाये जाने के सख़्त ख़िलाफ़ थे। तेलंगाना के लोगों का कहना था कि उनकी संस्कृति, बोली, रीति-रिवाज आंध्र और रायलसीमा के लोगों से अलग हैं और इसी वजह से तेलंगाना को अलग राज्य बनाया जाना चाहिए।

तेलंगाना का इतिहास बेहद रोचक है। 1719 से लेकर सितंबर 1948 तक तेलंगाना हैदराबाद रियासत का हिस्सा था। निज़ामों के शासन से पहले तेलंगाना में सातवाहन, काकतीय, चालुक्य, मुग़ल, कुतुबशाही राजवंशों के राजा-महाराजों का शासन था। आसफ़ जाही राजवंश के निज़ामों ने हैदराबाद रियासत पर 1719 से 1948 तक शासन किया। निज़ाम शासित हैदराबाद रियासत में तेलंगाना के अलावा कुछ मराठी भाषी और कन्नड़ भाषी इलाक़े भी थे। जिस क्षेत्र में तेलुगुभाषी लोग बहुसंख्यक थे, उसे तेलंगाना कहा जाता था। पूरे हैदराबाद रियासत में हिंदू बहुसंख्यक थे, लेकिन सालों तक शासक मुसलमान रहे।

15 अगस्त, 1947 को भारत को अंग्रेज़ी हुकूमत से आज़ादी मिल गयी। अलग-अलग रियासतें, रजवाड़े भारत में विलीन होने लगे। जैसे ही अंग्रेज़ों ने आज़ाद करने की प्रक्रिया शुरू की थी, रियासतों के भारत में शामिल होने, न होने को लेकर उठापटक शुरू हो गयी थी। ज़्यादातर रियासतों ने भारत में विलीन होने की घोषणा कर दी। जो रियासतें विलीन होने को राज़ी नहीं हो रही थीं, उन्हें भारत में विलीन करवाने की ज़िम्मेदारी सरदार वल्लभभाई पटेल को सौंपी गयी। 6 मई को वल्लभभाई पटेल ने रियासतों, रजवाड़ों के विलय का काम शुरू किया। उस समय भारत में 562 राजाओं-नवाबों की रियासतें थीं। आज़ादी के समय इनमें से लगभग सभी रियासतें भारत में विलीन होने को राज़ी हो गयीं, लेकिन त्रावणकोर, भोपाल, जूनागढ़ और हैदराबाद की रियासतों ने भारत में विलीन होने से इन्कार कर दिया। इन चार रियासतों में सबसे बड़ी रियासत थी हैदराबाद।

आज़ादी से ठीक एक दिन पहले, यानी 14 अगस्त को राजा ने त्रावणकोर को भारत में विलीन करने का एलान कर दिया। यह एलान रियासत की जनता की माँग पर किया गया था। अगर राजा विलीन नहीं करवाता, तो जनता उसके ख़िलाफ़ आंदोलन शुरू कर देती। जनमत संग्रह के बाद जूनागढ़ का भारत में विलय हो गया। 20 फरवरी 1948 को हुए जनमत संग्रह के दौरान 2,01,457 पंजीकृत मतदाताओं में से 1,90,870 लोगों ने भारत में विलीन के पक्ष में वोट दिया। केवल 91 लोगों ने पाकिस्तान में विलय का समर्थन किया। 7 नवंबर 1947 को जूनागढ़ भारत का हिस्सा बन गया। जूनागढ़ के विलय के बाद तीन रजवाड़े ऐसे थे, जिनका मामला अटका था। ये तीन रजवाड़े थे—भोपाल, कश्मीर और हैदराबाद। हैदराबाद 82 हज़ार स्क्वायर मील का सबसे बड़ा रजवाड़ा था और इसकी आबादी एक करोड़ साठ लाख के आसपास थी। हैदराबाद रियासत में क़रीब 85 फ़ीसदी लोग हिंदू थे, लेकिन शासक मुसलमान था। भोपाल में भी मामला ऐसा ही था। कश्मीर में परिस्थिति अलग थी और यहाँ राजा हिंदू था और तीन-चौथाई लोग मुसलमान थे।

आज़ादी के समय हैदराबाद रियासत की जनता चाहती थी कि भारत में विलय हो जाए। लेकिन निज़ाम ऐसा नहीं चाहता था। वह हैदराबाद को एक अलग आज़ाद मुल्क बनाना चाहता था। निज़ाम पर रज़ाकारों का दबाव था। रज़ाकार निज़ाम की

निजी सेना थी। इस सेना का मुखिया क़ासिम रिज़वी कट्टरपंथी था। वह चाहता था कि अंग्रेज़ों के भारत से चले जाने के बाद हैदराबाद एक मुस्लिम राष्ट्र बने। क़ासिम रिज़वी पर कई हिंदुओं को ज़बरन मुसलमान बनाने का आरोप था। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि रज़ाकारों की मदद से रिज़वी ने हिंदुओं का धर्मानंतरण करवाने के मक़सद से एक अभियान चलाया था। जो हिंदू धर्म बदलने को राज़ी नहीं होते थे, उन पर ज़ुल्म किया जाता। जब निज़ाम ने हैदराबाद को भारत में विलीन करने से इन्कार कर दिया, तब रियासत में निज़ाम के ख़िलाफ़ जन-आंदोलन शुरू हो गया। इस आंदोलन को कुचलने के मक़सद से रज़ाकारों ने लोगों पर अत्याचार करना शुरू किया। लोगों ने भारत सरकार से मदद की गुहार लगायी। तत्कालीन गृह मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने सेना भेजकर रज़ाकारों और निज़ाम को आत्मसमर्पण करने पर मजबूर किया। 17 सितम्बर 1948 को हैदराबाद रियासत भारत में विलीन हो गयी। भारत सरकार ने वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी मुल्लथ कडिंगी वेल्लोडि को हैदराबाद रियासत का मुख्यमंत्री नियुक्त किया। इसके कुछ महीनों बाद लोगों ने चुनाव करवाने और जनप्रतिनिधियों से सरकार चलवाने की माँग शुरू की। जब इस माँग को लेकर आंदोलन तेज़ हो गया, तब भारत सरकार ने 1952 में हैदराबाद रियासत में नयी सरकार के गठन के लिए चुनाव करवाये। इसी साल भारत में पहली बार आम चुनाव हुए। लोकसभा का चुनाव भी हुआ। हैदराबाद रियासत में हुए चुनाव में कांग्रेस पार्टी को बहुमत मिला और उसकी सरकार बनी। बुरुगुला रामकृष्ण राव हैदराबाद रियासत के पहले निर्वाचित मुख्यमंत्री बने। उधर, मद्रास रियासत में तेलुगुभाषी लोगों ने अलग राज्य की माँग करते हुए आंदोलन शुरू कर दिया था। प्रमुख स्वतंत्रता-सेनानी और गांधीवादी नेता पोट्टि श्रीरामुलु ने तेलुगुभाषियों के लिए अलग राज्य 'आंध्र' की माँग के समर्थन में अनशन शुरू कर दिया। अनशन के 58वें दिन, यानी 15 दिसंबर 1952 को श्रीरामुलु की मौत हो गयी। श्रीरामुलु के बलिदान की वजह से तेलुगुभाषियों का केंद्र के ख़िलाफ़ ग़ुस्सा परवान चढ़ गया। हर तरफ़ तेलुगुभाषी लोग सरकार के ख़िलाफ़ आंदोलन करने लगे। श्रीरामुलु की मौत के चार दिन बाद यानी 15 दिसम्बर, 1952 के दिन सरकार को तेलुगुभाषियों के लिए अलग 'आंध्र' राज्य के गठन की घोषणा करनी पड़ी। 1 अक्टूबर 1953 को आंध्र राज्य का आधिकारिक तौर पर गठन हुआ। रायलसीमा का शहर कर्नूल नये राज्य की राजधानी बना।

इसके बाद भाषायी आधार पर नये राज्य बनाने की माँग ज़ोर पकड़ने लगी। आंध्र राज्य के लोग तेलंगाना को भी आंध्र में शामिल करने की माँग करने लगे। इन लोगों का कहना था कि सभी तेलुगुभाषियों के लिए अपना एक राज्य होना चाहिए। जबकि तेलंगाना के लोग इस माँग के ख़िलाफ़ थे। इनका कहना था कि तेलंगाना की अपनी अलग संस्कृति है, अपनी अलग बोली है। अपने अलग रीति-रिवाज हैं। इसी वजह से उसे अलग राज्य के रूप में ही रखा जाना चाहिए। इसी बीच नये राज्यों की माँग को ध्यान में रखते हुए प्रधानमंत्री नेहरू ने राज्य पुनर्गठन आयोग बनाया। फज़ल अली इस आयोग के अध्यक्ष बने। इस आयोग ने कई सिफ़ारिशें कीं। आयोग ने केंद्र सरकार को सौंपी अपनी रिपोर्ट में तेलंगाना को एक अलग राज्य बनाये रखने की सिफ़ारिश की। लेकिन नेहरू ने तेलुगु भाषा को आधार बनाया और आंध्र और तेलंगाना को मिलाकर 'आंध्रप्रदेश' राज्य बनाने का फ़ैसला लिया। 1 नवंबर 1956 को आंध्रप्रदेश राज्य अस्तित्व में आया। इसी से हैदराबाद राज्य का अस्तित्व ख़त्म हो गया। हैदराबाद शहर आंध्रप्रदेश की राजधानी बना। लेकिन तेलंगाना के लोग विलय को स्वीकार नहीं कर पाये। भारत सरकार ने आंध्र और तेलंगाना क्षेत्र के लोगों के बीच मनमुटाव न रहे, इस मक़सद से दोनों क्षेत्रों के नेताओं के बीच एक समझौता करवाया, जिसे 'जेंटलमेन्स एग्रीमेंट' नाम दिया गया। इस समझौते के अंतर्गत तेलंगाना में स्थानीय नागरिकों के अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रावधान रखे गये। इन प्रावधानों को 'मुल्की क़ानून' कहा जाने लगा। आंध्रप्रदेश के गठन के समय यह भी तय किया गया कि आंध्र और तेलंगाना क्षेत्रों पर सरकारी आय का कितना हिस्सा ख़र्च होगा।

हैदराबाद राज्य में जो कन्नड़ बहुल क्षेत्र थे, उन्हें मैसूर राज्य में मिला दिया गया। जो मराठी बहुल ज़िले थे, उन्हें बंबई राज्य में मिला दिया गया। नवगठित राज्य में कुल 23 ज़िले आये, जिनमें 10 तेलंगाना के थे। 9 ज़िले आंध्र के थे और 4 रायलसीमा के।

आंध्रप्रदेश राज्य बनने के बाद तेलंगाना के लोगों को लगा कि उनके साथ नाइंसाफ़ी हो रही है। राज्य बनने के बाद से राजनीतिक तौर पर आंध्र के लोगों का दबदबा रहा। मुख्यमंत्री पद पर आंध्र के नेता ही रहे। पहले नीलम संजीव रेड्डी मुख्यमंत्री बने। फिर दलित नेता दामोदरम संजीवय्या मुख्यमंत्री बनाये गये। इसके

बाद नीलम संजीव रेड्डी दुबारा मुख्यमंत्री बने। संजीव रेड्डी के बाद कासु ब्रह्मानंद रेड्डी मुख्यमंत्री बनाये गये। तेलंगाना के नेताओं ने आरोप लगाया कि सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थाओं में आंध्र के लोगों को प्राथमिकता दी जा रही है। तेलंगाना में भी आंध्र के लोगों को नियुक्त किया जा रहा है। तेलंगाना के विद्यार्थियों के साथ नाइंसाफ़ी हो रही है। राजस्व का बड़ा हिस्सा आंध्र में ख़र्च किया जा रहा है और नदियों के पानी से भी उसी क्षेत्र को लाभ मिल रहा है। इस बात को लेकर तेलंगाना के विद्यार्थियों ने आंदोलन शुरू कर दिया। इन विद्यार्थियों की माँग थी कि अलग तेलंगाना राज्य बनाया जाए, ताकि इस क्षेत्र के लोगों के साथ इंसाफ़ हो सके। अलग तेलंगाना राज्य की माँग को लेकर शुरू हुए आंदोलन ने हिंसक रूप ले लिया। इस आंदोलन में तेलंगाना के विद्यार्थी सबसे आगे थे। इस आंदोलन का केंद्र बना उस्मानिया विश्वविद्यालय। दिन-ब-बिन उग्र होते आंदोलन को कुचलने के मक़सद से राज्य सरकार ने पुलिस बल का इस्तेमाल करना शुरू किया। विद्यार्थियों को नियंत्रित करने के लिए पुलिस ने कई जगह लाठीचार्ज किया। लेकिन आंदोलन तेज़ होता गया। पुलिस ने कई जगह आंदोनकारियों पर गोलियाँ भी चलायीं। पुलिस की गोलीबारी में कई छात्रों की जान गयी और कई ज़ख़्मी हुए। तेलंगाना में लगी आग को बुझाने के लिए केंद्र को दखल देना पड़ा। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने भरोसा दिलाया कि मुल्की क़ानून को कड़ाई से अमल में लाया जाएगा। इस घोषणा के बाद आंदोलन कुछ शांत पड़ा, लेकिन अलग तेलंगाना राज्य की माँग उठती रही।

1971 में आंध्र के विद्यार्थियों ने नाइंसाफ़ी का आरोप लगते हुए अलग 'आंध्र' की माँग शुरू कर दी। इस माँग को राजनेताओं और बुद्धिजीवियों का समर्थन मिलने लगा। 1972 में विद्यार्थियों ने आंदोलन शुरू कर दिया। आंदोलन का मुख्य केंद्र बना विशाखपट्नम का आंध्र विश्वविद्यालय।

इस आंदोलन की आग से आंध्र के मेडिकल कॉलेज भी अछूते नहीं रहे। चूँकि आंदोलन में विद्यार्थियों की भागीदारी ज़्यादा थी, मेडिकल विद्यार्थियों को भी इस आंदोलन में कूदना पड़ा। तिरुपति के श्री वेंकटेश्वर कॉलेज के मेडिकल विद्यार्थियों ने भी 'जय आंध्र' आंदोलन में हिस्सा लेना शुरू किया। इसी वजह से सारी पढ़ाई-लिखाई और शैक्षणिक गतिविधियाँ ठप पड़ गयीं। श्यामा प्रसाद भी अलग आंध्र राज्य

की माँग के समर्थन में हो रहे प्रदर्शनों में हिस्सा लेने लगे। आंदोलन का नेतृत्व गौतु लचन्ना, टेन्नेटि विश्वनाथम, राजा सागी सूर्यनारायण राजू, जुपूडि यज्ञनारायण, एन. श्रीनिवासुलु रेड्डी, बी.वी. सुब्बारेड्डी, काकानि वेंकटरत्नम जैसे दिग्गज नेता इस आंदोलन की अगुवाई कर रहे थे। गौतु लचन्ना नामचीन स्वतंत्रता-सेनानी थे। किसानों को उनके अधिकार दिलवाने के लिए उन्होंने कई आंदोलन किये थे। उनकी पहचान आंध्र में पिछड़ी जाति के लोगों के सबसे बड़े नेता के रूप में भी थी। टेन्नेटि विश्वनाथम ने विशाखपट्नम में स्टील प्लांट स्थापित करने के लिए हुए आंदोलन में भी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। क्रांतिकारी नेताओं का नेतृत्व होने की वजह से 'जय आंध्र' आंदोलन को व्यापक जन-समर्थन हासिल था।

विद्यार्थी सुबह से शाम तक जय आंध्र आंदोलन से जुड़ी गतिविधियों में हिस्सा लेने के बाद अपने-अपने घर लौट जाते थे। लेकिन श्यामा प्रसाद का मन घर लौटने से मना करता था। मन इस वजह से उदास था, क्योंकि डॉक्टरी की पढ़ाई ठप पड़ गयी थी। समय बर्बाद हो रहा था। श्यामा प्रसाद चाह रहे थे कि वे समय पर एमबीबीएस की पढ़ाई पूरी कर लोगों का इलाज करने लगें। जय आंध्र आंदोलन की वजह से उनकी इच्छा के पूरा होने में देरी हो रही थी।

एक शाम यूँ ही तिरुपति की गलियों में इधर-उधर घूमते हुए श्यामा प्रसाद को भक्ति-गीत सुनायी देने लगा। आवाज़ इतनी मधुर थी कि श्यामा प्रसाद के क़दम उसी तरफ़ बढ़ने लगे, जहाँ से शास्त्रीय संगीत की आवाज़ आ रही थी। श्यामा प्रसाद आगे बढ़ते-बढ़ते त्यागराज मंडपम पहुँच गये। यहाँ भक्ति-संगीत का कार्यक्रम चल रहा था। यहाँ एक कलाकार अन्नमय्या की रचनों को शास्त्रीय संगीत में पिरोकर लोगों को सुना रहा था। संगीतज्ञ की आवाज़ मनमोहक थी। श्यामा प्रसाद वहीं श्रोताओं के बीच बैठ गये और भक्तिसंगीत का आनंद लेने लगे।

कार्यक्रम समाप्त होने के बाद श्यामा प्रसाद घर लौट आये। लेकिन उनके मन-मस्तिष्क पर उस मधुर आवाज़ का प्रभाव बना रहा। अन्नमय्या के भक्ति-गीतों ने श्यामा प्रसाद पर जादुई असर किया था।

श्यामा प्रसाद अब हर शाम त्यागराज मंडपम जाने लगे और भक्ति-संगीत सुनना आदत बन गयी। उन दिनों इस सभागृह में हर शाम भक्ति-संगीत के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता था। दक्षिण भारत के नामचीन कलाकार आकार

यहाँ अपनी प्रस्तुति देते थे। एक शाम श्यामा प्रसाद को मशहूर कलाकार एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी की भावपूर्ण प्रस्तुति सुनने को मिली। सुब्बुलक्ष्मी ने अपनी गायन-कला से सभी श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध किया था। सुब्बुलक्ष्मी उन दिनों भारत की सबसे लोकप्रिय और सम्मानित कलाकार थीं। महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू भी उनके संगीत के प्रशंसक थे। देश-भर में ही नहीं, बल्कि दुनिया के कोने-कोने में उनके प्रशंसक थे। सुब्बुलक्ष्मी ने अपनी जादुई आवाज़ से करोड़ों लोगों को अपना मुरीद बनाया था। लता मंगेशकर जैसी दिग्गज कलाकार ने उनकी संगीत-साधना को देखते हुए उन्हें 'तपस्विनी' कहा था। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के नामचीन कलाकार उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ान ने सुब्बुलक्ष्मी को 'सुस्वरलक्ष्मी' की उपाधि दी थी। सुब्बुलक्ष्मी के हर कार्यक्रम में सभागृह संगीत-प्रेमियों से खचाखच भरे रहते थे।

इस महान कलाकार की आवाज़ ने श्यामा प्रसाद पर ऐसा असर डाला कि वे संगीत के विद्यार्थी बन गये। वे संगीत की बारीकियों की समझने की कोशिश करने लगे। श्यामा प्रसाद की दिलचस्पी भारतीय शास्त्रीय संगीत में दिन-ब-दिन बढ़ती चली गयी। हर दिन एक बड़े कलाकार की संगीत-कला से रू-ब-रू होने की वजह से श्यामा प्रसाद आनंद के सागर में गोते खाने लगे थे।

श्यामा प्रसाद शास्त्रीय संगीत की तीनों शाखों - गायन, वादन एवं नृत्य की बारीकियों को समझने में लग गये। यह संयोग ही था कि श्यामा प्रसाद के पिता सुंदरय्या भी जब मेडिकल की पढ़ाई कर रहे थे, तभी उनके मन-मस्तिष्क पर भी संगीत छाने लगा था। मेडिकल कॉलेज में पढ़ाई करते हुए सुंदरय्या संगीत सीखने लगे थे। वे कुछ वाद्य-यंत्र बजाना भी सीख गये थे। श्यामा प्रसाद ने संगीतकार बनने की नहीं सोची, लेकिन संगीत का जानकार बनने की कोशिश मेडिकल कॉलेज के दिनों में शुरू हो गयी थी। कलाकारों की सुरीली जादुई आवाज़ अनायास ही उन्हें अपनी ओर खींचने लगी थी। उधर दूसरी तरफ़ जय आंध्र आंदोलन लगातार तेज़ होता जा रहा था। राज्य-भर में हिंसक घटनाएँ बढ़ रही थीं। विद्यार्थियों के प्रदर्शन उग्र हो रहे था। आंदोलन पर काबू पाने के लिए केंद्र सरकार ने राज्य सरकार को पुलिस बल का इस्तेमाल करने पर मजबूर किया। आंदोलन को कुचलने के मक़सद से पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर लाठचार्ज करना शुरू किया। लाठीचार्ज की वजह से विद्यार्थियों का गुस्सा परवान चढ़ गया। आंदोलन और भी हिंसक हो गया। पुलिस

ने कई जगह आंदोलनकारियों पर गोलियाँ चलायीं। पुलिस की गोलीबारी में कई विद्यार्थी ज़ख़्मी हुए। कुछ विद्यार्थियों की जान भी गयी। लेकिन आंदोलन शांत नहीं हुआ।

आंध्र में ठीक उसी तरह हो रहा था, जैसे 1969 में तेलंगाना में हुआ था। जय तेलंगाना आंदोलन के समय आंध्र और तेलंगाना के लोगों में मनमुटाव बढ़ गया था। लेकिन जय आंध्र आंदोलन के शुरू होते ही यह मनमुटाव चरम पर पहुँच गया। अब दोनों तरफ़ से आंध्रप्रदेश को विभाजित करने की माँग उठने लगी। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को लगा कि अगर वे आंध्रप्रदेश को विभाजित कर दो अलग राज्य बनाने की माँग मान लेती हैं, तब इसी तरह की माँग अन्य राज्यों से भी उठ सकती है। इंदिरा गांधी ने नये राज्य बनाने की माँग को ख़ारिज कर दिया। प्रधानमंत्री ने साफ़ कह दिया कि नये राज्य बनाने का कोई सवाल ही नहीं उठता है। इंदिरा गांधी ने आंदोलन कर रहे विद्यार्थियों के ख़िलाफ़ सख़्त कारवाई करने का भी आदेश दिया। फ़रमान सुनाया गया कि जो विद्यार्थी स्कूल-कॉलेज नहीं जाएँगे, उन्हें दंडस्वरूप शिक्षा संस्थान से निष्कासित कर दिया जाएगा। यह भी आदेश दिया गया कि जो शिक्षक और कर्मचारी आंदोलन में हिस्सा लेंगे, उन्हें सरकारी नौकरी से हटा दिया जाएगा। इतना ही नहीं, आंदोलन करने वाले नेताओं और उनका साथ देने वाले लोगों को जेल में बंद किया जाने लगा। इंदिरा गांधी ने दोनों क्षेत्रों के राजनेताओं और बुद्धिजीवियों को बातचीत के ज़रिये सभी समस्याओं का हल निकालने का सुझाव दिया। चूँकि देश की सबसे बड़ी नेता और प्रधानमंत्री का आदेश था, बातचीत का दौर शुरू हुआ। आंदोलन पर विराम लग गया।

स्कूल-कॉलेज दुबारा शुरू हुए। जन-जीवन सामान्य हो गया। श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में भी शैक्षणिक गतिविधियाँ दुबारा शुरू हुईं। श्यामा प्रसाद भी कॉलेज जाने लगे।

फाउंडेशन कोर्स पूरा होना के बाद एमबीबीएस कोर्स की पढ़ाई शुरू हुई। मेडिकल विद्यार्थियों को पहले साल एनाटॉमी, बायोकेमिस्ट्री और फ़िज़ियोलॉजी के बारे में बताया और सिखाया जाता है।

एनाटॉमी यानी शरीर-रचना विज्ञान आयुर्विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है। एनाटॉमी के अंतर्गत किसी जीवित वस्तु का विच्छेदन कर, उसके अंग-प्रत्यंग की

रचना का अध्ययन किया जाता है। चल और अचल, दोनों तरह के जीवित-वस्तुओं की संरचना के बारे में विस्तार से समझाया जाता है। अचल में वनस्पति-जगत् तथा चल में प्राणी-जगत् का समावेश होता है। वनस्पति और प्राणी के संदर्भ में इसे क्रमशः पादप शारीरिकी और जीव शारीरिकी कहा जाता है। जब किसी विशेष प्राणी अथवा वनस्पति की शरीर-रचना का अध्ययन किया जाता है, तब इसे विशेष शारीरिकी अध्ययन कहते हैं। जब किसी प्राणी या वनस्पति की शरीर-रचना की तुलना किसी दूसरे प्राणी अथवा वनस्पति की शरीर-रचना से की जाती है, उस स्थिति में यह अध्ययन तुलनात्मक शारीरिकी कहलाता है। जब किसी प्राणी के अंगों की रचना का अध्ययन किया जाता है, तब यह आंगिक शारीरिकी कहलाती है। मेडिकल विद्यार्थियों को पहले साल आंगिक शारीरिकी की शिक्षा दी जाती है।

व्यावहारिक दृष्टि से मानव शरीर-रचना का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक चिकित्सक को शरीर-रचना का अध्ययन कई दृष्टि से करना होता है। रूप, स्थिति, आकार एवं अन्य रचनाओं से संबंध में मेडिकल विद्यार्थियों को सभी जानकारियाँ हासिल करनी होती हैं। आकारिकीय शरीर-रचना विज्ञान की दृष्टि से मानव-शरीर के भीतर अंगों की उत्पत्ति के कारणों का ज्ञान, अन्वेषण का विषय बन गया है। इस ज्ञान की वृद्धि के लिए जीव-विकास विज्ञान, जाति-विकास विज्ञान एवं ऊतक विज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। मानव शरीर का विस्तृत ज्ञान अधिक प्रभावी चिकित्सा निदान और उपचार को सक्षम बनाता है। इस प्रकार यह विज्ञान मनुष्य के स्वास्थ्य और जीवन को बनाये रखने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

ज़्यादातर मेडिकल विद्यार्थी एनाटॉमी को ही कोर्स का सबसे कठिन विषय मानते हैं। श्यामा प्रसाद को भी एनाटॉमी मुश्किल जान पड़ा।

प्रेक्टिकल में श्यामा प्रसाद को कोई दिक़्क़त नहीं हुई। थ्योरी में उनकी हवा निकल गयी। कई विद्यार्थी ऐसे थे, जो एनाटॉमी की प्रयोगशाला का नाम सुनते ही घबरा जाते थे। कई विद्यार्थियों के माथे से पसीना छूटने लगता था। प्रयोगशाला में किसी इन्सान का शव देखते ही कइयों का माथा चकरा जाता था। कइयों को मतली होने लगती थी। और, जब शव की चीर-फाड़ शुरू कर प्रोफ़ेसर इन्सानी अंगों के बारे में बताते थे, तब कुछ विद्यार्थी बेहोश होकर ज़मीन पर गिर जाते थे। लेकिन श्यामा प्रसाद को एनाटॉमी की प्रयोगशाला में कभी कोई दिक़्क़त नहीं हुई। उन्हें शवों की

चीर-फाड़ से कोई तकलीफ़ नहीं हुई। न कभी उल्टी हुई, न माथा चकराया। जब मौक़ा मिला, तब श्यामा प्रसाद ख़ुद शव की चीर-फाड़ कर प्रोफ़ेसर को इन्सानी शरीर के अंगों के बारे में बताने लगे।

लेकिन किताबों में लिखी बातें याद रखना उनके लिए टेड़ी खीर साबित होने लगा। कई तरह से कोशिश करने के बावजूद पाठ्यपुस्तकों में लिखी बातें उनके ज़हन में टिक नहीं पा रही थीं। पाठ्यक्रम बृहत था। एक विषय के बारे में पढ़ते थे, तो दूसरा भूल जाते थे। एनाटॉमी की वजह से श्यामा प्रसाद का विश्वास डगमगाने लगा। जिस तरह के ख़याल इंटर के शुरुआती दिनों में आये थे, उसी तरह के ख़याल एक बार फिर मन में आने लगे। श्यामा प्रसाद को लगा कि वे कुछ भी कर लें, एनाटॉमी पर पकड़ मजबूत नहीं कर पाएँगे। इन्सानी शरीर से जुड़ी अलग-अलग कोशिकाओं, अलग-अलग ऊतकों और तंत्रों के बारे में सभी बातें याद रख पाना उनके लिए नामुमकिन-सा जान पड़ रहा था।

एमबीबीएस की डिग्री हासिल करने के लिए सभी विषयों की परीक्षा पास करना ज़रूरी होता है। पहले साल की पढ़ाई के दौरान श्यामा प्रसाद को लगा कि वे एनाटॉमी की परीक्षा कभी पास नहीं कर पाएँगे। ऐसा भी नहीं था कि एनाटॉमी ने सिर्फ़ श्यामा प्रसाद के मन में ख़ौफ़ पैदा किया था। कई विद्यार्थी थे, जो एनाटॉमी का नाम सुनते ही काँपने लगते थे।

पाठ्यक्रम से जुड़ी कई किताबें थीं। इन सभी किताबों में लिखे विषय आत्मसात करना आवश्यक था। प्रोफ़ेसरों ने साफ़ कह दिया था कि अच्छा डॉक्टर बनने के लिए इन्सानी शरीर की संरचना को समझना बेहद ज़रूरी है। अच्छा डॉक्टर बनने के लिए न सिर्फ़ एनाटॉमी की परीक्षा पास करनी ज़रूरी है, बल्कि विषय को गहरे से समझना भी ज़रूरी है। इन्सानी शरीर विभिन्न संरचनात्मक स्तरों का एक जटिल संगठन है। इसकी शुरुआत परमाणुओं, अणुओं और यौगिकों से होती है और कोशिकाओं, ऊतक, अंग और तंत्र परस्पर मिलकर संपूर्ण मानव शरीर का सृजन करते हैं। रासायनिक स्तर पर इन्सानी शरीर विभिन्न जैव-रसायनों का संगठनात्मक और क्रियात्मक रूप है, जिसमें विभिन्न तत्वों के परमाणु यौगिकों के रूप में संगठित होकर जैविक क्रियाओं का संचालन करते हैं। इन तत्वों में कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सिजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस और सल्फर मुख्य रूप से होते हैं। कोशिका

शरीर की सूक्ष्मतम इकाई है। इन्सानी शरीर असंख्य कोशिकाओं से मिलकर बना है। कोशिकाओं से ऊतक उत्पन्न होते हैं और इनसे विभिन्न अंगों और शारीरिक प्रणालियों का सृजन होता है, जो संयुक्त रूप से रक्त परिसंचरण, स्वशन, भोजन के पाचन, अवशोषण व निष्काशन जैसी विशिष्ट क्रियाओं को निष्पादित करती है।

श्यामा प्रसाद ने डॉक्टर बनने का प्रण लिया हुआ था। इस वजह से उन्होंने अपनी कोशिशें जारी रखीं। सुबह-शाम किताबों को पढ़ते रहते। एनाटॉमी की परीक्षा पास करने के लिए श्यामा प्रसाद ने अपने सभी शौक छोड़ दिये। सारा ध्यान पढ़ाई पर लगाना शुरू किया।

इन्सानी शरीर अस्थियों, पेशियों, तंत्रिकाओं, धमनियों, शिराओं, चर्बी, ऊतक, चमड़ी और आंतरिक अंगों से निर्मित है। एक मायने में इन सभी संरचनाओं का अध्ययन ही एनाटॉमी है।

आंतरिक इंद्रियों सहित इन्सानी शरीर के विभिन्न भागों की क्रियाओं का अध्ययन ही फ़िज़ियोलॉजी यानी शरीर-क्रिया विज्ञान है। फ़िज़ियोलॉजी के तहत मेडिकल विद्यार्थियों को शरीर के अलग-अलग अंग क्या क्रियाएँ करते हैं, कैसे करते हैं, इस बारे में बताया जाता है। पहले साल मेडिकल विद्यार्थियों को बायोकेमिस्ट्री की भी पढ़ाई करनी पड़ती है। बायोकेमिस्ट्री यानी जीव-रसायन। यह रसायन शास्त्र की वह शाखा है, जो पेड़-पौधों और जानवरों और उनके जैविक प्रक्रमों से संबंधित है। श्यामा प्रसाद को फ़िज़ियोलॉजी और बायोकेमिस्ट्री से कोई परेशानी नहीं हुई, लेकिन एनाटॉमी उनकी परेशानी का सबब बन गयी।

प्रोफ़ेसर विश्वनाथम एनाटॉमी पढ़ाया करते थे। विश्वनाथम बहुत अनुभवी और क़ाबिल शिक्षक थे। वे सुंदरय्या को भी पढ़ा चुके थे। अब उनके बेटे को भी पढ़ा रहे थे। शानदार शिक्षक मिलने के बावजूद श्यामा प्रसाद के लिए एनाटॉमी पर अपनी पकड़ मजबूत करना मुश्किल जान पड़ रहा था।

जैसे-जैसे परीक्षाएँ नज़दीक आ रही थीं, श्यामा प्रसाद की चिंताएँ बढ़ रही थीं। जब भी वे एनाटॉमी की किताबें खोलते, उनका माथा चकरा जाता। उन्हें लगता था कि वे इसे कई बार पढ़ चुके हैं, लेकिन उन्हें कुछ याद नहीं है।

श्यामा प्रसाद को लगा कि वे एनाटॉमी की परीक्षा पास नहीं कर पाएँगे। इसी डर की वजह से वे अकेले में रोने लगे। दोनों आँखों से आँसुओं की नदियाँ बहने

लगती थीं। मर्द थे, इस वजह से दूसरों के सामने रोना उन्हें नापसंद था। वे अपनी पीड़ा अपने पास रखना चाहते थे। उन्हें लगता था कि अगर वे अपनी समस्या के बारे में माता-पिता को बताएँगे, तब वे बहुत दुखी होंगे। माता-पिता को लगता था कि श्यामा प्रसाद तेज़ बुद्धि वाले इन्सान हैं। मेहनती हैं। वे हर बार की तरह इस बार भी हर परीक्षा में पास होंगे। श्यामा प्रसाद को शंका थी कि अगर पिता को एनाटॉमी वाली बात का पता चला, तो वे बहुत निराश होंगे और उन्हें पीड़ा होगी। इतना ही नहीं, श्यामा प्रसाद अपनी समस्या अपने दोस्तों से भी साझा नहीं करना चाहते थे। उन्हें लगता था कि कुछ दोस्त मदद करने के बजाय मज़ाक उड़ाएँगे।

श्यामा प्रसाद को ख़ुद की और पिता की बदनामी का भी डर था। उन्हें लगता था कि अगर वे एग्ज़ाम में फेल हो गये, तो कई लोग होंगे, जो यह कहेंगे कि एक मशहूर डॉक्टर का बेटा फेल हो गया। इससे पिता की बदनामी होगी।

सुंदरय्या बेहद लोकप्रिय और मशहूर थे। श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में ऐसा कोई नहीं था, जो उनके बारे में न जानता हो। सभी उनकी क़ाबिलियत के क़ायल थे। सुंदरय्या का व्यक्तित्व विलक्षण था। वे सभी को प्रोत्साहित करते थे। सभी की मदद करते थे। समस्या कैसी भी क्यों न हो, वे उसका निदान निकालने में मदद करते थे। मिलनसार थे, मददगार थे। मेडिकल साइन्स के बड़े जानकार थे। ऐसे में उन्हीं के बेटा का परीक्षा में फेल होना हर तरफ़ चर्चा का विषय बन जाता। श्यामा प्रसाद को लगा कि तरह-तरह के लोग तरह-तरह के सवाल खड़े करेंगे। कोई कहेगा कि लोगों को डॉक्टरी ज्ञान देने वाला ख़ुद अपने बेटे को सही शिक्षा नहीं दे पाया। कोई कहेगा कि दुनिया-भर के लोगों को ज्ञान बाँटने के चक्कर में सुंदरय्या ख़ुद अपने बेटे को ज्ञान देना भूल गये। कुछ तो ऐसे भी होंगे, जो सारा दोष श्यामा प्रसाद पर मढ़ेंगे। कुछ लोग कहेंगे कि नालायक बेटे ने पिता का नाम डुबाया है। इसी तरह के ख़याालों की वजह से श्यामा प्रसाद बेहद निराश रहने लगे।

सुंदरय्या अनुभवी थे। अपने बेटे के हाव-भाव में बदलाव देखकर वे समझ गये कि कुछ गड़बड़ है। सुंदरय्या अब हर दिन श्यामा प्रसाद की गतिविधियों पर पैनी नज़र बनाये रखने लगे। उन्हें अहसास हो गया कि मामला गंभीर है। उन्हें अपने बेटे में डिप्रेशन के लक्षण दिखाई देने लगे। सुंदरय्या भी घबरा गये। परीक्षाएँ सिर

पर हैं और बेटा डिप्रेशन में है। पिता ने बेटे से बातचीत कर हक़ीक़त जानने का मन बनाया।

एक दिन सुंदरय्या ने श्यामा प्रसाद ने पूछा, "बेटा, परीक्षाएँ नज़दीक हैं, तैयारी कैसी है?"

श्यामा प्रसाद अपने पिता से कुछ नहीं छिपाते थे। पिता ही श्यामा प्रसाद के आदर्श थे। मन की पीड़ा ज़ाहिर करते हुए श्यामा प्रसाद ने कहा, "पिताजी, बायोकेमिस्ट्री और फ़िज़ियोलॉजी की तैयारी अच्छी है। लेकिन एनाटॉमी में दिक़्क़त है। मैं जितना भी पढ़ता हूँ, उसे भूल जाता हूँ। कुछ भी याद नहीं रहता। मुझे डर है कि मैं एग्ज़ाम पास नहीं कर पाऊँगा।"

मेडिकल विद्यार्थियों की मनोदशा को अच्छे से जानने और समझने वाले सुंदरय्या को अपने बेटे की परेशानी समझने में देर न लगी।

सुंदरय्या ने हौसला बढ़ाने की कोशिश करते हुए कहा, "बेटा, तुम्हें घबराने की ज़रूरत नहीं है। तुम कोशिश करते रहना। मैं अच्छे से जानता हूँ कि एनाटॉमी बड़ा कठिन विषय है। मैं जानता हूँ ... बहुत सारी बातें याद रखनी पड़ती हैं। सारी बातें याद रखना आसान नहीं है। तुम जितना याद कर सकते हो, करो। परीक्षा से डरो मत। हिम्मत बनाये रखो। घबराने से कुछ हासिल नहीं होता। तैयारी में कोई कमी मत आने दो। यह समय घबराने का नहीं है, तैयारी करने का है। इधर-उधर की मत सोचो, बस परीक्षा की तैयारी करो।"

इन बातों का श्यामा प्रसाद पर कोई ख़ास असर नहीं हुआ। वे जानते थे कि एनाटॉमी की परीक्षा पास करना आसान नहीं है। उनके कई सहपाठी ऐसे थे, जो यह मान चुके थे कि वे एनाटॉमी की परीक्षा पास नहीं कर पाएँगे। वे अपना एक साल गँवाने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो गये थे।

एमबीबीएस कोर्स में पहला साल सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण होता है। दूसरे साल की पढ़ाई के लिए पहले साल की सभी परीक्षाओं में पास होना अनिवार्य है। अगर मेडिकल विद्यार्थी किसी एक विषय की परीक्षा में फेल होता है, तो उसे पहले साल का पाठ्यक्रम दुबारा पढ़ना पड़ता है, यानी वह दूसरे साल की पढ़ाई शुरू नहीं कर सकता है। दूसरे साल में प्रवेश करने के लिए एनाटॉमी, बायोकेमिस्ट्री और फ़िज़ियोलॉजी की परीक्षाओं में पास होना ज़रूरी होता है। जो विद्यार्थी पहले साल

की परीक्षा में फेल हो जाते हैं, उन्हें 'रेफर्ड विद्यार्थी' कहा जाता है। इन विद्यार्थियों को दुबारा से पहले साल की पढ़ाई करनी होती है, और जब तक ये विद्यार्थी पहले साल के पाठ्यक्रम की सारी परीक्षाएँ पास नहीं कर लेते, उन्हें दूसरे साल की कक्षाओं में शामिल होने नहीं दिया जाता है।

उन दिनों हर मेडिकल कॉलेज में हर साल कई विद्यार्थी पहले साल की परीक्षा में फेल हो जाया करते थे। ये सभी 'रेफर्ड' हो जाते थे। 'रेफर्ड' होना मेडिकल कॉलेजों में आम बात थी।

होता यह था कि मेडिकल कॉलेज में दाख़िला मिलते ही कई विद्यार्थी पढ़ाई-लिखाई के मामले में लापरवाह हो जाते थे। ये विद्यार्थी मानने लगते थे कि अब उनका डॉक्टर बनना तय है। ये विद्यार्थी यह समझते थे कि वे तेज़ दिमाग़ वाले हैं और इसी वजह से मेडिकल कॉलेज में दाख़िले के हक़दार बन पाये हैं। अब तक जब सारी परीक्षाएँ पास कर ली हैं, तब मेडिकल कॉलेज की सारी परीक्षाएँ भी पास कर लेंगे। ज़्यादातर मेडिकल विद्यार्थी इस बात पर ध्यान नहीं देते थे कि उन्हें परीक्षाओं में कितने फ़ीसदी नंबर मिले हैं। ज़्यादातर विद्यार्थियों का लक्ष्य सिर्फ़ परीक्षा में पास होना होता है। चिकित्सक बनने के लिए एमबीबीएस की डिग्री ज़रूरी है। जिस व्यक्ति के पास एमबीबीएस की डिग्री है, वह लोगों का इलाज करने का हक़दार है। एलोपैथी डॉक्टर बनने के लिए एमबीबीएस की डिग्री हासिल करना ज़रूरी है। परीक्षा में फ़र्स्ट डिवीज़न के मार्क मिले हों या थर्ड डिवीज़न के, परीक्षा पास होने पर डॉक्टर बनने के हक़दार बन जाते हैं। मरीज़ यह देखकर डॉक्टर के पास नहीं जाते कि उसने एमबीबीएस की परीक्षा फ़र्स्ट डिवीज़न में पास की है या थर्ड डिवीज़न में। यही वजह है कि कई मेडिकल विद्यार्थी सिर्फ़ परीक्षा पास करने के मक़सद से पढ़ाई करते हैं। लेकिन जब पढ़ाई आगे बढ़ती है, तब उन्हें अहसास होता है कि परीक्षा पास करना आसान नहीं है। एनाटॉमी, बायोकेमिस्ट्री और फ़िज़ियोलॉजी, तीनों विषयाओं का पाठ्यक्रम बृहद है। परीक्षा के ठीक पहले पढ़ाई शुरू करने से इस पाठ्यक्रम को पूरा करना नामुमकिन है। ग़लत आंकलन और लापरवाही की वजह से कई विद्यार्थी पहले साल की परीक्षा में फेल हो जाया करते थे और उन्हें एक साल गँवाना पड़ता था।

उन दिनों कई विद्यार्थी ऐसे थे, जिनकी पढ़ाई तेलुगु माध्यम से हुई थी। वैसे

तो ये फ़ाउंडेशन कोर्स पूरा कर मेडिकल की पढ़ाई शुरू करते थे, लेकिन विषय कठिन होने और कई सारे नये शब्दों से परिचय होने की वजह से ये मेडिकल साइन्स के विषयों को आत्मसात नहीं कर पाते थे। अंग्रेज़ी भाषा पर पकड़ कमज़ोर होने की वजह से कई विद्यार्थी फेल हो जाया करते थे।

श्यामा प्रसाद के कई सहपाठी ऐसे थे, जिन्हें यह आभास हो चुका था कि उन्हें पहले साल की पढ़ाई दुबारा करनी होगी।

श्यामा प्रसाद को भी यही लगा कि वे भी फेल हो जाएँगे। लेकिन वे नहीं चाहते थे कि फेल हों। उन्हें बदनामी का डर सता रहा था।

लेकिन पिता की सलाह मानते हुए श्यामा प्रसाद ने तैयारी में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी।

परीक्षा की तारीख़ जैसे-जैसे नज़दीक आती गयी, वैसे-वैसे श्यामा प्रसाद की बेचैनी बढ़ती गयी। पढ़ाई में रात-दिन एक करने के बावजूद आत्म-विश्वास नहीं बढ़ा। मन की आशंकाएँ दूर नहीं हुईं। सुंदरय्या अपने बेटे की गतिविधियों पर नज़र बनाये हुए थे।

एनाटॉमी की परीक्षा वाले दिन श्यामा प्रसाद एग्ज़ाम पैड, पेन, पेंसिल लेकर घर से बाहर निकले। उन्होंने अपनी साइकिल निकाली और परीक्षा-केंद्र की ओर जाने लगे। वे घर से कुछ दूर ही आगे बढ़े थे कि पीछे से उनके पिता अपनी कार में उनसे आगे निकले। इसके बाद कार को रोका। जैसे ही सुंदरय्या साइकिल के क़रीब पहुँचे, उन्होंने श्यामा प्रसाद से साइकिल छोड़ने और कार पर सवार होने को कहा। पिता के आदेश का पालन करते हुए श्यामा प्रसाद ने अपनी साइकिल को सुरक्षित जगह पर ठिकाने लगाया और पिता की कार पर सवार हुए। पिता श्यामा प्रसाद को सीधे परीक्षा-केंद्र लेकर पहुँचे। कार पार्क करने के बाद सुंदरय्या ख़ुद अपने बेटे को परीक्षा-कक्ष तक ले गये और द्वार पर विदाई देने से पहले कहा, "बिलकुल मत घबराओ। जितने भी प्रश्नों के उत्तर याद हों, उन्हें अच्छे से लिखना।" इतना कह कर सुंदरय्या मरीज़ों का इलाज करने अस्पताल चले गये।

श्यामा प्रसाद ने जैसे ही प्रश्न-पत्र देखा, उनकी निराशा दूर हो गयी। कई प्रश्न ऐसे थे, जिनके उत्तर उन्हें याद थे। कुछ प्रश्न ऐसे भी थे, जिनके उत्तर उन्हें याद नहीं थे। श्यामा प्रसाद ने उन सभी प्रश्नों के उत्तर लिखे, जिनके बारे में उन्हें

जानकारी थी। परीक्षा का समय पूरा होने पर श्यामा प्रसाद को यक़ीन हो गया कि वे परीक्षा में पास हो जाएँगे।

श्यामा प्रसाद सिर्फ़ एनाटॉमी की परीक्षा से घबराये थे। उन्हें बायोकेमिस्ट्री और फ़िज़ियोलोजी की परीक्षा से कोई डर नहीं था। उनकी तैयारी पूरी थी। श्यामा प्रसाद ने दोनों परीक्षाएँ अच्छे से लिखीं।

जब परीक्षा के परिणाम आये, तब श्यामा प्रसाद को राहत मिली। वे न सिर्फ़ एनाटॉमी की परीक्षा में पास हुए थे, बल्कि उनका रैंक तीसरा था, यानी दो ही विद्यार्थी ऐसे थे, जिन्हें उनसे ज़्यादा नंबर मिले थे। श्यामा प्रसाद को बायोकेमिस्ट्री और फ़िज़ियोलॉजी की परीक्षाओं में भी शानदार नंबर मिले।

जैसा कि अनुमान था कई विद्यार्थी एनाटॉमी की परीक्षा में फेल हुए। कुछ ऐसे थे, जो बायोकेमिस्ट्री और फ़िज़ियोलोजी की परीक्षा में फेल हुए थे। कुछ तो ऐसे भी थे, जो तीन विषयों में से दो या फिर तीन में फेल हुए थे। ये सभी विद्यार्थी 'रेफर्ड' हो गये। इन्हें पहले साल की पढ़ाई दुबारा करने पर मजबूर होना पड़ा। नये बैच के विद्यार्थियों के साथ इन्हें फिर से पहले साल की कक्षाओं में शामिल होना पड़ा।

पहले साल की सभी परीक्षाओं में पास हुए विद्यार्थियों के साथ श्यामा प्रसाद आगे बढ़ गये।

दूसरे साल मेडिकल विद्यार्थियों को पैथोलॉजी, माइक्रोबायोलॉजी और फार्माकोलॉजी के बारे में पढ़ाया जाता है। आमतौर पर दूसरे साल की पढ़ाई के दौरान विद्यार्थियों को ज़्यादा परेशानी नहीं होती। वे विषय की जानकारी आत्मसात कर लेते हैं।

पैथोलॉजी मेडिकल साइंस की एक महत्वपूर्ण शाखा है। बीमार इन्सान के इलाज के लिए सबसे पहले यह जानना ज़रूरी है कि बीमारी कौन-सी है और किस वजह से हुई है। पैथोलॉजी के अंतर्गत इन्सान को होने वाली अलग-अलग बीमारियों की पहचान के लिए किये जाने वाली जाँचों के बारे में बताया जाता है। विद्यार्थियों को प्रोटोजोआ, एल्गी, बैक्टीरिया और वायरस के बारे में बताया जाता है और यह सिखाया जाता है कि इनकी वजह से बीमारियाँ कैसे होती हैं।

माइक्रोबायोलॉजी के अंतर्गत प्रोटोजोआ, एल्गी, बैक्टीरिया और वायरस जैसे सूक्ष्म-जीवों के बारे में बताया जाता है। शिक्षक मेडिकल विद्यार्थियों को इन

सूक्ष्म-जीवों के इन्सानी शरीर पर होने वाले अच्छे और बुरे प्रभावों की जानकारी देते हैं। माइक्रोबायोलॉजी की पढ़ाई की वजह से इन्सान को होने वाली बीमारियों की वजह जानने में मदद मिलती है।

फार्माकोलॉजी के अंतर्गत इन्सानी शरीर पर अलग-अलग रसायनों के प्रभाव के बारे में बताया जाता है। मूलरूप से विज्ञान की इस शाखा में दवाइयों के बारे में सिखाया जाता है। किस बीमारी के निदान के लिए किस दवाई का इस्तेमाल कैसे किया जाना चाहिए, इस बारे में बताया जाता है।

श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में डॉ. कृष्णन फोरेंसिक मेडिसिन पढ़ाया करते थे। वे विषय के नामचीन जानकार थे। मेडिकल विद्यार्थियों को विषय के बारे में समझने में आसानी हो, इस मक़सद से उन्होंने एक किताब लिखी थी। इस किताब में आसान भाषा में दवाइयों, उनकी संरचना, तैयारी की प्रक्रिया और उपयोग के बारे में बताया गया था। ज़्यादातर विद्यार्थी इसी किताब को पढ़कर परीक्षा की तैयारी करते थे। 500 पन्नों वाली इस किताब की वजह से कृष्णन भारत-भर में मशहूर हो गये थे। श्यामा प्रसाद ने विषय को आत्मसात करने के लिए इसी किताब का सहारा लिया।

कॉलेज की आंतरिक परीक्षा के बाद जब उत्तर-पुस्तिकाओं की जाँच हुई, तब परीक्षक ने पाया कि श्यामा प्रसाद ने प्रश्नों के उत्तर अक्षरशः वैसे ही लिखे हैं, जैसे कि डॉ. कृष्णन की किताब में हैं। बात साफ़ थी। श्यामा प्रसाद ने कृष्णन की किताब को अपने मन में हू-ब-हू उतार लिया था।

डॉ. श्यामला को पैथोलॉजी पढ़ाने के ज़िम्मेदारी दी गयी थी। श्यामला श्यामा प्रसाद के पिता की पक्की दोस्त थीं। इस वजह से भी श्यामला ने श्यामा प्रसाद की पढ़ाई पर विशेष ध्यान दिया।

डॉ. रमा लक्ष्मी ने मेडिकल विद्यार्थियों को माइक्रोबायोलॉजी के बारे में सिखाया। रमा लक्ष्मी के पढ़ाने का अंदाज़ शानदार था। वे हर विद्यार्थी की हर शंका का समाधान करती थीं।

बेहतरीन शिक्षक मिलने की वजह से श्यामा प्रसाद ने परीक्षाओं के लिए शानदार तरीक़े से तैयारी की। तगड़ी तैयारी की वजह से उन्हें दूसरे साल की परीक्षाओं में भी शानदार नंबर मिले। इस बार भी उनका रैंक तीसरा रहा।

इसी बीच गोपी कृष्णा ने इंटर की परीक्षा पास कर ली। मेडिकल प्रवेश-परीक्षा

में भी उन्हें शानदार रैंक मिला। एमबीबीएस कोर्स के लिए उनकी सीट भी श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में पक्की हो गयी। सुंदरय्या के दोनों बेटे अब एक साथ डॉक्टरी की पढ़ाई करने लगे।

एमबीबीएस कोर्स के दौरान तीसरे साल मेडिकल विद्यार्थियों को नेत्रविज्ञान, कान, नाक व कंठ विज्ञान और सामुदायिक चिकित्सा के बारे में पढ़ाया जाता है। श्यामा प्रसाद ने मन लगाकर पढ़ाई की। तीसरे साल की सभी परीक्षाओं में उन्हें उम्दा नंबर मिले।

चौथे साल मेडिकल विद्यार्थियों को मेडिसिन, सर्जरी, प्रसूति और स्त्रीरोग, बाल-रोग, त्वचा विज्ञान, मनोरोग व रेडियोलॉजी के बारे में सीखना होता है। चौथे साल भी मेडिकल विद्यार्थियों को ख़ूब मेहनत करनी पड़ती है।

उन दिनों श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में डॉ. सुब्रमण्यम मनोविज्ञान पढ़ाया करते थे। वे मनोविज्ञान के विशेषज्ञ थे। उनके पढ़ाने का अंदाज़ निराला था। डॉ. सुब्रमण्यम ने सबसे पहले विद्यार्थियों को मनोविज्ञान के महत्व के बारे में समझाया। उन्होंने बताया कि इन्सान के व्यवहार के कारणों को समझने में मनोविज्ञान के वैज्ञानिक सिद्धांत सहायक होते हैं। एक मायने में इन्सान के आचरण और व्यवहार का यथार्थ विज्ञान ही मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान के तहत मानव संबंधों का अध्ययन भी किया जाता है। मानव-प्रकृति का अध्ययन ही मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान की वजह से यह समझा जा सकता है कि व्यक्ति विशेष किन परिस्थितियों में किस तरह का व्यवहार करता है। मनोविज्ञान ज्ञात करता है कि किसी विशिष्ट व्यवहार का कारण क्या है? डॉ. सुब्रमण्यम ने बताया कि मनोविज्ञान अनुभव का विज्ञान भी है। इसका उद्देश्य चेतनावस्था की प्रक्रिया के तत्त्वों का विश्लेषण करना, उनके परस्पर संबंधों का स्वरूप तथा उन्हें निर्धारित करने वाले नियमों का पता लगाना भी है।

डॉ. सुब्रमण्यम के व्याख्यानों के प्रभाव में कई मेडिकल विद्यार्थियों ने संकल्प ले लिया कि वे मनोरोग चिकित्सक बनेंगे। श्यामा प्रसाद के साथियों—चंद्रशेखर, साई कुमार रेड्डी, गौरी देवी उन मेडिकल विद्यार्थियों में शामिल थे, जिन्होंने डॉ. सुब्रमण्यम के प्रभाव में मनोरोग चिकित्सक बनने और इन्सान के दिमाग़ में उपजने वाले विचारों के कारणों का पता लगाने की ठान ली थी।

डॉ. वसंत राव और डॉ. शेषाचारी सर्जरी के प्रोफ़ेसर थे। डॉ. वसंत राव माने

हुए सर्जन थे। उन्होंने सर्जरी यानी शल्य-चिकित्सा के ज़रिये कई लोगों को बीमारी से मुक्ति दिलायी थी। शरीर से ट्यूमर निकालकर कई लोगों को नयी ज़िंदगी दी थी। जनरल सर्जन थे, इस वजह से डॉ. वसंत राव तरह-तरह की सर्जरियाँ करते थे।

डॉ. वसंत राव एक बात विद्यार्थियों से बार-बार कहते थे। यह बात वे ज़ोर देकर कहते थे। वे कहते थे, “किसी भी मरीज़ की लाक्षणिक जाँच करने से पहले उसे निर्वस्त्र किया जाना चाहिए। अगर कपड़ों में ही मरीज़ की जाँच की गयी, तब बीमारी के लक्षण का पता सही से नहीं लगा पाएँगे।”

डॉ. वसंत राव का कहना था कि डॉक्टर को अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभाते समय न घबराना चाहिए और न ही डरना चाहिए। अगर जाँच के लिए मरीज़ के कपड़े नहीं उतारे गये, तब बीमारी का सही से पता नहीं चल सकता है। अपने अनुभव के आधार पर उदाहरण देते हुए वे कहते थे, “मान लीजिए कि अगर किसी महिला के सीने में ट्यूमर है, तब अगर जाँच कपड़ों में की जाए, तब यह ज़रूरी नहीं कि ट्यूमर का पता चल सके। कपड़ों पर स्टेथस्कोप भी सही काम नहीं करता। शरीर के भीतर सामान्य और आसामान्य आवाज़ का पता लगाने के लिए मरीज़ के कपड़े उतारकर ही स्टेथस्कोप का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।” वे यह भी कहा करते थे कि डॉक्टर को मरीज़ों को अपने परिवार का सदस्य मानना चाहिए। अगर वे किसी महिला को अपनी माँ या बहन समझें, तब उन्हें अपनी ज़िम्मेदारी निभाने में कोई तकलीफ़ या हिचक नहीं होगी।

डॉ. शेषाचारी सुंदरय्या के परम प्रिय मित्रों में एक थे। वे अव्वल दर्ज़े के शिक्षक थे। मरीज़ों से किस तरह व्यवहार किया जाना चाहिए, यह उन्होंने विद्यार्थियों को सिखाया था। डॉ. शेषाचारी हमेशा मरीज़ों और उनके परिजनों से अच्छे से पेश आते थे। मरीज़ की बीमारी का पता लगाने के मक़सद से वे कई सवाल करते थे। कुछ मिनटों की बातचीत में वे मरीज़ का विश्वास हासिल कर लेते थे। जो मरीज़ सर्जरी करवाने से डरते थे, उन्हें मनाने के लिए डॉ. शेषाचारी के पास भेजा जाता था।

सर्जरी की पढ़ाई के दौरान मेडिकल विद्यार्थियों को ऑपरेशन थिएटर जाकर सर्जरी की सारी प्रक्रिया देखने और समझने का मौक़ा मिलता है। शुरुआती दिनों में ही श्यामा प्रसाद को ऑपरेशन थिएटर जाने का मौक़ा मिल गया। वे हर दिन ऑपरेशन थिएटर जाने लगे।

एक दिन वे उस समय ऑपरेशन थिएटर पहुँचे, जब डॉ. श्रीनिवासुलु रेड्डी सर्जरी करने जा रहे थे। डॉ. श्रीनिवासुलु रेड्डी ने जब श्यामा प्रसाद और उनके साथी उमा महेश्वर राव को देखा, तब उन्होंने कहा, "अरे! तुम दोनों अभी बहुत छोटे हो। ऑपरेशन थिएटर के बाहर चले जाओ। किताबें पढ़ो। जब उम्र हो जाए, तब ऑपरेशन थिएटर आना।"

इस पर श्यामा प्रसाद ने कहा, "डॉक्टर साहब, हम इससे पहले भी ऑपरेशन थिएटर आ चुके हैं। हमें किसी बात से डर नहीं लगता। हम सर्जरी की प्रक्रिया सीखना चाहते हैं।"

श्यामा प्रसाद के विश्वास-भरे शब्दों को सुनकर डॉ. श्रीनिवासुलु रेड्डी प्रभावित हुए और उन्हें ऑपरेशन थिएटर में आने की इजाज़त दे दी।

श्यामा प्रसाद और उमा महेश्वर ही दो ऐसे मेडिकल विद्यार्थी थे, जो नियमित रूप से ऑपरेशन थिएटर जाने लगे थे। बाक़ी विद्यार्थी अनिवार्य कहे जाने पर ही ऑपरेशन थिएटर जाया करते थे। लेकिन श्यामा प्रसाद और उमा महेश्वर पर एक जुनून सवार हो गया था। दोनों को ऑपरेशन थिएटर में सर्जरी की प्रक्रिया देखने में मज़ा आने लगा था।

सर्जन को अपेंडिक्स का ऑपरेशन करता हुआ देखकर श्यामा प्रसाद को सर्जरी से मुहब्बत हो गयी। अपेंडिक्स के ऑपरेशन को अपेंडेक्टॉमी कहा जाता है। इस सर्जरी में संक्रमित अपेंडिक्स को शरीर से बाहर निकाला जाता है। अपेंडिक्स एक पतली और छोटी-सी ट्यूब होती है, जिसकी लंबाई दो से तीन इंच होती है। बड़ी आँत में जहाँ पर मल बनता है, वहाँ पर ये आँत से जुड़ी होती है। कभी-कभी अपेडिंक्स में संक्रमण हो जाता है, जिससे यह सूज जाती है। इस कारण मरीज़ के पेट के निचले हिस्से में दाहिने तरफ़ भयावह दर्द होना, बुखार आना, भूख कम लगना या उल्टी होने जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। यदि अपेंडिक्स पेट के अंदर फूट जाए, तो बीमारी ज़्यादा बढ़ सकती है और जानलेवा भी साबित हो सकती है। अपेंडिक्स के दर्द से छुटकारा पाने के लिए अपेंडेक्टॉमी ऑपरेशन किया जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान पेट में एक चीरा लगाया जाता है, जिसके ज़रिये डॉक्टर अपेडिंक्स को बाहर निकालकर बाद में पेट में टाँके लगाकर सिलाई कर देते हैं। अपेंडिक्स के संक्रमित होने पर उसे शरीर के बाहर निकालना बेहद ज़रूरी होता है। अपेंडिक्स के संक्रमित

होने को आपात स्थिति माना जाता है।

जिस आसानी से सर्जन आपात स्थिति में अपेंडिक्स को शरीर से बाहर निकाला करते थे, उसे देखकर श्यामा प्रसाद बहुत प्रभावित हुए।

ये वे दिन थे, जब डॉक्टरों में सबसे ऊँचा स्थान सर्जनों का माना जाता था। डॉक्टर दो क़िस्म के होते हैं—क्लिनिकल और सर्जिकल। क्लिनिकल डॉक्टर दवाइयों के ज़रिये मरीज़ का इलाज करते हैं, जबकि सर्जिकल डॉक्टर सर्जरी के ज़रिये।

उन दिनों भारत में सर्जन को हीरो माना जाता था। लोगों की यह धारणा थी कि मजबूत दिल और तेज़ दिमाग़ वाले डॉक्टर ही सर्जन बन पाते हैं। क्लिनिकल डॉक्टर बनना आसान है, लेकिन सर्जन बनना मुश्किल है। उन दिनों कई युवतियाँ भी सर्जनों पर जान छिड़कती थीं। पिता सुंदरय्या भी सर्जन के रूप में मशहूर हुए थे। यही वे सब कारण थे, जिनकी वजह से श्यामा प्रसाद ने सर्जन बनने का मन बना लिया था।

श्यामा प्रसाद को प्रसूति, स्त्री-रोग विभाग में काम करते हुए भी बहुत कुछ सीखने को मिला। डॉ. पी. एस. सावित्री इस विभाग की मुखिया थीं। मेहनती स्वभाव और लगन की वजह से वे श्यामा प्रसाद को बहुत पसंद करती थीं। श्यामा प्रसाद अपनी बैच के सबसे मेहनती मेडिकल विद्यार्थी थे। जितना समय वे अस्पताल में बिताते थे, उतना समय कोई नहीं बिताता था। वे अस्पताल और ऑपरेशन थिएटर में रात-दिन काम करने को तैयार रहते थे।

उन दिनों एमबीबीएस के विद्यार्थियों को एक या दो बार ही प्रसूति-कक्ष में प्रसूति की प्रक्रिया देखने का मौक़ा दिया जाता था। विद्यार्थियों को योनि-परीक्षा के मौक़े भी कम मिलते थे। लेकिन डॉ. सावित्री ने श्यामा प्रसाद को कई बार योनि-परीक्षा के मौक़े दिये। इतना ही नहीं, भी प्रसूति की प्रक्रिया में मदद करने का मौक़ा भी कई बार दिया।

डॉ. सावित्री का कहना था कि डॉक्टर चाहे मर्द हो या औरत, उसे प्रसूति की प्रक्रिया के बारे में जानकारी होनी चाहिए। हर डॉक्टर को सफल जचगी कराने में सक्षम होना चाहिए। कई डॉक्टर ऐसे होते हैं, जिन्हें गाँवों में काम करना पड़ता है। गाँवों में महिला डॉक्टर के न होने की स्थिति में पुरुष डॉक्टर को जचगी करवानी चाहिए।

डॉ. सावित्री ने चिकित्सकीय गर्भपात के तरीक़े भी श्यामा प्रसाद को सिखाये। उन दिनों अनचाहे गर्भ से छुटकारा पाने के लिए महिलाएँ सरकारी अस्पताल ही आया करती थीं। निजी अस्पताल बहुत कम थे। गर्भावस्था की चिकित्सा समाप्ति के लिए क़ानून भी उतने कड़े नहीं थे, जितने कि आज हैं। चिकित्सकीय गर्भपात करने की ज़िम्मेदारी डॉ. सावित्री की हुआ करती थी। कई बार तो एक दिन में उन्हें चार से पाँच चिकित्सकीय गर्भपात करने पड़ते थे। इसी वजह से उन्होंने चिकित्सकीय गर्भपात में श्यामा प्रसाद की मदद लेनी शुरू की। जब डॉ. सावित्री को यक़ीन हो गया कि श्यामा प्रसाद ख़ुद से चिकित्सकीय गर्भपात कर सकते हैं, तब वे महिलाओं का गर्भपात उन्हीं से करवाने लगीं। श्यामा प्रसाद एक के बाद एक चिकित्सकीय गर्भपात करने लगे। कई बार तो मामले इतने ज़्यादा आ जाया करते थे कि उन्हें ऑपरेशन थिएटर में घंटों बिताने पड़ते थे। इस दौरान न उन्हें खाने को कुछ मिलता था, न ही पीने को। चूँकि काम करने, अनुभव हासिल करने और निपुण बनने की ललक थी, श्यामा प्रसाद घंटों ऑपरेशन थिएटर में काम करते थे।

नेत्र-रोग विभाग में काम करते हुए भी श्यामाप्रसाद ने बहुत सीखा। आम तौर पर जो मेडिकल विद्यार्थी पहले से यह फ़ैसला ले चुके होते हैं कि वे नेत्र-रोग विशेषज्ञ नहीं बनेंगे, वे इस विभाग की तरफ़ आते भी नहीं थे। ऐसे विद्यार्थी सिर्फ़ औपचारिकताएँ पूरी करते थे। लेकिन श्यामा प्रसाद सबसे जुदा थे। उनमें सीखने की ललक लगातार बढ़ती चली गयी। पिता सुंदरय्या ने उन्हें कई बार बताया था कि सीखने की ललक इन्सान को कामयाब बनाती है। सीखने की प्रक्रिया कभी रुकनी नहीं चाहिए।

श्यामा प्रसाद ने नाक, कान और कंठ विभाग में भी समय ज़ाया नहीं किया। यहाँ पर भी श्यामा प्रसाद ने ज़्यादा समय ऑपरेशन थिएटर में बिताया और यह जाना कि नाक, कान और कंठ में होने वाली बीमारियों का निदान सर्जरी के ज़रिये कैसे किया जाता है।

सभी को हैरान करने वाली बात यह थी कि श्यामा प्रसाद दंत-रोग विभाग में भी सीखने गये। एमबीबीएस की पढ़ाई करने वाले विद्यार्थी सबसे कम समय इस विभाग में बिताते हैं। इस विभाग के प्रोफ़ेसर भी श्यामा प्रसाद में सीखने की अद्भुत

ललक से बहुत प्रभावित हुए। कुछ ही दिनों में श्यामा प्रसाद ने दाँतों का ऑपरेशन करना भी सीख लिया।

हड्डी रोग विभाग में श्यामा प्रसाद को सबसे अनूठे और यादगार अनुभव मिले। इस विभाग में स्वयं उनके पिता, यानी डॉ. सुंदरय्या उनके शिक्षक बने।

डॉ. सुंदरय्या सबसे लोकप्रिय शिक्षक थे। वे मेडिकल विद्यार्थियों को हड्डियों की बीमारियों के बारे में बताते थे। वे विद्यार्थियों को इन बीमारियों के निदान के उपायों के बारे में समझाते थे। सुंदरय्या को टूटी हड्डियों को सर्जरी के ज़रिये जोड़ने में महारत हासिल थी। वे न सिर्फ़ श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में पढ़ाते थे, बल्कि अन्य चिकित्सकीय शिक्षा संस्थानों में जाकर डॉक्टरों को हड्डी रोगों के निदान के बारे में बताते थे।

पिता के नाते सुंदरय्या ने अपने बड़े बेटे श्यामा प्रसाद को बहुत कुछ सिखाया था। जीवन को कामयाब बनाने के मंत्र बताये थे। क्या ग़लत है, क्या सही है, इसका बोध कराया था। कठिन समय में आत्मविश्वास बढ़ाया था। जीवन की हर परीक्षा का सामना करने का साहस दिया था।

यह सब शिक्षा श्यामा प्रसाद को घर पर मिली थी। लेकिन अब कॉलेज में उन्हें अपने पिता से सीखना था। घर में श्यामा प्रसाद सुंदरय्या के बेटे थे। लेकिन कॉलेज में वे उनके विद्यार्थी थे। सुंदरय्या के लिए हर विद्यार्थी एक समान था। वे अपने बेटे को अन्य विद्यार्थियों से अलग कर नहीं देख सकते थे। आदर्श शिक्षक थे, इस वजह से सुंदरय्या ने कॉलेज में अपने बेटे के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जैसा कि वे अन्य विद्यार्थियों के साथ करते थे। श्यामा प्रसाद भी यह बात भूल जाते थे कि क्लासरूम में जो उन्हें पढ़ा रहा है, वह उनका पिता है। कॉलेज में सुंदरय्या और श्यामा प्रसाद का रिश्ता गुरु-शिष्य का था।

श्यामा प्रसाद अपने पिता सुंदरय्या के ज्ञान से बहुत प्रभावित हुए। उन्हें लगा कि उनके पिता न सिर्फ़ एक बेहद कामयाब सर्जन है, बल्कि अव्वल दर्ज़े के शिक्षक भी हैं।

सुंदरय्या ने अनुभव किया कि उनका लड़का होनहार है। अन्य सभी विद्यार्थियों से ज़्यादा मेहनती है। जिज्ञासा अमिट है। सुंदरय्या और श्यामा प्रसाद, दोनों एक-दूसरे की क़ाबिलियत पर नाज़ करने लगे। सुंदरय्या को यक़ीन हो गया

कि उनका लड़का कामयाबी की बुलंदियों को छूएगा। वहीं श्यामा प्रसाद को लगा कि उन्हें अपने पिता की तरह बनने के लिए और भी मेहनत करनी पड़ेगी।

श्यामा प्रसाद ने मेडिसिन, त्वचा-विज्ञान जैसे अन्य सभी विभागों में अन्य विद्यार्थियों की तुलना में काफ़ी ज़्यादा समय बिताया।

आम तौर पर एमबीबीएस के विद्यार्थी चौथे साल की पढ़ाई के दौरान एमडी, एमएस जैसे पोस्ट ग्रेजुएशन कोर्स की प्रवेश-परीक्षा की तैयारी में जुट जाते हैं। अन्य साथियों की तरह श्यामा प्रसाद भी इस प्रवेश-परीक्षा की तैयारी में जुट गये।

एक दिन सुंदरय्या ने श्यामा प्रसाद से पूछा, "बेटा, क्या तुम भी मेरी तरह ऑर्थोपेडिक सर्जन बनोगे?"

इस सवाल के जवाब में श्यामा प्रसाद ने तपाक से कहा, "नहीं, मैं ऑर्थोपेडिक सर्जन नहीं बनूँगा। मैं जनरल सर्जन बनना चाहता हूँ।"

यह जवाब सुनकर सुंदरय्या का मन ख़ुशी से भर गया। उन्हें एक बार फिर आभास हुआ कि उनका लड़का अब ख़ुद से बड़े और सही फ़ैसले लेने के क़ाबिल बन गया है।

सुंदरय्या को लगता था कि उनकी देखा-देखी श्यामा प्रसाद भी ऑर्थोपेडिक सर्जन बनेंगे। लेकिन जब सुंदरय्या को यह मालूम हुआ कि उनका लड़का उनसे भी आगे की सोच रहा है, तब उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई।

इस ख़ुशी ने सुंदरय्या के मन में श्यामा प्रसाद की शादी के ख़याल को जन्म दिया। सुंदरय्या ने अपने बड़े बेटे के लिए योग्य जीवन-साथी की तलाश शुरू की। यह तलाश काकिनाडा के रंगराया मेडिकल कॉलेज से एमबीबीएस की पढ़ाई कर रहीं लक्ष्मी राज्यम पर आकर रुकी। लक्ष्मी राज्यम सम्पन्न और प्रतिष्ठित परिवार से थीं। वे ख़ूबसूरत थीं और पढ़ाई-लिखाई में बेहद तेज़। लक्ष्मी राज्यम के पिता वेंकट सुबय्या ओंगोल के निवासी थे और उनका बसों का कारोबार था। लक्ष्मी राज्यम की चार बहनें—विजय लक्ष्मी, इंदु कुमारी, राधा और सरोजा देवी थीं। उनका एक भाई था। भाई अक्कमेश्वर राव भी कारोबार किया करते थे। लक्ष्मी राज्यम अपने माता-पिता की दूसरी संतान थीं। श्यामा प्रसाद की माँ को भी लक्ष्मी राज्यम बेहद पसंद आयीं। रिश्ता पक्का कर दिया गया।

20 अगस्त, 1977 को श्यामा प्रसाद और लक्ष्मी राज्यम परिणय-सूत्र में बँध गये। शादी के समय लक्ष्मी राज्यम अपनी हाउज़ सर्जनशिप पूरी कर चुकी थीं।

श्यामा प्रसाद हाउज़ सर्जनशिप कर रहे थे। शादी के बाद लक्ष्मी राज्यम श्यामा प्रसाद के घर आ गयीं। श्यामा प्रसाद नियमित रूप से अस्पताल जा रहे थे और अपनी हाउज़ सर्जनशिप करने में व्यस्त थे। पीजी कोर्स की प्रवेश-परीक्षा की तैयारी भी साथ ही साथ चल रही थी। उधर लक्ष्मी राज्यम भी प्रवेश-परीक्षा की तैयारी में जुट गयीं।

इसी दौरान श्यामा प्रसाद ने शानदार नंबरों के साथ एमबीबीएस की डिग्री हासिल की। श्री वेंकटेश्वर कॉलेज की प्रिंसिपल डॉ. सावित्री उनके प्रदर्शन से इतना प्रभावित थीं कि उन्होंने श्यामा प्रसाद के बोनाफाईड सर्टिफ़िकेट पर 'वेरी गुड' लिखा। शायद ही कोई ऐसा मेडिकल विद्यार्थी था, जिसके लिए 'वेरी गुड' लिखा गया था। श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में श्यामा प्रसाद पहले ऐसे मेडिकल विद्यार्थी थे, जिनके सर्टिफ़िकेट में 'वेरी गुड' लिखा गया। एमबीबीएस की परीक्षा में प्रथम रैंक पाने वाले विद्यार्थी के सर्टिफ़िकेट में भी सिर्फ़ 'गुड' लिखा गया था।

प्रवेश-परीक्षा कर्नूल में हुई। पति-पत्नी, दोनों ने प्रवेश-परीक्षा लिखी। पहले अटेम्प्ट में ही दोनों की सीट पक्की हो गयी। हर आवेदक को पीजी कोर्स के लिए तीन विकल्प देने होते हैं। श्यामा प्रसाद ने एमएस जनरल सर्जरी, एमएस पीडीऐट्रिक्स और एमएस ऑर्थपेडिक्स के विकल्प दिये। चूँकि श्यामा प्रसाद और लक्ष्मी राज्यम ने शानदार तरीक़े से प्रवेश-परीक्षा लिखी थी, दोनों को मनचाहे कोर्स में दाख़िला मिल गया।

श्यामा प्रसाद को श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में ही एमएस जनरल सर्जरी कोर्स में दाख़िला मिला गया। लक्ष्मी राज्यम को भी इसी कॉलेज में डिप्लोमा इन ऑब्सेट्रिक एंड गाइनकालजी कोर्स में सीट मिल गयी। दोनों ने आगे की पढ़ाई शुरू की। इसी दौरान श्यामा प्रसाद की बहन मैथिली को भी श्री वेंकटेश्वर कॉलेज में सीट मिल गयी। अपने पिता और दोनों भाइयों से प्रभावित होकर मैथिली और शोभा ने भी डॉक्टर बनने का मन बना लिया था। गोपी कृष्णा ने 1973 में डॉक्टरी पढ़ाई शुरू की, जबकि मैथिली को 1975 और शोभा को 1976 में एमबीबीएस कोर्स में दाख़िला मिला। सबसे ख़ास बात यह है कि सुंदरय्या की चारों संतानों को तिरुपति के श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज से एमबीबीएस कोर्स करना का मौक़ा मिला।

अध्याय 7

सर्जरी में निपुणता हासिल करने के लिए ऑपरेशन थिएटरों में किये दिन-रात एक

उन दिनों एमबीबीएस के कई विद्यार्थी पीजी कोर्स की प्रवेश परीक्षा के साथ-साथ अमेरिका में उन्नत स्तरीय मेडिकल शिक्षा के लिए होने वाली परीक्षा की भी तैयारी करते थे। आमतौर पर यह तैयारी तीसरे या फिर चौथे साल शुरू हो जाती थी। विद्यार्थियों ने अलग-अलग डॉक्टरों से सुना था कि मेडिकल शिक्षा हासिल करने के लिए अमेरिका से बेहतर जगह दुनिया में दूसरी कोई नहीं है। चिकित्सा-विज्ञान से जुड़े लोग यह जानते थे कि दुनिया के श्रेष्ठ मेडिकल कॉलेज अमेरिका में हैं। दुनिया के सबसे श्रेष्ठ चिकित्सक और सर्जन अमेरिका में हैं। इतना ही नहीं, चिकित्सा-विज्ञान में अमेरिकी वैज्ञानिक और डॉक्टर नित नये सफल प्रयोग कर रहे हैं। अमेरिका के कई अस्पताल अत्याधुनिक तकनीक से लैस हैं। इन्सानी शरीर में होने वाली अलग-अलग बीमारियों का पता लगाने के लिए नयी-नयी मशीनों का ईजाद अमेरिका में किया जा रहा है। अब तक लाइलाज समझी जाने वाली बीमारियों के इलाज के तरीक़े भी इसी देश में ढूँढे जा रहे हैं।

उन दिनों अमेरिका के किसी अस्पताल में 'रेजीडेंसी' करने या फिर 'फ़ेलोशिप प्रोग्राम' में दाख़िला लेने के लिए एजुकेशनल कमीशन फॉर फॉरेन मेडिकल ग्रेजुएट्स की परीक्षा पास करनी पड़ती थी। श्यामा प्रसाद ने यह परीक्षा लिखने और पास होकर अमेरिका में मेडिकल शिक्षा हासिल करने का मन बना लिया। एक दिन श्यामा प्रसाद ने अपनी इसी इच्छा के बारे में पिता को बताया। श्यामा प्रसाद को लग रहा

था कि पिता फट-से हाँ कर देंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। सुंदरय्या ने श्यामा प्रसाद से कहा, "देखो श्याम, तुम अकेले मेरे बेटे नहीं हो। मेरा एक और बेटा है। दो बेटियाँ हैं। मुझे पिता के नाते कई ज़िम्मेदारियाँ निभानी हैं। दोनों बेटियों की शादी करनी है। तुम तो जानते हो ... आज-कल लड़की की शादी करने के लिए कितना ज़्यादा ख़र्च होता है। मैं इस हालत में नहीं हूँ कि अमेरिका में पढ़ाई के लिए होने वाले ख़र्च का बोझ उठा सकूँ।"

सुंदरय्या यहीं नहीं रुके। उन्होंने आगे कहा, "अगर हर कोई अमेरिका चला जाएगा, तो भारत में लोगों का इलाज कौन करेगा? हमें भारत में भी नयी चिकित्सा-तकनीकों का ईजाद करना होगा। बीमारियों के इलाज की आसान तकनीकें पता लगानी होंगी। भारत में शोध और अनुसंधान को बड़े पैमाने पर आगे बढ़ाना होगा। भारत में अत्याधुनिक तकनीक को लाना होगा। यह काम वे लोग कर सकते हैं, जिनके मन में देश के प्रति प्रेम है, सम्मान है।"

साठ और सत्तर के दशक में एजुकेशनल कमीशन फॉर फॉरेन मेडिकल ग्रेजुएट्स की परीक्षा भारत में नहीं हुआ करती थी। यह परीक्षा देने के लिए भारतीय विद्यार्थियों को सिंगापुर या मनीला जाना पड़ता था। परीक्षा के लिए जाने-आने और वहाँ कुछ दिन रहने का ख़र्च क़रीब एक लाख रुपये होता था। उन दिनों यह बड़ी रक़म मानी जाती थी। एक मायने में यह रक़म सुंदरय्या की साल-भर की तनख़्वाह के बराबर थी। चूँकि सुंदरय्या पर अपनी अन्य संतानों की शिक्षा की ज़िम्मेदारी भी थी, उन्होंने यह ख़र्च वहन करने से मना कर दिया।

श्यामा प्रसाद ने अमेरिका जाकर आगे की पढ़ाई करने की दिली इच्छा के बारे में पत्नी लक्ष्मी राज्यम को भी बताया था। जब लक्ष्मी राज्यम को इस बात का पता चला कि ससुर ने पति को एक लाख रुपये देने में अपनी असमर्थता जतायी है, तब उन्होंने अपने परिवारवालों से मदद करवाने की सोची। लेकिन श्यामा प्रसाद ने ससुरालवालों की मदद लेने से साफ़ इन्कार कर दिया। वे स्वाभिमानी थे। पिता के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति से आर्थिक मदद नहीं लेते थे। पिता उनके लिए सब कुछ थे। बहुत कुछ पिता पर निर्भर था। अपने हर फ़ैसले के बारे में श्यामा प्रसाद पिता को बताते थे। पिता की सलाह के बग़ैर कोई बड़ा फ़ैसला नहीं लेते थे।

ससुरालवालों ने श्यामा प्रसाद को एक और प्रस्ताव दिया। ससुर सम्पन्न थे।

उनके पास ख़ूब धन-दौलत थी। काफ़ी जायदाद थी। ससुर चाहते थे कि श्यामा प्रसाद एमबीबीएस की डिग्री लेने के बाद ओंगोल में अपना घर बसा लें। वे श्यामा प्रसाद के लिए एक नर्सिंग होम बनवाने को तैयार थे। उनकी इच्छा थी कि दामाद और बेटी ओंगोल में बस जाएँ और वहीं अपने बनाये नर्सिंग होम में बीमार लोगों का इलाज करें। लेकिन श्यामा प्रसाद ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। श्यामा प्रसाद ने ठान ली कि वे भारत में पोस्ट ग्रेजुएट कोर्स करेंगे और आत्मनिर्भर बनेंगे।

पिता सुंदरय्या के प्रभाव की वजह से सर्जरी श्यामा प्रसाद का सबसे पसंदीदा विषय था। पीजी कोर्स की शुरुआत से ही श्यामा प्रसाद ऑपरेशन थिएटर जाने लगे। सर्जरी की प्रक्रिया देखकर समझने की कोशिश में जुट गये। वे जानते थे कि एक शानदार सर्जन बनने के लिए सिर्फ़ किताबी ज्ञान ज़रूरी नहीं है। सिर्फ़ सर्जरी की प्रक्रिया देखते हुए कोई विद्यार्थी बढ़िया सर्जन नहीं बन सकता है। एक अच्छा सर्जन बनने के लिए विद्यार्थी-जीवन में ज़्यादा से ज़्यादा ऑपरेशन करने ज़रूरी होते हैं। जितनी ज़्यादा सर्जरियाँ होंगी, हाथ उतना साफ़ होगा।

मास्टर ऑफ़ सर्जरी (एमएस) और डॉक्टर ऑफ़ मेडिसिन (एमडी), दोनों पीजी कोर्स हैं। दोनों कोर्सों में मेडिकल विद्यार्थियों को अलग-अलग बीमारियों और उनके इलाज के बारे में बताया जाता है। एमएस की पढ़ाई के दौरान विद्यार्थियों को सर्जरी के ज़रिये बीमारियों के इलाज की प्रक्रिया सिखायी जाती है। एमडी कोर्स में दवाइयों के ज़रिये बीमारियों के इलाज की पद्धतियाँ बतायी जाती हैं। एमएस कोर्स करने वाला डॉक्टर सर्जन कहलाता है। एमडी का कोर्स करने वाले डॉक्टर को फिज़िशियन कहते हैं। एक फिज़िशियन सर्जन के रूप में काम नहीं कर सकता है। लेकिन एक सर्जन, जिसे दवाओं का ज्ञान है, वह फिज़िशियन के रूप में काम कर सकता है। फिज़िशियन मरीज़ों के इलाज के लिए किसी उपकरण का इस्तेमाल नहीं करते, जबकि सर्जन ऑपरेशन करते हैं और ऑपरेशन में कई उपकरणों का इस्तेमाल होता है। एमडी और एमएस, दोनों कोर्सों की अवधि तीन साल की है। कोर्स के दौरान शोध और अनुसंधान भी करना पड़ता है। लिखित और मौखिक परीक्षाएँ देने होती हैं।

अच्छा और प्रभावी फिज़िशियन बनने के लिए मेडिकल विद्यार्थी को ज़्यादा समय अलग-अलग बीमारियों से परेशान मरीज़ों के इलाज में लगाना होता है।

जबकि एक अच्छा और प्रभावी सर्जन बनने के लिए ज़्यादा समय ऑपरेशन थिएटर में बिताना पड़ता है।

चूँकि पिता सुंदरय्या मेडिकल कॉलेज में प्रोफ़ेसर थे, उन्हें कॉलेज प्रबंधन की ओर से बंगला आवंटित किया गया था। यह बंगला मेडिकल कॉलेज परिसर में था। चूँकि कॉलेज और मकान पास में थे, श्यामा प्रसाद को ज़्यादा से ज़्यादा समय कॉलेज और अस्पताल में बिताने का मौक़ा मिला।

जिस साल श्यामा प्रसाद ने एमएस कोर्स में दाख़िला लिया था, उससे दो साल पहले श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में पीजी कोर्स की शुरुआत हुई थी। यानी, श्यामा प्रसाद तीसरे बैच के विद्यार्थी थे। चूँकि एमएस कोर्स की पढ़ाई तीन साल की होती है, श्यामा प्रसाद को अपने सीनियर्स के साथ काम करने का मौक़ा मिला।

एमएस कोर्स के दौरान विद्यार्थियों के अलग-अलग समूह बनाये जाते है। हर समूह को एक 'यूनिट' विशेष में काम करना होता है। श्यामा प्रसाद को 'थर्ड' यूनिट में जगह मिली। इस यूनिट में एमएस तीसरे साल के विद्यार्थी थे रमेश कुमार और दूसरे साल के विद्यार्थी थे राजगोपाल। इस यूनिट के मुखिया थे प्रोफ़ेसर शेषाचारी। शेषाचारी की गिनती आंध्रप्रदेश के सबसे प्रभावी सर्जनों में होती थी। वे अपने विद्यार्थियों से बहुत प्यार किया करते थे और काफ़ी समय उनके साथ बिताते थे। ऑपरेशन थिएटर में विद्यार्थियों को सर्जरी की प्रक्रिया समझाने के साथ-साथ वे उन्हें सर्जरी में मदद करने का मौक़ा भी देते थे। जब उन्हें यह यक़ीन हो जाता था कि विद्यार्थी ख़ुद से सर्जरी करने के क़ाबिल है, तब वे विद्यार्थी के हाथों सर्जरी करवाते थे।

पहले साल श्यामा प्रसाद को बहुत मेहनत करनी पड़ी। सबसे जूनियर विद्यार्थी होने की वजह से उन पर काम का बोझ बहुत ज़्यादा था। उन्हें हर दिन सुबह सात बजे कॉलेज पहुँचना पड़ता। कॉलेज पहुँचते ही श्यामा प्रसाद सबसे पहले वार्ड में मरीज़ों से मिलते। मरीज़ों और उनके परिजनों से बातचीत करते। उन्हें बीमारी और बीमारी को दूर करने के लिए की जाने वाली सर्जरी के बारे में बताते। इसी दौरान करीब साढ़े आठ बजे पीजी कोर्स के सीनियर विद्यार्थी अस्पताल पहुँचते। वे अब तक श्यामा प्रसाद के किये काम की समीक्षा करते और अगर कोई ग़लती हुई हो, तो उसे सुधारते। अधूरा काम पूरा करने की ज़िम्मेदारी इन्हीं सीनियर विद्यार्थियों की होती। ठीक नौ बजे प्रोफ़ेसर अस्पताल पहुँच जाते और यूनिट के सभी विद्यार्थियों के काम

की समीक्षा करते। इसके बाद सारा काम ऑपरेशन थिएटर में होता। हफ़्ते में एक दिन जूनियर विद्यार्थी को ऑपरेशन थिएटर में काम करने का मौक़ा मिलता। बाक़ी के दिन उन्हें या तो क्लासरूम में पढ़ाया जाता या फिर शोध-अनुसंधान की ज़िम्मेदारी सौंपी जाती।

श्यामा प्रसाद को अपनी यूनिट के सीनियर विद्यार्थियों - रमेश कुमार और राजगोपाल से बहुत मदद मिली। दोनों ने श्यामा प्रसाद को कई छोटी सर्जरी-प्रक्रियाओं के बारे में सिखाया। ऑपरेशन थिएटर में रमेश और राजगोपाल सर्जरी करते हुए श्यामा प्रसाद को सिखाने लगे। हर यूनिट में जूनियर विद्यार्थियों को सीनियर विद्यार्थी सिखाते हैं। जो कुछ सीनियर विद्यार्थियों ने सीखा होता है, उन्हें वे अपने जूनियर को सिखाते हैं। जब जूनियर आगे चलकर सीनियर बनते हैं, तब वे भी अपने जूनियर विद्यार्थियों को सिखाते हैं। यूनिट में सारा काम एक प्रोफ़ेसर की निगरानी में होता है। प्रोफ़ेसर सीनियर और जूनियर विद्यार्थियों को सिखाते हैं। मेडिकल कॉलेज में यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। रमेश कुमार और राजगोपाल दोनों उन्नत दर्ज़े के प्रशिक्षु सर्जन थे। तरह-तरह की सर्जरियाँ करते-करते वे अपने अनुभव और ज्ञान को लगातार बढ़ा रहे थे। सर्जरियों के दौरान रमेश कुमार और राजगोपाल की मदद करते हुए श्यामा प्रसाद ने बहुत कुछ सीखा। दोनों सीनियरों ने कई बार श्यामा प्रसाद को सर्जरी करने के मौक़े दिये। श्यामा प्रसाद ने फोड़ों को मिटाकर पीप निकालने से सर्जरी-प्रक्रिया सीखने की शुरुआत की थी। आगे चलकर कुछ महीनों में ही वे अपेंडिक्स, पाइल्स, हर्निया के ऑपरेशन भी करने लगे।

जिस तरह श्यामा प्रसाद ऑपरेशन थिएटर में सर्जनों की मदद करते थे, उसे देखकर प्रोफ़ेसर शेषाचारी तारीफ़ किये बिना ख़ुद को नहीं रोक पाते थे। ऑपरेशन थिएटर में काम करने के लिए श्यामा प्रसाद का उत्साह और जोश देखते ही बनता था। प्रोफ़ेसर शेषाचारी ने कई बार कहा, “श्याम ईज़ एन एसेट फॉर मी।”

एमएस के हर विद्यार्थी को शोध-अनुसंधान के लिए एक विषय चुनना पड़ता है। तीन साल के दौरान शोध-अनुसंधान का काम पूरा कर एक शोध-पत्र प्रस्तुत करना होता है। एमएस की डिग्री हासिल करने के लिए शोध-पत्र प्रस्तुत करना अनिवार्य है। शोध-पत्र का मौलिक होना बेहद ज़रूरी है। श्यामा प्रसाद ने ‘हाथ-पाँव में होने वाले सॉफ़्ट टिशू ट्यूमर’ को अपने शोध का विषय चुना।

साल 1979 की शुरुआत में लक्ष्मी राज्यम गर्भवती हुईं। उस समय श्यामा प्रसाद और लक्ष्मी राज्यम, दोनों अपने पीजी कोर्स के पहले साल में थे। गर्भधारण करने के बाद भी लक्ष्मी ने डॉक्टरी पढ़ाई जारी रखी, लेकिन वे सारी सावधानियाँ बरतीं, जो एक गर्भवती महिला को बरतनी चाहिए।

यह वह समय था, जब मरीज़ से बातचीत कर उसकी समस्या जानना भी एक कला माना जाता था। उन दिनों मरीज़ खुलकर अपनी परेशानी बयां नहीं करते थे। कई कारण थे जिनकी वजह से वे अपनी आदतों, जीवन-शैली के बारे में डॉक्टर को नहीं बताया करते थे।

गाँवों में कई लोग तंबाकू या शराब का सेवन किया करते थे। धूम्रपान और मदिरापान की वजह से उनकी सेहत बिगड़ जाती थी। वे बीमारियों का शिकार हो जाया करते थे। कई लोग उस समय अस्पताल पहुँचते थे, जब उनकी हालत बहुत नाज़ुक हो जाती थी। अस्पताल पहुँचने के बाद इनमें से कई मरीज़ डॉक्टरों को सच नहीं बताते थे। इन्हें यह डर सताता था कि अगर वे डॉक्टर को सारी बातें बता देंगे, तो जो बातें उन्होंने अब तक अपने परिवारवालों से छिपायी हैं, वे सभी को पता चल जाएँगी। आने वाले दिनों में सभी लोगों को उनकी आदतों के बारे में पता चल जाएगा। कई लोगों के मन में यह शंका घर कर गयी थी कि अस्पताल जाने से सारे राज़ खुल जाते हैं। इसी शंका की वजह से यौन-रोग के मरीज़ मुँह पर ताला लगा लेते थे।

सरकारी अस्पतालों के डॉक्टरों को सबसे ज़्यादा परेशानी महिलाओं से होती थी। शर्म के मारे कई महिलाएँ पुरुष डॉक्टरों का सामना करने से कतराती थीं। वे अपनी परेशानी के बारे में न अपने परिजनों से खुलकर बात करती थीं, न ही डॉक्टरों से। महिलाओं की परेशानी जानने के लिए महिला डॉक्टरों या फिर नर्सों की मदद लेनी पड़ती थी। और तो और, सरकारी अस्पताल आने वाले ज़्यादातर मरीज़ या तो अशिक्षित होते थे या कम-पढ़े लिखे। इस वजह से भी ये अपनी बात साफ़ तौर पर डॉक्टर के सामने नहीं रख पाते थे।

डॉक्टरों और मेडिकल विद्यार्थियों की एक समस्या यह भी थी कि सरकारी अस्पताल में हमेशा भारी भीड़ हुआ करती थी। अस्पताल कम थे और मरीज़ दूर-दूर से सरकारी अस्पताल आया करते थे। सरकारी अस्पताल हमेशा मरीज़ों से खचाखच

भरे रहते थे। हर मरीज़ से लंबे समय तक बात कर उसकी परेशानी को समझना बड़ी चुनौती हुआ करती थी।

श्यामा प्रसाद को बताया गया कि हर डॉक्टर को मरीज़ से उस समय तक बातचीत करनी चाहिए, जब तक वह बीमारी में बारे में ठोस नतीजे पर न पहुँच जाए। डॉक्टर को मरीज़ से बातचीत के लिए समय निकालना ही पड़ेगा। मरीज़ को कौन-सी बीमारी है, उसकी हालत कितनी गंभीर, बीमारी से कितना ख़तरा है, बीमारी को दूर करने के लिए क्या किया जाना चाहिए, ये सब बातें जानने के लिए न सिर्फ़ मरीज़ बल्कि उसके परिजनों से भी खुलकर बातचीत करना ज़रूरी हो जाता है।

श्यामा प्रसाद और अन्य सभी मेडिकल विद्यार्थियों को बताया गया कि तकलीफ़ होने पर ही इन्सान अस्पताल आता है। इसी वजह से हर डॉक्टर को मरीज़ की परवाह करनी चाहिए। अस्पताल में किसी भी मरीज़ की अनदेखी नहीं होनी चाहिए। डॉक्टर का दायित्व है कि वह मन से हर मरीज़ की देखभाल करे और पूरी सेवा प्रदान करे।

कई मरीज़ डॉक्टर को भगवान का रूप मानते हैं। मरीज़ भरोसे के साथ अस्पताल आता है। उसे भरोसा होता है कि डॉक्टर उसकी बीमारी दूर करेंगे। यही वजह है कि मरीज़ जब अपने डॉक्टर पर भरोसा दिखाता है, तब डॉक्टर मरीज़ को सही चिकित्सा देने के लिए बाध्य हो जाता है।

मेडिकल विद्यार्थियों से यह भी कहा गया कि डॉक्टर और मरीज़ के बीच विश्वास का संबंध स्थापित होना चाहिए। मरीज़ से अच्छा व्यवहार काफ़ी मायने रखता है। अच्छे संवाद के ज़रिये डॉक्टर आने वाले ख़तरे को पहले से भाँप सकते हैं और चिकित्सकीय मुसीबत को टाल सकते हैं। एक शिक्षक ने मेडिकल विद्यार्थियों से कहा, "मरीज़ों की आधी परेशानी डॉक्टर के अच्छे व्यवहार से दूर हो जाती है। डॉक्टर को हमेशा संवेदनशील होना चाहिए। मरीज़ के प्रति आत्मीयता का भाव रखना चाहिए। डॉक्टर के व्यवहार का मरीज़ पर काफ़ी असर पड़ता है। अगर व्यवहार अच्छा और आत्मीय रहा, तब मरीज़ के मन यह विश्वास जागता है कि उसकी बीमारी जल्द दूर हो जाएगी। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी डॉक्टर के अच्छे व्यवहार की वजह से बीमारी को दूर करने में आसानी होती है।" श्यामा प्रसाद को कॉलेज में सिर्फ़ डॉक्टरी ज्ञान ही हासिल नहीं हुआ, बल्कि उन्हें व्यवहार-कुशलता

और संवाद-कौशल भी सीखने को मिला।

खुलकर बात करने के लिए मरीज़ों को मनाने के मक़सद से श्यामा प्रसाद ने एक अलग तरकीब अपनायी। जो मरीज़ बात करने से कतराते थे, श्यामा प्रसाद उनकी असहजता दूर करने के लिए उन्हें फल या मिठाइयाँ देने लगे। एक मेडिकल विद्यार्थी के हाथों से फल या मिठाई पाने पर मरीज़ ख़ुश हुआ करते थे। उन्हें लगता था कि मेडिकल विद्यार्थी में अपनापन है। श्यामा प्रसाद की यह तरकीब काफ़ी कारगर साबित हुई। कॉलेज के प्रोफ़ेसर भी मरीज़ों से श्यामा प्रसाद के व्यवहार से काफ़ी संतुष्ट और प्रसन्न थे।

मरीज़ों और उनके परिजनों से बातचीत करते-करते श्यामा प्रसाद ने व्यवहार-कौशल ने निपुणता हासिल कर ली। सर्जरी से पहले मरीज़ को मानसिक तौर पर तैयार करने की कला भी उन्होंने अच्छे से सीख ली।

प्रोफ़ेसर शेषाचारी श्यामा प्रसाद के कामकाज करने के तरीक़े से बहुत प्रभावित थे। वे उन्हें नियमित रूप से ऑपरेशनों में शामिल करने लगे। जटिल ऑपरेशन करने वाली टीम में भी श्यामा प्रसाद को जगह दी जाने लगी। एमर्जेंसी वार्ड में आने वाले मरीज़ों की प्राथमिक जाँच करने की ज़िम्मेदारी श्यामा प्रसाद को सौंपी जाने लगी।

एक दिन की बात है। एक व्यक्ति को गंभीर हालत में अस्पताल लाया गया। इस व्यक्ति की उम्र पैंतीस साल थी। श्यामा प्रसाद ड्यूटी पर थे। पूछे जाने पर परिजनों ने बताया कि यह व्यक्ति एक दुर्घटना का शिकार हुआ है। जाँच करने पर श्यामा प्रसाद ने पाया कि मरीज़ के पेट और छाती में गहरा घाव हुआ है और ख़ून बह रहा है। जाँच के दौरान श्यामा प्रसाद ने ग़ौर किया कि व्यक्ति की तिल्ली को गहरा घाव हुआ है और इसमें से भी ख़ून का रिसाव हो रहा है।

यह वाकई गंभीर स्थिति थी। अगर तिल्ली से ख़ून के बहाव को तुरंत न रोका जाता, तो मरीज़ की जान जा सकती थी। श्यामा प्रसाद ने बिना समय गँवाये प्रोफ़ेसर को इस मामले की जानकारी दी। प्रोफ़ेसर ने मरीज़ की जाँच करने के बाद फ़ैसला लिया कि तुरंत ऑपरेशन किया जाएगा। मरीज़ को ऑपरेशन थिएटर ले जाया गया। ऑपरेशन के दौरान श्यामा प्रसाद भी मौजूद थे। डॉक्टर शेषाचारी ने ऑपरेशन करने की ज़िम्मेदारी फ़ाइनल ईयर के विद्यार्थी रमेश कुमार को सौंपी। यह देखकर कई लोग हैरान रह गये। ऑपरेशन मामूली नहीं था। ऑपरेशन जटिल था और थोड़ी-सी

गड़बड़ी की वजह से मरीज़ की जान जाने का ख़तरा था। लेकिन शेषाचारी को अपने विद्यार्थी पर पूरा भरोसा था। प्रोफ़ेसर के निरीक्षण में रमेश कुमार ने ऑपरेशन शुरू किया। सबसे पहले चोटिल तिल्ली को काटकर शरीर से अलग किया। इसके बाद पैड लगाकर ख़ून के बहाव को रोका। ऐसा करने से ख़ून का बहना रुक गया और मरीज़ की जान बच गयी।

अठारह साल की उम्र के बाद तिल्ली के शरीर में न रहने से कोई ख़ास अंतर नहीं पड़ता है। तिल्ली का काम शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाये रखना है। इसी में सफ़ेद रक्त कणिकाएँ बनती हैं, जिन्हें लिम्फोसाइट्स कहा जाता है। लिम्फोसाइट्स इन्सानी शरीर में 'फ़र्स्ट लाइन' रोग प्रतिरोधक का काम करती हैं और बाहर से आने वाले किसी भी संक्रमण को शरीर के अंदर फैलने से रोकती हैं। लिम्फोसाइट्स ख़ून की ख़राब कणिकाओं को अलग कर ख़त्म कर देती हैं। तिल्ली में लाल रक्त कणिकाएँ और प्लेटलेट्स रहती हैं, जो थक्का बनने में मदद करती हैं। संक्रमण होने पर तिल्ली ख़राब रक्त कणिकाओं के साथ ही लाल रक्त कणिकाओं को भी ख़त्म करने लगती है, जिससे मरीज़ को नुक़सान होने लगता है। अठारह साल की उम्र तक तिल्ली शरीर का रोग प्रतिरोधक क्षमता संभालती है, लेकिन इसके बाद बोन मैरो, लिम्फ नोड और लिवर जैसे अंग यह काम करने लगते हैं। इसी कारण अठारह साल के बाद तिल्ली को निकालने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। लेकिन तिल्ली के चोटिल होने की स्थिति में इन्सान की जान ख़तरे में पड़ जाती है। अगर सही समय पर ऑपरेशन न किया गया, तो मरीज़ की मौत हो सकती है। तिल्ली के चोटिल होने का मतलब मरीज़ की हालत गंभीर होना है।

प्रोफ़ेसर शेषाचारी ने तिल्ली का ऑपरेशन अपने विद्यार्थी से करवाकर यह बात भी साबित की कि वे अपने शिष्यों को बड़े और जटिल ऑपरेशन करने के क़ाबिल बना चुके हैं। शेषाचारी जैसे अनुभवी और प्रभावी सर्जन के नेतृत्व वाली यूनिट का हिस्सा होने पर श्यामा प्रसाद अपने आप को बहुत ख़ुशनसीब मान रहे थे। शेषाचारी की वजह से श्यामा प्रसाद को भी कई ऑपरेशन करने का मौक़ा मिला।

उन दिनों सर्जन ही शरीर के भीतर से ट्यूमर निकाला करते थे। ट्यूमर को शरीर से निकालने की प्रक्रिया आसान नहीं होती है।

इन्सान के शरीर में अरबों कोशिकाएँ होती हैं। पुरानी कोशिकाएँ मृत हो जाती

हैं और नयी कोशिकाएँ बनती रहती हैं। यही प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। लेकिन किसी कारण से इस प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न हो जाए, और कोशिकाओं की वृद्धि असामान्य हो जाए, तब ये शरीर में गाँठ का रूप ले लेती हैं। इसी गाँठ को सामान्य भाषा में 'ट्यूमर' कहते हैं। डॉक्टरी भाषा में इस गाँठ को 'नियोप्लाज्म' कहा जाता है। शरीर के किसी भी हिस्से में गाँठ होने पर डॉक्टर से जाँच करवाना बेहद ज़रूरी होता है। गाँठ कैंसर भी हो सकती है। यह ज़रूरी नहीं कि हर गाँठ या ट्यूमर कैंसर हो, लेकिन ट्यूमर कैंसर भी हो सकता है।

ट्यूमर दो तरह के होते हैं—सौम्य ट्यूमर और घातक ट्यूमर। सौम्य ट्यूमर धीरे-धीरे बढ़ते हैं, पर ये कैंसर का रूप नहीं लेते। ये शरीर के किसी एक हिस्से में बढ़ते हैं और शरीर के दूसरे हिस्सों में नहीं फैलते। घातक ट्यूमर बड़ी तेज़ी से बढ़ते हैं और कैंसर का रूप ले लेते हैं।

उन दिनों ट्यूमर और कैंसर को लेकर लोगों में जागरूकता नहीं थी। ज़्यादातर लोग शरीर में आने वाली गाँठ को गंभीरता से नहीं लेते थे। यही वजह थी कि जब बीमारी का शरीर पर काफ़ी बुरा असर पड़ने लगता था, तब जान बचाने के मक़सद से मरीज़ अस्पताल की ओर भागे चले आते थे। सबसे बड़ी समस्या यह थी कि लोग ट्यूमर और कैंसर के लक्षण समझ नहीं पाते थे। जब लोगों को देखने, सुनने और बोलने में परेशानी होने लगती थी, तब वे दौड़े-दौड़े अस्पताल पहुँचते थे। कई लोग तो ऐसे थे, जिन्हें परिजन यह कहते हुए अस्पताल लाया करते थे कि मरीज़ की याददाश्त कमज़ोर हो गयी है।

महिलाओं की हालत सबसे ख़राब थी। ज़्यादातर महिलाएँ शरीर के किसी भी हिस्से में गाँठ को असामान्य मानती नहीं थीं। जब हालत बद से बदतर हो जाती थी, तब वे अस्पताल आती थीं। महिलाओं में स्तन कैंसर के मामले लगातार बढ़ रहे थे।

एक दिन की बात है। अठारह साल की एक विवाहित युवती स्तन में गाँठ की शिकायत लेकर अस्पताल पहुँची। श्यामा प्रसाद ड्यूटी पर थे। इस युवती ने श्यामा प्रसाद को जाँच करने नहीं दी। युवती इस बात पर अड़ गयी कि वह जाँच किसी महिला डॉक्टर से करवाएगी। उस समय अस्पताल में कोई महिला डॉक्टर मौजूद नहीं थीं। श्यामा प्रसाद ने युवती को समझाते हुए कहा, "आप घबराइए नहीं।

मैं आपकी जाँच करूँगा। जाँच बहुत ज़रूरी है, आप जो बता रही हैं, उसे देखना बहुत ज़रूरी है। मैं देखे बिना नहीं समझ पाऊँगा कि आपको क्या बीमारी है। आप अच्छे से जान लीजिए... मरीज़ की जाँच करना डॉक्टर की ज़िम्मेदारी है। जब भी कोई डॉक्टर के पास इलाज के लिए आता है, तब उसे शर्माना नहीं चाहिए, घबराना नहीं चाहिए।"

लेकिन युवती नहीं मानी। आख़िरी कोशिश मानकर श्यामा प्रसाद ने कहा, "अगर आप जाँच नहीं करने देती हैं, तो मुझे कोई तकलीफ़ नहीं होगी। जब तक महिला डॉक्टर आएँगी, तब तक आपकी तकलीफ़ बढ़ सकती है। आपकी हालत बिगड़ सकती है। अगर अभी मेरी जाँच से बीमारी का पता चल गया, तो आपका इलाज शुरू कर दिया जाएगा। इलाज में देरी होने से आपको नुक़सान हो सकता है। अगर मामला गंभीर है, तो आपकी जान भी जा सकती है।"

जब युवती ने जान को ख़तरे वाली बात सुनी, तब उसने श्यामा प्रसाद को जाँच करने की इजाज़त दे दी। श्यामा प्रसाद को जाँच से पता चला कि स्तन में गाँठ है और वह काफ़ी बड़ी है। अब तक मिली शिक्षा के आधार पर श्यामा प्रसाद ने अनुमान लगाया कि मामला ट्यूमर का है, या फिर कैंसर का। बीमारी की पुष्टि करने के मक़सद से श्यामा प्रसाद ने बायोप्सी जाँच करवायी। बायोप्सी कैंसर की पुष्टि करने का कारगर तरीक़ा है। बायोप्सी कैंसर के निदान और इलाज, दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। कैंसर का निदान और उसका पता बायोप्सी के परिणामों के आधार पर लगाया जाता है। इन परिणामों के आधार पर इलाज के तरीक़े तय किये जाते हैं। बायोप्सी एक मामूली सर्जिकल प्रक्रिया है, जिसमें शरीर के प्रभावित हिस्सों से कोशिकाओं या ऊतकों का नमूना लेकर माइक्रोस्कोप के ज़रिये उसकी जाँच कर कैंसर की उपस्थिति का पता लगाया जाता है।

बायोप्सी जाँच से साफ़ हो गया कि युवती को 'इनवेसिव डक्टल कार्सिनोमा' है। यह एक प्रकार का स्तन कैंसर है। इनवेसिव से यह तात्पर्य है कि कैंसर 'आक्रमण' कर चुका है या आसपास के स्तन ऊतकों में फैल गया है। डक्टल का मतलब है कि कैंसर दूध-नलिकाओं में शुरू हुआ। कार्सिनोमा शब्द उस कैंसर को संदर्भित करता है, जो त्वचा या अन्य ऊतकों में शुरू होता है।

जब यह बात अस्पताल के अन्य डॉक्टरों को पता चली, तब वे भी हैरान रह गये। उन दिनों इनवेसिव डक्टल कार्सिनोमा के कई मामले आते थे। लेकिन

ज़्यादातर मरीज़ों की उम्र तीस पार होती थी। इनमें से ज़्यादातर मरीज़ बूढ़ी महिलाएँ होती थीं। लेकिन अठारह साल की एक युवती का इस बड़ी बीमारी का शिकार होना बिरली घटना थी।

शेषाचारी ने युवती की जान बचाने के लिए तुरंत ऑपरेशन करने की सलाह दी। ऑपरेशन की तैयारियाँ भी शुरू हो गयीं। लेकिन इससे पहले कि युवती को ऑपरेशन थिएटर ले जाया जाता, उसकी मौत हो गयी। इस मौत से सभी डॉक्टर बहुत दुखी हुए। सभी डॉक्टरों को लगता कि ऑपरेशन से युवती की जान बच जाएगी। लेकिन ऑपरेशन से पहले ही युवती ने दम तोड़ दिया। इससे यह बात साबित हो गयी कि कैंसर युवती के शरीर के अन्य हिस्सों में भी फैल गया था। इस मौत से युवती का पति टूट गया।

इस घटना के बाद श्यामा प्रसाद को लगा कि कैंसर के बारे में लोगों में जागरूकता लायी जानी चाहिए। बिना जागरूकता लाये कैंसर से पीड़ित मरीज़ों की जान नहीं बचायी जा सकती है। जिस बड़ी संख्या में कैंसर के मरीज़ अस्पताल आ रहे थे, उसने श्यामा प्रसाद को कैंसर के बारे में गहराई से शोध करने पर मजबूर किया। उस युवती की मौत के बाद श्यामा प्रसाद ट्यूमर और कैंसर को दूर करने के लिए किये जाने वाले ऑपरेशनों में ज़्यादा दिलचस्पी लेने लगे। उन्हें लगा कि एमएस की डिग्री हासिल कर लेने के बाद जब वे प्रैक्टिस शुरू करेंगे, तब भी कैंसर और ट्यूमर के मरीज़ उनके पास इलाज के लिए आएँगे। ऐसी स्थिति में उन्हें हर तरह के कैंसर के इलाज में सक्षम बनना होगा।

चूँकि श्यामा प्रसाद ने अपने शोध-पत्र के लिए कैंसर को विषय के रूप में चुना था, कैंसर के इलाज की पद्धतियों के प्रति उनकी दिलचस्पी लगातार बढ़ती चली गयी। अपना शोध-पत्र तैयार करने के लिए श्यामा प्रसाद को बहुत पसीना बहाना पड़ा। उस दौर में स्कैनिंग मशीनें नहीं थीं। सीटी स्कैन और एमआरआई स्कैन मशीनों का ईजाद नहीं हुआ था। भारत में अल्ट्रासाउंड मशीनें नहीं आयी थीं। उन दिनों एक्स-रे मशीनों की मदद से ट्यूमर का पता लगाया जाता था। श्यामा प्रसाद ने कैंसर मरीज़ों की एक्स-रे रिपोर्ट जुटायीं। हाथ और पाँव में सॉफ्ट टिशू ट्यूमर के शिकार कई मरीज़ों से बातचीत की। कई सारी किताबें पढ़ीं। कई शोध-पत्रों का अध्ययन किया।

एक बार की बात है। एक मरीज़ पाइल्स यानी बवासीर की शिकायत लेकर अस्पताल पहुँचा। मरीज़ की जाँच करने के बाद डॉक्टरों की टीम ने ऑपरेशन करने का फ़ैसला लिया। डॉ. श्रीनिवासुलु रेड्डी को ऑपरेशन करने की ज़िम्मेदारी मिली। श्रीनिवासुलु रेड्डी अनुभवी सर्जन थे। वे पाइल्स के कई ऑपरेशन कर चुके थे। उन्होंने इस बार ऑपरेशन श्यामा प्रसाद के हाथों करवाने का मन बनाया। श्यामा प्रसाद ऑपरेशन करने को आतुर रहते थे। उनकी दिलचस्पी ज़्यादा से ज़्यादा ऑपरेशन करने में थी। वे ऑपरेशन करने का एक भी मौक़ा नहीं गँवाते थे। श्यामा प्रसाद के जुनून को ध्यान में रखते हुए श्रीनिवासुलु रेड्डी ने उन्हें पाइल्स के इस मरीज़ का ऑपरेशन करने की ज़िम्मेदारी दी।

पाइल्स की समस्या उस समय उत्पन्न होती है, जब गुदा के बाहरी हिस्से में रक्त-वाहिकाएँ सूज जाती हैं। आमतौर पर, गर्भावस्था और हार्मोनल परिवर्तन, या आघात से क्षेत्र में मल-त्याग के दौरान तनाव से ये वाहिकाएँ सूज जाती हैं। कई बार पाइल्स की वजह से मरीज़ को बहुत पीड़ा होती है। वह इस पीड़ा का सह नहीं पाता। समस्या के निदान के लिए सर्जरी की जाती है। उन दिनों पाइल्स के मरीज़ों पर 'हेमरॉयडेक्टमी' की जाती थी। हेमरॉयडेक्टमी एक सर्जिकल प्रक्रिया है। उन दिनों बवासीर के इलाज के लिए यही सबसे प्रभावी प्रक्रिया मानी जाती थी।

हेमरॉयडेक्टमी के दौरान मरीज़ को लोकल एनेस्थीसिया यानी बेहोशी की दवा दी जाती है। सर्जरी के दौरान सूजन वाले शरीर के हिस्से को एक स्केलपेल से काट दिया जाता है। इसके बाद रक्तस्राव को रोका जाता है और फिर चीरा को सिलकर बंद कर दिया जाता है। हेमरॉयडेक्टमी के बाद घाव भरने में आमतौर पर दो से तीन हफ़्ते का समय लगता है। लेकिन इस सर्जिकल प्रक्रिया के बाद भी मरीज़ दर्द महसूस करता है। दर्द को कम करने के लिए मरीज़ को दवाइयाँ दी जाती हैं। सूजन और दर्द को कम करने के लिए आइसपैक का इस्तेमाल किया जाता है। श्यामा प्रसाद ने कई बार ऑपरेशन थिएटर में पाइल्स के ऑपरेशन की प्रक्रिया देखी थी। सर्जनों ने उन्हें इस प्रक्रिया के बारे में समझाया भी था। श्रीनिवासुलु रेड्डी के आदेश का पालन करते हुए श्यामा प्रसाद ने मरीज़ की सर्जरी शुरू की। सर्जरी से जुड़ा हर काम ठीक तरह से हुआ। ऑपरेशन के बाद मरीज़ को वार्ड में शिफ़्ट कर दिया गया। श्यामा प्रसाद और डॉ. श्रीनिवासुलु रेड्डी को लगा कि ऑपरेशन कामयाब हुआ है।

लेकिन ऑपरेशन के अगले दिन मरीज़ के मल-मार्ग से काले रंग का तत्व बाहर निकलने लगा। यह बात जानकर श्यामा प्रसाद को बहुत हैरानी हुई। उन्होंने तुरंत इस बात की जानकारी डॉ. श्रीनिवासुलु रेड्डी को दी। आमतौर पर ज़्यादातर मरीज़ पाइल्स के ऑपरेशन के बाद दर्द की शिकायत करते हैं। कई मरीज़ों को मल-निकासी के समय बहुत दर्द महसूस होता है। लेकिन काले रंग का पदार्थ निकलने का मामला कभी नहीं आया। ऐसा पहली बार हुआ था। डॉ. श्रीनिवासुलु रेड्डी ने इसे गंभीरता से लिया और मल-मार्ग की गहन जाँच करवायी। इतना ही नहीं, उस काले पदार्थ को भी जाँच के लिए लैब भिजवा दिया। जाँच की रिपोर्ट से यह पता चला कि मरीज़ के मलाशय में मेलेनोमा है, यानी कैंसर है। मेलेनोमा के बारे में पता चलते ही श्रीनिवासुलु रेड्डी और श्यामा प्रसाद को करारा झटका लगा। दोनों को एहसास हुआ कि ऑपरेशन से पहले अगर मलाशय की गहराई से जाँच की जाती, तो पहले ही मेलेनोमा का पता चल जाता। ऑपरेशन के दौरान और ऑपरेशन के बाद गहराई से जाँच करने पर मेलेनोमा का पता चल सकता था। इस ऑपरेशन की वजह से श्यामा प्रसाद को ही नहीं बल्कि उनके शिक्षक को भी एक बड़ा सबक सीखने को मिला। गुरु और शिष्य दोनों यह जान गये कि मलाशय से जुड़ा कोई भी ऑपरेशन करने से पहले पूरे मलाशय की गहराई से जाँच करनी चाहिए। ऑपरेशन के दौरान और उसके बाद भी पूरे मलाशय की गहराई से जाँच होनी चाहिए। बीमारी सिर्फ़ एक ही हो, यह ज़रूरी नहीं। एक बीमारी के इलाज के दौरान मलाशय में दूसरी बीमारी का पता चल सकता है। इस घटना के बाद श्यामा प्रसाद ने यह नियम बना लिया कि जब भी मलाशय से जुड़ी किसी बीमारी से परेशान मरीज़ की जाँच करेंगे, तब गहराई से जाँच करेंगे और उस अंग का कोई हिस्सा भी नहीं छोड़ेंगे। यह सही भी है कि इन्सान ग़लतियों से सीखता है।

सरकारी अस्पतालों में 'बर्न केस' के कई मामले आते हैं। ज़्यादातर निजी अस्पतालों में डॉक्टर झुलसे हुए लोगों का इलाज करने से मना कर देते हैं। ऐसे लोगों का इलाज सिर्फ़ सरकारी अस्पताल में संभव हो पाता है। उन दिनों श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज से अनुबद्ध रुया अस्पताल में भी बर्न केस आया करते थे। इन मामलों को सीनियर डॉक्टर देखा करते थे। एक बार एक महिला को बहुत बुरी हालत में अस्पताल लाया गया। यह महिला एक दुर्घटना में झुलस गयी थी। शरीर

का नब्बे फ़ीसदी हिस्सा झुलस गया था। ऐसे मामलों में मरीज़ का बचना नामुमकिन होता है। मरीज़ झुलसने के बाद ज़्यादा समय तक ज़िंदा नहीं रहता। जानकार बताते हैं कि बर्न केस में ज़्यादातर मौत शॉक की वजह से होती है। शरीर झुलसते ही इन्सान को शॉक लगता है। कई मामलों में यह शॉक इतना तगड़ा होता है कि मरीज़ की जान चली जाती है। इस महिला को जिस हालत में लाया गया था, उसे देखकर शेषाचारी को लगा कि यह एक दिन भी ज़िंदा नहीं रह पाएगी। लेकिन जान बचाना डॉक्टर की ज़िम्मेदारी है। जान बचाने की हर मुमकिन कोशिश करना डॉक्टर का कर्तव्य है। शेषाचारी ने महिला का इलाज शुरू किया। सर्जरी के प्रोफ़ेसर ने श्यामा प्रसाद को इस महिला का इलाज करने की ज़िम्मेदारी सौंपी। आमतौर पर पहले साल के पीजी विद्यार्थियों को बर्न के मामले नहीं सौंपे जाते। लेकिन शेषाचारी चाहते थे कि श्यामा प्रसाद बर्न मामलों में भी मरीज़ों का इलाज करना सीखें। श्यामा प्रसाद ने इलाज करना शुरू किया। मरीज़ के शरीर में ताक़त बनी रही, इस मक़सद से श्यामा प्रसाद ने मरीज़ को तरल पदार्थ देना शुरू किया। इलेक्ट्रोलाइट उपचार भी चालू किया। शरीर को इन्फ़ेकशन से बचाने के लिए एंटीबायोटिक दवाएँ देनी शुरू कीं। एक के बाद एक सर्जरी शुरू की। पहले हाथों का ऑपरेशन किया। फिर कोहनी का किया। आगे पाँव पर सर्जरी की। लेकिन मरीज़ की जान नहीं बचायी जा सकी। अगर मरीज़ की जान बच जाती, तो वह एक चमत्कार माना जाता। वैसे भी नब्बे फ़ीसदी से ज़्यादा झुलसी एक महिला का 15 दिन ज़िंदा रहना भी किसी चमत्कार से कम नहीं था। यह इसी वजह से संभव हो पाया क्योंकि श्यामा प्रसाद ने मरीज़ के इलाज और उसकी देखभाल में कोई कमी नहीं छोड़ी थी। जिस दिन महिला अस्पताल आयी थी, उसी दिन से श्यामा प्रसाद ने अपने घर जाना बंद कर दिया था। वे ज़्यादातर समय इस महिला मरीज़ की देखभाल में लगाने लगे। भोजन भी अस्पताल की कैंटीन में किया। लेकिन सारी कोशिशों के बावजूद मरीज़ की मौत हो गयी। मरीज़ की देखभाल और इलाज में जिस समर्पण-भाव से श्यामा प्रसाद ने काम किया, उसे देखकर अस्पताल के सभी डॉक्टर बहुत प्रभावित हुए। प्रोफ़ेसर शेषाचारी के मुख ने अनायास निकाल पड़ा, "श्याम यू आर ए कमिटेड पर्सन। आई याम प्राउड ऑफ़ यू। यू आर एन एसेट टू मी।" त्याग, सेवा और समर्पण-भाव की वजह से श्यामा प्रसाद ने कॉलेज और हॉस्पिटल में कई लोगों का दिल जीत लिया था।

एक दिन तिरुमला के श्री वेंकटेश्वर स्वामी मंदिर के एक पुजारी अपने बेटे को इलाज के लिए अस्पताल लेकर आये। पुजारी प्रोफ़ेसर शेषाचारी के परिचित थे। शेषाचारी ब्राह्मण थे और रीति-रिवाजों का कड़ाई से पालन करते थे। उनकी प्रवित्ति धार्मिक थी। ईश्वर में आस्था थी और नियमित रूप से पूजा-पाठ किया करते थे। वे इस पुजारी को बहुत मानते थे। पुजारी के बेटे को घेंघा बीमारी थी। शरीर में आयोडीन की कमी की वजह से होने वाली इस बीमारी में गला फूल जाता है। आयोडीन की कमी की वजह से थायरायड ग्रंथि में सूजन आ जाती है और गला फूलता है। घेंघा आमतौर पर दर्दरहित रहता है। लेकिन थायरायड ग्रंथि का आकार बढ़ने से इन्सान को साँस लेने में तकलीफ़ होने लगती है। इतना ही नहीं, मरीज़ को खाना निगलने में परेशानी होती है। पुजारी के बेटे का गला फूल गया था और उसे साँस लेने में परेशानी हो रही थी। शेषाचारी जाँच करने के बाद इस नतीजे पर पहुँचे कि थायरायड ग्रंथि को शरीर से निकालने पर ही मरीज़ को बीमारी से निजाद मिलेगी। थायरायड ग्रंथि को शरीर से बाहर निकालने की ज़िम्मेदारी शेषाचारी ने श्यामा प्रसाद को सौंपी। प्रोफ़ेसर की देखरेख में श्यामा प्रसाद ने सर्जरी की और सफलतापूर्वक थायरायड ग्रंथि को मरीज़ के शरीर से बाहर निकाल दिया। श्यामा प्रसाद ने बिना कोई ग़लती किये शानदार तरीक़े से सर्जरी की थी। सर्जरी के बाद पुजारी के बेटे की सारी शिकायतें दूर हो गयीं। पुजारी बहुत आनंदित हुआ। उन्होंने प्रोफ़ेसर शेषाचारी से श्यामा प्रसाद को साथ लेकर श्री वेंकटेश्वर स्वामी मंदिर आने का अनुरोध किया। अनुरोध को स्वीकार कर एक दिन शेषाचारी अपने प्रिय शिष्य श्यामा प्रसाद को साथ लेकर मंदिर पहुँचे। पुजारी ने दोनों के लिए विशेष पूजा-अर्चना की। वेद-मंत्रों का पाठकर आशीर्वाद दिया। पुजारी ने श्यामा प्रसाद को कामयाब सर्जरी के लिए उपहारस्वरूप चंदन के पेड़ की टहनी दी। पुजारी के हाथों भेंट पाकर श्यामा प्रसाद बहुत ख़ुश हुए।

श्यामा प्रसाद भी श्री वेंकटेश्वर स्वामी के भक्त थे। वे नियमित रूप से तिरुमला मंदिर जाया करते थे। एमबीबीएस के दिनों से ही उन्हें मंदिर जाने की आदत पड़ गयी थी। रविवार को छुट्टी हुआ करती थी और इसका फ़ायदा उठाते हुए श्यामा प्रसाद तिरुमला की पहाड़ी पर चले जाते थे। भगवान वेंकटेश्वर स्वामी के दर्शन करने के बाद वापस कॉलेज लौट आते थे। भगवान के दर्शन से उन्हें सुकून मिलता था, आत्म-विश्वास बढ़ता था। नये साल पर तिरुमला में भगवान के दर्शन करना श्यामा

प्रसाद की आदतों में शुमार था। वे नये साल के पहले दिन मंदिर जाते और भगवान के दर्शन कर नये साल में कामकाज शुरू करते।

ऑपरेशन थिएटर में काम करते-करते श्यामा प्रसाद इतने अनुभवी हो गये थे कि ख़ुद मरीज़ की परेशानी और उसकी वजह समझने लगते थे। एक बार एक मरीज़ पेट में दर्द की शिकायत लेकर अस्पताल पहुँचा। इस मरीज़ को बदहज़्मी और उल्टी की भी शिकायत थी। डॉक्टर रामचंद्र राव ने मरीज़ की जाँच की। उन्हें मामला गंभीर लगा। डॉक्टर ने एंडोस्कोपी की। एंडोस्कोपी में पता चला कि पेट में छोटा पिंड है। डॉक्टर ने पिंड का एक अंश लिया और जाँच के लिए भिजवाया। जाँच से इस बात की पुष्टि हुई कि मरीज़ को पेट का कैंसर है। पेट के कैंसर का उपचार ट्यूमर के चरण पर निर्भर करता है। शुरुआत के चरणों के पेट के कैंसर का प्राथमिक उपचार सर्जरी है।

पेट का कैंसर जानलेवा बीमारी है। जब पेट की अंदरूनी सतह की कोशिकाएँ बिना रोक-टोक बढ़कर कैंसर वाले ट्यूमर में बदलने लगें, तो इसे पेट का कैंसर कहते हैं। पेट का कैंसर पहले पेट की दीवार में फैलता है और फिर बढ़कर आसपास के उत्तकों में फैल जाता है। बाद में ये जिगर, फेफ़ड़े और पेरिटोनियम में फैलता है। डॉक्टर रामचंद्र राव को लगा कि अगर ट्यूमर को नहीं निकाला गया तो, कैंसर शरीर के अन्य हिस्सों में फैल जाएगा। डॉक्टर ने सर्जरी की तैयारी शुरू की। सर्जरी के दौरान डॉक्टर की सहायता करने के लिए श्यामा प्रसाद ऑपरेशन थिएटर में मौजूद थे। रामचंद्र राव ने सर्जरी शुरू की और ट्यूमर को शरीर से बाहर निकाल दिया। सर्जरी पूरी होने के बाद पेट को सी दिया गया। लेकिन मरीज़ की गुदा से ख़ून निकलना शुरू हुआ। डॉक्टर को लगा कि यह कोई और परेशानी की वजह से है। कैंसर का ऑपरेशन कामयाब रहा है।

श्यामा प्रसाद के मन में एक संदेह था। उन्होंने डॉक्टर रामचंद्र राव से कहा, "मुझे लगता है कि पेट में कहीं घाव भरा नहीं है। टाँके लगाने से शायद ख़ून बहना बंद हो जाए।" डॉक्टर ने श्यामा प्रसाद की बात को गंभीरता से लिया। रामचंद्र राव ने जब मरीज़ का पेट दुबारा खोला, तो पाया कि श्यामा प्रसाद का अनुमान सही था। डॉक्टर ने टाँके लगाये, जिसकी वजह से ख़ून बहना बंद हुआ।

आमतौर पर मेडिकल विद्यार्थी अपने प्रोफ़ेसरों को सलाह नहीं देते। मन की

बात खुलकर नहीं कहते। शक ज़ाहिर नहीं करते। लेकिन श्यामा प्रसाद सबसे अलग थे। वे खुलकर प्रोफ़ेसरों से बातचीत करते थे। सवाल पूछकर अपनी शंकाओं को दूर करते। इन्हीं गुणों की वजह से सर्जरी पर उनकी पकड़ लगातार मजबूत होती चली गयी। एमएस की पढ़ाई के दौरान श्यामा प्रसाद को कई तरह के ऑपरेशन करने का मौक़े मिले।

श्यामा प्रसाद पीडियाट्रिक सर्जन डॉ. प्रभाकर से बेहद प्रभावित थे। श्यामा प्रसाद ने उन्हें बच्चों पर कई जटिल ऑपरेशन करते हुए देखा था। डॉ. प्रभाकर नवजात शिशु का भी ऑपरेशन किया करते थे। वे हमेशा आत्मविश्वास से भरे नज़र आते थे। नवजात शिशुओं की सर्जरी करना आसान नहीं होता। कई जोखिम होते हैं। डॉ. प्रभाकर ने बच्चों के ऑपरेशन में महारत हासिल कर ली थी। लेकिन डॉ. प्रभाकर ने रुया हॉस्पिटल में ज़्यादा समय तक काम नहीं किया। उनके दूसरे हॉस्पिटल चले जाने पर बच्चों का ऑपरेशन करने की ज़िम्मेदारी जनरल सर्जरी विभाग के सर्जनों पर आ गयी।

आगे अस्पताल में श्यामा प्रसाद को एक और बड़ी ज़िम्मेदारी दी गयी। यह ज़िम्मेदारी थी, ऑपरेशन से पहले सारी काग़ज़ी कार्यवाही को पूरा करना। यह ज़िम्मेदारी निभाते वक़्त उन्हें मरीज़ और उनके परिजनों को कई सारी बातें बतानी होतीं। यह बताना ज़रूरी होता कि मरीज़ को कौन-सी बीमारी है। इतना ही नहीं, मरीज़ और उनके परिजनों को यह भी बताना ज़रूरी होता कि ऑपरेशन क्यों किया जा रहा है और ऑपरेशन के दौरान क्या-क्या ख़तरा है। कई मरीज़ ख़तरों के बारे में सुनकर ऑपरेशन करवाने से मना कर देते थे। कई बार परिजन राज़ी नहीं होते थे।

कुछ मामलों में ऑपरेशन के दौरान जान जाने का ख़तरा रहता है। इस ख़तरे की बात सुनते ही मरीज़ और उसके परिजन घबरा जाते थे और ऑपरेशन करवाने से साफ़ मना कर देते थे। ऐसी स्थिति में श्यामा प्रसाद को यह समझना होता था कि ऑपरेशन न करवाये जाने की स्थिति में मरीज़ की जान जाने का ख़तरा बढ़ जाता है। कई मरीज़ इस बात को मान लेते थे, लेकिन कुछ ऐसे भी हुआ करते थे, जो यह बात मानने को तैयार नहीं होते थे। मरीज़ और उसके परिजनों को मनाने के बाद उनसे ऑपरेशन के लिए लिखित में स्वीकृति लेने की ज़िम्मेदारी भी श्यामा प्रसाद की थी।

अस्पताल में दिन-रात की मेहनत के दौरान श्यामा प्रसाद ने ग़ौर किया कि मेडिकल विद्यार्थियों को दिया जाने वाला स्टाइपेंड बहुत कम है। कई सालों से स्टाइपेंड में बढ़ोतरी नहीं हुई है। श्यामा प्रसाद का परिवार सम्पन्न था, लेकिन उनके कई साथी विद्यार्थियों की आर्थिक स्थिति मजबूत नहीं थी। कुछ विद्यार्थी ऐसे थे, जो कि ग़रीब परिवार से थे। ये विद्यार्थी अपने ख़र्चों के लिए परिवारवालों पर बोझ नहीं डालना चाहते थे। लेकिन स्टाइपेंड इतना कम था कि गुज़र-बसर मुश्किल होने लगी थी।

उन दिनों आंध्रप्रदेश के मेडिकल कॉलेजों में पीजी कोर्स की पढ़ाई कर रहे मेडिकल विद्यार्थियों को महज़ तीन सौ रुपये का वज़ीफ़ा दिया जाता था। यह राशि मूलभूत सुविधाएँ और सामान जुटाने के लिए पर्याप्त नहीं थीं। इतना ही नहीं, मेडिकल कॉलेज में सुविधाओं का अभाव था। हॉस्टल की हालत ठीक नहीं थी। वैसे तो मकान अस्पताल परिसर में होने की वजह श्यामा प्रसाद हॉस्टल में नहीं रहते थे, लेकिन वे हॉस्टल के विद्यार्थियों की समस्याओं से भली-भांति परिचित थे। उनके कई सहपाठी हॉस्टल में रहा करते थे। इन सहपाठियों से मिलने अक्सर श्यामा प्रसाद हॉस्टल आया-जाया करते थे।

श्यामा प्रसाद ने ग़ौर किया था कि प्रबंधन हॉस्टल में साफ़-सफाई पर ध्यान नहीं दे रहा है। इस वजह से कई जगह गंदगी है। बाथरूम और टॉइलेट भी नियमित रूप से साफ़ नहीं किये जा रहे हैं। हॉस्टल में विद्यार्थियों को दिया जाने वाला भोजन पौष्टिक नहीं है। जिन बदतर हालात में मेडिकल विद्यार्थी हॉस्टल में रहने को मजबूर थे, उसे देखकर श्यामा प्रसाद का दिल पसीज गया। एक दिन श्यामा प्रसाद ने फ़ैसला कर लिया कि वे हॉस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों को उनके अधिकार दिलवाने के लिए लड़ाई लड़ेंगे। वे इस लड़ाई की रूपरेखा तैयार करने में जुट गये।

हॉस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों को 'हास्टलर' कहा जाता है और जो विद्यार्थी हॉस्टल के बाहर रहकर पढ़ाई करते हैं, उन्हें 'डे स्कॉलर' कहा जाता है। श्यामा प्रसाद डे स्कॉलर थे। वे अक्सर अपने सहपाठी और मित्र मालकोंडय्या के कमरे में जाया करते थे। दोनों मिलकर पढ़ाई करते थे। कई रात दोनों ने मिलकर साथ पढ़ाई की थी। फिर भी हॉस्टल में सुविधाओं के अभाव का श्यामा प्रसाद पर कोई सीधा असर नहीं पड़ रहा था। लेकिन श्यामा प्रसाद को लगा कि हास्टलरों के साथ नाइंसाफ़ी

हो रही है। पिता की तरह श्यामा प्रसाद को भी नाइंसाफ़ी बर्दाश्त नहीं थी। नाइंसाफ़ी किसी के साथ भी क्यों न हो, इंसाफ़ के लिए आवाज़ उठाना सुंदरय्या अपना दायित्व मानते थे। उन्हें लगता था कि लाचार और निःसहाय लोगों के ख़िलाफ़ नाइंसाफ़ी होती है। तरह-तरह की मजबूरियों की वजह से ये लोग नाइंसाफ़ी के ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठा पाते और शोषण का शिकार होते हैं। इसी वजह से निःसहाय लोगों की मदद करना ताक़तवर लोगों का दायित्व है।

श्यामा प्रसाद ने हॉस्टल में रह रहे विद्यार्थियों के लिए संघर्ष करने की ठान ली। संघर्ष की कार्य-योजना बनाते समय श्यामा प्रसाद को एहसास हुआ कि अकेले दम पर लड़ाई नहीं जीती जा सकती है। बड़ी जीत के लिए संगठन ज़रूरी है। श्यामा प्रसाद ने अपने पिता से सीखा था कि इन्सान के जीवन में संगठन का महत्व काफ़ी ज़्यादा है। एक अकेला इन्सान हर काम पूरा नहीं कर सकता है। जब लोग आपस में मिलकर संगठित हो जाते हैं, जब संगठन से जुड़ा हर व्यक्ति ताक़तवर हो जाता है। एक और एक ग्यारह हो जाते हैं। संगठन की ताक़त से इन्सान बड़े-बड़े काम आसानी से कर सकता है। संगठन में इन्सान की कई समस्याओं का समाधान है।

श्यामा प्रसाद ने संगठन बनाने की कोशिश शुरू की। संगठन बनाने की कोशिश में उन्होंने कई विद्यार्थियों से बातचीत की। बातचीत का दौर लंबा चला। कई विद्यार्थी संगठन से जुड़ने को राज़ी हो गये। कई ऐसे भी थे, जिन्होंने संगठन में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई।

श्यामा प्रसाद को तिप्पेस्वामी से बहुत मदद मिली। संगठन की बात सुनते ही तिप्पेस्वामी फट-से राज़ी हो गये। वे दलित थे और शोषित वर्ग की समस्याओं और मजबूरियों से वाक़िफ़ थे। तिप्पेस्वामी ने श्यामा प्रसाद के साथ मिलकर मेडिकल विद्यार्थियों के हक़ की लड़ाई लड़ने के लिए कमर कस ली।

दोनों ने अन्य विद्यार्थियों के साथ मिलकर मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल, अस्पताल के सूपरिन्टेन्डन्ट और हॉस्टल के वार्डन से मुलाक़ात की। श्यामा प्रसाद और तिप्पेस्वामी ने प्रिंसिपल, सूपरिन्टेन्डन्ट और वार्डन को अल्टीमेटम दिया कि अगर विद्यार्थियों को वे सुविधाएँ नहीं दी गयीं, जिसके वे हक़दार हैं, तो सभी विद्यार्थी मिलकर हड़ताल करेंगे।

प्रिंसिपल, सूपरिन्टेन्डन्ट और वार्डन, तीनों श्यामा प्रसाद और उनके परिवार

के बारे में अच्छे से जानते थे। श्यामा प्रसाद के पिता सुंदरय्या ख़ुद कॉलेज के प्रोफ़ेसर और अस्पताल में सर्जन की ज़िम्मेदारियाँ निभा रहे थे। अस्पताल, मेडिकल कॉलेज और हॉस्टल के प्रबंधन से जुड़े किसी भी अधिकारी को यह उम्मीद नहीं थी कि श्यामा प्रसाद मेडिकल विद्यार्थियों के संघर्ष की अगुवाई करेंगे। लेकिन जब सभी को यक़ीन हो गया कि श्यामा प्रसाद अपने आंदोलन के प्रति गंभीर हैं, तब सभी ने विद्यार्थियों की माँगों को पूरा करने की दिशा में काम करना शुरू किया।

एक मायने में प्रिंसिपल, सूपरिन्टेन्डन्ट और वार्डन हड़ताल की धमकी से घबरा गये। मेडिकल विद्यार्थियों के हड़ताल पर चले जाने से न सिर्फ़ श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज और रुया अस्पताल की बदनामी होती, बल्कि शैक्षणिक और चिकित्सकीय गतिविधियों पर भी बुरा असर पड़ता।

सरकारी अस्पतालों के संचालन में मेडिकल विद्यार्थियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। एमबीबीएस विद्यार्थियों की तुलना में पीजी विद्यार्थियों की भूमिका ज़्यादा महत्वपूर्ण होती है। मरीज़ों का इलाज हो या किसी मरीज़ की सर्जरी, मेडिकल विद्यार्थियों की मदद के बग़ैर काम पूरा नहीं होता। बड़ी बात तो यह है कि मेडिकल विद्यार्थियों की मौजूदगी के बग़ैर मेडिकल कॉलेज और उससे अनुबद्ध अस्पताल में इलाज से जुड़ा कोई काम शुरू ही नहीं हो पाता है। इसी वजह से प्रिंसिपल, सूपरिन्टेन्डन्ट और वार्डन ने मेडिकल विद्यार्थियों को हड़ताल पर जाने से रोकने के लिए उनकी सभी माँगे मान ली। वैसे भी सभी माँगें न्यायसम्मत थीं।

जब हॉस्टल में विद्यार्थियों को सभी सुविधाएँ मिलने लगी, तब श्यामा प्रसाद को बहुत ख़ुशी हुई। उन्हें एहसास हो गया कि चुप रहने से नाइंसाफ़ी ख़त्म नहीं होगी। इंसाफ़ के लिए संघर्ष करना ज़रूरी है। और, जब संघर्ष ताक़तवर लोगों के ख़िलाफ़ है, तब एक आदमी से कुछ नहीं होता। संगठन के ज़रिये बड़ी से बड़ी जीत हासिल की जा सकती है।

हॉस्टल की समस्याओं को सुलझाने के लिए शुरू किये आंदोलन में मिली कामयाबी से उत्साहित श्यामा प्रसाद और तिप्पेस्वामी ने अब स्टाइपेंड को बढ़ाने की माँग के लेकर आंदोलन करने की सोची। इस बार यह आंदोलन उन लोगों से नहीं था, जो कॉलेज और अस्पताल प्रबंधन से जुड़े। इस बार आंदोलन था, राज्य सरकार के ख़िलाफ़, यानी प्रदेश की सबसे बड़ी व्यवस्था के ख़िलाफ़।

श्यामा प्रसाद को आभास था कि राज्य सरकार के ख़िलाफ़ लड़ाई आसान नहीं है। वे खुद इस बात के गवाह थे कि किस तरह सरकार ने साम, दाम, दंड, भेद नीति अपनाकर दो बड़े आंदोलनों को विफल किया था। इन दोनों आंदोलनों में विद्यार्थियों की भागीदारी सबसे ज़्यादा थी। सरकार ने 'जय तेलंगाना' और 'जय आंध्र' आंदोलनों को कामयाब होने से रोकने के लिए पूरी ताक़त लगा दी थी। लेकिन हक़ की लड़ाई थी, इस वजह से श्यामा प्रसाद ने कमर कस ली।

तिप्पेस्वामी के साथ मिलकर श्यामा प्रसाद ने कॉलेज प्रबंधन के माध्यम से सरकार के पास ज्ञापन-पत्र भिजवाया। एक ही माँग थी, मेडिकल विद्यार्थियों को दिये जाने वाले स्टाइपेंड को बढ़ाया जाए। राज्य सरकार ने ज्ञापन-पत्र पर कोई कार्यवाही नहीं। जब एक महीने तक सरकार के कान पर जूं तक न रेंगी, तब श्यामा प्रसाद और तिप्पेस्वामी ने सीधे सरकार को ज्ञापन-पत्र भेज दिया। जब इस पर भी कोई कार्यवाही नहीं हुई, तब दोनों ने विद्यार्थियों की ओर से सरकार को धमकी दी कि अगर एक माह के भीतर स्टाइपेंड नहीं बढ़ाया गया, तो विद्यार्थी हड़ताल करेंगे। लेकिन इस धमकी का भी सरकार पर कोई असर नहीं हुआ। सरकार की तरफ़ से कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली।

श्यामा प्रसाद और तिप्पेस्वामी समझ गये कि सरकार उनकी ताक़त को कम आंक रही है। सरकार को मेडिकल विद्यार्थियों की ताक़त का एहसास करवाने के लिए दोनों ने एक बड़ा फ़ैसला लिया। फ़ैसला था, आंध्रप्रदेश के सभी मेडिकल विद्यार्थियों को एकजुट किया जाए, ताकि संगठन बड़ा और मजबूत हो सके।

फ़ैसले को अंजाम देते हुए श्यामा प्रसाद और तिप्पेस्वामी ने आंध्रप्रदेश के अलग-अलग मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थियों से बातचीत शुरू की। सभी मेडिकल विद्यार्थी स्टाइपेंड बढ़ाये जाने के पक्ष में थे। जब अलग-अलग मेडिकल कॉलेजों के विद्यार्थियों को स्टाइपेंड बढ़ाने की माँग के समर्थन में आंदोलन करने की बात पता चली, तब सभी ने एक साथ लड़ाई करने का प्रण लिया।

जब हर तरफ़ से समर्थन मिला, तब श्यामा प्रसाद और तिप्पेस्वामी ने संगठन के नामकरण की सोची। अब तब न संगठन का नामकरण हुआ था, न ही पंजीकरण। नामकरण को लेकर काफ़ी माथापच्ची हुई। दिन-रात बैठकों का दौर चला। तरह-तरह के नाम सामने आये। इन्हीं बैठकों के दौरान 'जूनियर डॉक्टर' शब्द

का जन्म हुआ। इसी के बाद सभी ने मिलकर फ़ैसला लिया कि संगठन का नाम होगा, जूनियर डॉक्टर असोशिएशन।

कई विद्यार्थियों का कहना था कि सरकारी अस्पताल में जो काम डॉक्टर करते हैं, वे सभी काम मेडिकल विद्यार्थी भी करते हैं। भले ही उन्हें डॉक्टर न कहा जाता हो, लेकिन वे डॉक्टर से कम नहीं है। इस बात पर बहस के दौरान 'जूनियर डॉक्टर' शब्द का जन्म हुआ। फ़ैसला लिया गया कि मेडिकल कॉलेज में पढ़ाई करते हुए अस्पताल में शिक्षण-प्रशिक्षण लेने वाले मेडिकल विद्यार्थी को 'जूनियर डॉक्टर' कहा जाएगा। ये विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से मरीज़ों का इलाज करने के हक़दार नहीं होते हैं। इन्हें अपने शिक्षकों यानी प्रोफ़ेसरों के पर्यवेक्षण में मरीज़ों का इलाज करना होता है।

कई मेडिकल विद्यार्थी जूनियर डॉक्टर असोशिएशन के सदस्य बन गये। जब असोशिएशन के पदाधिकारियों की नियुक्ति के लिए चुनाव हुए, तब तिप्पेस्वामी अध्यक्ष और श्यामा प्रसाद महासचिव चुने गये। इन दोनों के नेतृत्व में स्टाइपेंड बढ़ाने की माँग को लेकर आंदोलन शुरू हुआ। जब असोशिएशन की ओर से सरकार को लिखी चिट्ठियों पर कोई कार्यवाही नहीं हुई, तब सरकार को अल्टिमेटम दिया गया। कहा गया कि अगर माँग नहीं मानी गयी, तो राज्य के सभी मेडिकल विद्यार्थी हड़ताल पर चले जाएँगे। लेकिन इस अल्टिमेटम का भी कोई असर नहीं हुआ।

अपनी ताक़त का प्रदर्शन करने के इरादे के साथ जूनियर डॉक्टर हड़ताल पर चले गये। राज्य के सभी सरकारी अस्पतालों में चिकित्सा-व्यवस्था लड़खड़ा गयी। इसका कारण साफ़ था। जूनियर डॉक्टरों के काम पर न आने से सारा बोझ प्रोफ़ेसरों और अन्य शिक्षकों पर पड़ने लगा। आउटपेशंट वार्ड में इतने ज़्यादा मरीज़ हुआ करते थे कि सभी को देखना प्रोफ़ेसरों और अन्य शिक्षकों के बस की बात नहीं थी। डॉक्टर सिर्फ़ गंभीर मामले देखने लगे। हड़ताल की वजह से कई ऑपरेशन टालने पड़े। एमर्जेंसी केस ही ऑपरेशन थिएटर ले जाये जाने लगे। जूनियर डॉक्टरों की हड़ताल की वजह से मरीज़ों को कई तरह की समस्याओं का सामना करने के लिए मजबूर होना पड़ा। जूनियर डॉक्टरों को लगा कि मरीज़ों की गुहार सुनकर सरकार झुक जाएगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

उन दिनों मर्रि चेन्ना रेड्डी आंध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री थे। चेन्ना रेड्डी कड़क मिज़ाज के नेता थे। कांग्रेस में रहते हुए उन्होंने देश की सबसे ताक़तवर नेता और प्रधानमंत्री

इंदिरा गांधी के ख़िलाफ़ बग़ावत का बिगुल फूँक दिया था। चेन्ना रेड्डी ने बिना देर किये अलग तेलंगाना राज्य बनाने की माँग की थी। इस माँग को इंदिरा गांधी के ख़ारिज कर दिया। 1969 में हुए 'जय तेलंगाना' आंदोलन में चेन्ना रेड्डी ने बड़ी भूमिका निभायी थी। लेकिन केंद्र सरकार ने पुलिस बल की मदद से इस आंदोलन को कुचल दिया था। इसके बाद चेन्ना रेड्डी कांग्रेस से अलग हो गये। चेन्ना रेड्डी ने तेलंगाना प्रजा समिति के नाम से एक अलग पार्टी बनी ली। 1971 के लोकसभा चुनाव में तेलंगाना प्रजा समिति ने शानदार प्रदर्शन किया। उसने तेलंगाना की 14 में से 11 सीटों पर जीत हासिल की। चेन्ना रेड्डी ने अपना लोहा मनवाया। इसके बाद इंदिरा गांधी के अनुरोध पर चेन्ना रेड्डी ने तेलंगाना प्रजा पार्टी का विलय कांग्रेस में कर दिया। 1974 में इंदिरा गांधी ने चेन्ना रेड्डी को उत्तरप्रदेश का राज्यपाल बनाया। लेकिन आंध्रप्रदेश में कमज़ोर होती कांग्रेस पार्टी को मजबूत करने के लिए इंदिरा गांधी चेन्ना रेड्डी को दुबारा सक्रिय राजनीति में ले आयीं। 6 मार्च 1978 को उन्हें आंध्रप्रदेश का मुख्यमंत्री बनाया गया।

जूनियर विद्यार्थियों के हड़ताल पर जाने से चेन्ना रेड्डी नाराज़ थे। उन्होंने फ़ैसला कर लिया था कि वे किसी सूरत-ओ-हाल हड़ताली विद्यार्थियों के सामने नहीं झुकेंगे।

मुख्यमंत्री के आदेश पर पुलिस ने हड़ताली विद्यार्थियों के ख़िलाफ़ मामला दर्ज़ कर लिया। चूँकि भारतीय दंड संहिता की अलग-अलग धाराएँ लगायी गयी थीं, पुलिस हड़ताली विद्यार्थियों को गिरफ़्तार करने हॉस्पिटल पहुँची। पुलिस को देखकर सभी हैरान रह गये। हैरानी उस समय परेशानी में तब्दील हो गयी, जब पुलिस ने अरेस्ट वारंट दिखाते हुए विद्यार्थियों को गिरफ़्तार करना शुरू किया। डॉक्टरों ने पुलिस से विद्यार्थियों को गिरफ़्तार न करने की अपील की। लेकिन इस अपील का पुलिस पर कोई असर नहीं हुआ। बार-बार अनुरोध किये जाने पर पुलिस इंस्पेक्टर ने अस्पताल के डॉक्टरों को बताया कि एफआईआर दर्ज़ हो चुकी है। थाने में मामला भी दर्ज़ हो चुका। आईपीसी की धाराएँ लग चुकी हैं। अब गिरफ़्तार किये बग़ैर पुलिस यहाँ से नहीं जा सकती है। सभी को मामले की गंभीरता का एहसास हुआ। पुलिस श्यामा प्रसाद और अन्य विद्यार्थियों को गिरफ़्तार कर थाने ले गयी। बाद में जमानत पर सभी विद्यार्थी रिहा हुआ।

सरकारी अस्पताल में इलाज न होने से हाहाकार मचा रहे मरीज़ों की भी चेन्ना

रेड्डी ने एक न सुनी। एक महीने की हड़ताल के बाद श्यामा प्रसाद, तिप्पेस्वामी और दूसरे विद्यार्थियों को आभास हो गया कि सरकार से लड़ाई जीतना आसान नहीं है। जब आगे भी हड़ताल का कोई असर नहीं हुआ, तब धीरे-धीरे कई विद्यार्थी काम पर लौटने लगे। लेकिन श्यामा प्रसाद, तिप्पेस्वामी जैसे विद्यार्थी अपनी माँग पर अड़े रहे।

दो महीने की हड़ताल के बाद भी सरकार टस से मस नहीं हुई। जब हड़ताल तीसरे महीने में पहुँची, तब जूनियर डॉक्टर असोशिएशन के नेताओं को अपनी रणनीति पर पुनर्विचार करना पड़ा। श्यामा प्रसाद और तिप्पेस्वामी ने विद्यार्थी नेताओं की बैठक बुलायी। बैठक में भविष्य की रणनीति पर चर्चा हुई। ज़्यादातर नेताओं ने कहा कि चेन्ना रेड्डी मानने वाले नहीं हैं। कुछ भी हो जाए, वे विद्यार्थियों के आगे नहीं झुकेंगे। कुछ नेताओं का कहना था कि हड़ताल की वजह से पढ़ाई मार खा रही है। अगर हड़ताल जारी रही, तो परीक्षाओं की तैयारी ठीक तरह से नहीं हो पाएगी। कुछ विद्यार्थियों ने मरीज़ों की भलाई के लिए हड़ताल ख़त्म करने का सुझाव दिया। लंबी बहस के बाद फ़ैसला हुआ कि हड़ताल ख़त्म कर दी जाएगी। 67 दिनों तक हड़ताल करने के बाद श्यामा प्रसाद, तिप्पेस्वामी और सभी मेडिकल विद्यार्थी काम पर लौट आये।

स्टाइपेंड नहीं बढ़ा, लेकिन मेडिकल विद्यार्थी आंदोलन की वजह से जनता का ध्यान अपनी समस्याओं की ओर आकर्षित करने में कामयाब हुए। सरकार को भी एहसास हुआ कि स्टाइपेंड बढ़ाने की माँग जायज़ है। चूँकि हड़ताल तुड़वाने को सरकार प्रतिष्ठा का विषय बना चुकी थी, उसने हड़ताल ख़त्म होने तक स्टाइपेंड बढ़ाने की माँग को नहीं माना।

इस आंदोलन का एक बड़ा असर हुआ। देश के अलग-अलग राज्यों में भी मेडिकल विद्यार्थी संगठित होने लगे। देश के हर राज्य में 'जूनियर डॉक्टर असोशिएशन' बने।

जूनियर डॉक्टरों के आंदोलन का असर सरकारी मेडिकल कॉलेजों और अस्पतालों में काम करने वाले शिक्षकों और कर्मचारियों पर भी पड़ा। सभी को अच्छे से आभास हो गया कि संगठन में शक्ति है। असिस्टेंट सिविल सर्जनों और प्रोफ़ेसरों ने भी अपने-अपने संगठनों को मजबूत करना शुरू किया। अलग-अलग विभागों में काम करने वाले अलग-अलग श्रेणियों के कर्मचारी भी संगठित हो गये।

आंदोलन नाकाम रहा हो, लेकिन श्यामा प्रसाद ने नेतृत्व-क्षमता का परिचय दिया। यह साबित किया कि वे लोगों को संगठित करने का माद्दा रखते हैं। श्यामा प्रसाद ने यह भी जताया कि नाइंसाफ़ी के ख़िलाफ़ जंग लड़ने की पिता की विरासत को वे आगे बढ़ा रहे हैं।

इसी दौरान 24 सितंबर 1979 की शाम अचानक लक्ष्मी राज्यम को प्रसव-पीड़ा हुई। मॉनसून का मौसम था और उस शाम मूसलाधार बारिश हो रही थी। किसी को भी प्रसव-पीड़ा का उम्मीद नहीं थी। डॉक्टरों ने बताया था कि अक्तूबर में गर्भ के नौ महीने पूरे होंगे और शिशु का जन्म उसी समय होगा। प्रसव की संभावित तारीख़ से एक महीने पहले ही लक्ष्मी को प्रसव-पीड़ा होने से सभी को आश्चर्य हुआ। लेकिन प्रसव-पीड़ा बढ़ने और जचगी का समय आने की वजह से लक्ष्मी को अस्पताल ले जाया गया। अस्पताल मकान के क़रीब था, इस वजह से भारी बारिश के बावजूद लक्ष्मी को अस्पताल पहुँचाने में कोई ख़ास दिक़्क़त नहीं हुई। लक्ष्मी को सीधे जचगीख़ाने ले जाया गया। वहाँ मौजूद महिला डॉक्टर ने जाँच की और तुरंत प्रसव की तैयारी शुरू की। कुछ मिनटों बाद लक्ष्मी ने एक बालक को जन्म दिया। महिला डॉक्टर ने श्यामा प्रसाद को बताया कि जच्चा और बच्चा दोनों ठीक हैं। चूँकि शिशु का जन्म समय से पहले हुए था, शिशु विशेषज्ञ को दिखाना ज़रूरी था। महिला डॉक्टर की सलाह पर शिशु विशेषज्ञ रत्नप्रभा को बुलाया गया। डॉ. रत्नप्रभा ने जाँच करने के बाद बताया कि शिशु का स्वास्थ्य ठीक है। इस बात पर श्यामा प्रसाद को राहत मिली। उनकी जान में जान आयी। लेकिन रत्नप्रभा ने एक सलाह दी। शिशु विशेषज्ञ ने कहा, “शिशु का जन्म समय से पहले हुआ है, क़रीब एक महीने पहले। शिशु का वज़न भी उतना नहीं है, जितना कि होना चाहिए। इस वजह से शिशु को इन्क्यूबेटर में रखा जाना ज़रूरी है।” रत्नप्रभा ने बताया कि अस्पताल में इन्क्यूबेटरों की हालत ठीक नहीं है। उन्होंने नवजात शिशु की सही देखभाल के लिए उसे तुरंत मद्रास ले जाने और वहाँ किसी अच्छे अस्पताल में इन्क्यूबेटर में रखने की सलाह थी। श्यामा प्रसाद दुविधा में पड़ गये। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। तेज़ बारिश हो रही थी। मद्रास तक का सफ़र आसान नहीं था। बस या ट्रेन में नवजात शिशु को ले जाना मुनासिब नहीं था। तिरुपति से मद्रास की दूरी क़रीब 130 किलोमीटर है। अगर कार से भी सफ़र किया जाए, तब भी पहुँचने में कम

से कम पाँच घंटे लग सकते थे। श्यामा प्रसाद को बिना समय गँवाये फ़ैसला लेना था। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। मन में तरह-तरह की शंकाएँ जन्म ले रही थीं। उन्हें डर था कि अगर नवजात शिशु को इन्क्यूबेटर में नहीं रखा गया, तो उसकी हालत बिगड़ सकती है। लेकिन इन्क्यूबेटर में रखने के लिए मद्रास ले जाना आसान नहीं था। इस सफ़र में भी जोखिम था। एक तरफ़ बारिश और दूसरी तरफ़ पाँच घंटे का सफ़र। इस सफ़र के दौरान अगर शिशु ही हालत बिगड़ती, तब इलाज के लिए बीच में कोई अस्पताल भी नहीं था। श्यामा प्रसाद और लक्ष्मी राज्यम दोनों ने एमबीबीएस की पढ़ाई की थी, लेकिन वे दोनों शिशु विशेषज्ञ नहीं थे।

ऐसी विकट स्थिति में सलाह देने के लिए पिता सुंदरय्या भी पास नहीं थे। वे काकिनाडा में थे। श्यामा प्रसाद को लगा कि बिना पिता की सलाह लिये उन्हें कोई फ़ैसला नहीं लेना चाहिए। पिता से संपर्क करना आसान नहीं था। उन दिनों मोबाइल फ़ोन नहीं थे। लैंडलाइन फ़ोन हुआ करते थे। श्यामा प्रसाद ने तुरंत पिता को फ़ोन कॉल लगाया। सुंदरय्या ने श्यामा प्रसाद को शिशु विशेषज्ञ रत्नप्रभा की सलाह मानने को कहा। सुंदरय्या ने नवजात शिशु को मद्रास ले जाने और वहाँ एग्मोर के अस्पताल में इन्क्यूबेटर में रखने की सलाह दी। श्यामा प्रसाद ने अपनी बहन और मित्र मालकोंडय्या को साथ ले जाने का मन बनाया। ये तीनों शिशु को लेकर मद्रास के लिए रवाना हुए।

बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही थी। रास्ता भी ख़राब था। लगातार हो रही बारिश की वजह से सड़क पर कई जगह पानी भर गया था। फिर भी सफ़र जारी रहा। शिशु की जान बचानी थी। अगर शिशु को इन्क्यूबेटर में नहीं रखा जाता, तब कई तरह के ख़तरे पैदा हो सकते थे। जो शिशु समय से पहले पैदा होते हैं, उनके शरीर के अंग गर्भ में पूरी तरह से विकसित नहीं हुए होते। गर्भ में शिशु 37 हफ़्ते तक रहते हैं। इस दौरान शिशु के सभी अंग विकसित होते हैं। लेकिन अगर कोई शिशु 37 हफ़्ते से पहले पैदा होता है, तो डॉक्टर को यह अनुमान होता है कि शरीर के महत्वपूर्ण अंग पूरी तरह विकसित हुए हैं या नहीं। समय से पहले जन्मे बच्चे के अविकसित अंगों में पाचन तंत्र, फेफड़े, प्रतिरक्षा प्रणाली, और त्वचा भी हो सकती हैं। इन शिशुओं को गर्भ के बाहर जीवित रहने में मदद करने के लिए उन्हें इनक्यूबेटर में रखा जाता है। इनक्यूबेटर वह मशीन है, जो नवजात शिशु के सभी

अंगों के विकास के लिए ज़रूरी पर्यावरणीय परिस्थितियों को प्रदान करती है। समय से पहले जन्मे शिशुओं में वसा की कमी होती है और वे शरीर के तापमान को नियंत्रित करने में कम सक्षम होते हैं। इनक्यूबेटर आदर्श पर्यावरणीय परिस्थितियों को सुनिश्चित करता है।

श्यामा प्रसाद के लिए राहत की बात यह रही कि सफ़र के दौरान शिशु की हालत नहीं बिगड़ी। सफ़र के दौरान शिशु ज़्यादातर समय शांत रहा। मद्रास पहुँचते ही श्यामा प्रसाद शिशु को सीधे इग्मोर के सरकारी शिशु अस्पताल ले गये। जैसे कि सुना था, यहाँ पर आधुनिक इनक्यूबेटर थे। डॉक्टरों ने शिशु की जाँच करने के बाद बताया कि घबराने की कोई बात नहीं है। शिशु स्वस्थ्य है। लेकिन किसी संभावित ख़तरे को ख़त्म करने के लिए शिशु को इनक्यूबेटर में रखा जाएगा।

शिशु को इनक्यूबेटर में डालते ही श्यामा प्रसाद ने राहत की साँस ली। श्यामा प्रसाद के इग्मोर अस्पताल पहुँचने के कुछ घंटों बाद सुंदरय्या भी वहाँ पहुँच गये। पिता को देखकर श्यामा प्रसाद को सुखद आश्चर्य हुआ। पूछे जाने पर सुंदरय्या ने बताया कि वे हावड़ा-मद्रास मेल पर सवार होकर काकिनाडा से यहाँ पहुँचे हैं। अस्पताल पहुँचकर सुंदरय्या ने शिशु की देखभाल में लगे डॉक्टरों से बात की। उन्हें यह जानकर ख़ुशी हुई कि शिशु स्वस्थ्य है और ख़तरे जैसी कोई बात भी नहीं है।

सुंदरय्या ने अब पहली बार अपने बेटे श्यामा प्रसाद को पिता बनने की बधाई दी। शिशु की हालत को लेकर परेशान सुंदरय्या अपने बेटे को बधाई दे नहीं पाये थे। जब सारे ख़तरे ख़त्म हो गये और यह पक्का हो गया कि शिशु स्वस्थ्य है और उसे कोई समस्या नहीं है, तभी सब की जान में जान आयी। आमतौर पर बच्चे के जन्म की बात सुनते ही, हर तरफ़ ख़ुशियाँ छा जाती हैं। लेकिन यहाँ मामला अलग था। स्थिति संकट वाली थी। समय से एक महीने पहले शिशु दुनिया में आ गया था। शिशु के स्वास्थ्य को लेकर कई तरह के सवाल थे। इन सवालों का सही जवाब न होने की वजह से तरह-तरह की शंकाएँ और आशंकाएँ मन में जन्म ले रही थीं। अजीब-सा डर मन में समा गया था। इसी डर की वजह से श्यामा प्रसाद ने अपने पिता को फ़ोन पर पहले शिशु विशेषज्ञ की सलाह के बारे में बताया। वहीं सुंदरय्या ने भी अपने बेटे को पहले पिता बनने की बधाई देने के बजाय शिशु विशेषज्ञ की सलाह मानने को कहा।

दो दिन मद्रास के अस्पताल में शिशु को रखने के बाद श्यामा प्रसाद तिरुपति लौट आये। तिरुपति में सारा परिवार एक जगह इक्कट्ठा हुआ और श्यामा प्रसाद के पिता और लक्ष्मी के माँ बनने का जश्न मनाया। सुंदरय्या ने घर-परिवार में नये सदस्य का स्वागत ज़ोरदार तरीक़े से किया। दावतों का दौर लंबे समय तक चला। यह दौर ख़त्म होते ही सुंदरय्या काम पर लौट गये। श्यामा प्रसाद और लक्ष्मी भी पढ़ाई में लग गये। दोनों ने अपने बेटे का नाम सिद्धार्थ रखा।

श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में एमएस कोर्स की पढ़ाई का एक साल पूरा होने पर श्यामा प्रसाद को बताया गया कि दूसरे साल की पढ़ाई वेल्लूर शहर के क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में होगी। वेल्लूर शहर तमिलनाडु में है और इसकी पहचान क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज की वजह से है। यह कॉलेज भारत-भर में ही नहीं, बल्कि दुनिया-भर में मशहूर है। इस कॉलेज से अनुबद्ध अस्पताल में इलाज करवाने के लिए लोग भारत के कोने-कोने से आते थे। जिन मरीज़ों का इलाज देश के किसी भी अस्पताल में संभव नहीं था, वैसे मरीज़ों की जान बचाने के लिए उन्हें क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज के अस्पताल भेजा जाता था। जब सुंदरय्या को यह पता चला कि उनके बेटे का प्रशिक्षण क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में होगा, तब उन्हें गर्व महसूस हुआ।

सुंदरय्या क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज की महानता और उसकी प्रतिष्ठा से वाक़िफ़ थे। सुंदरय्या ने अपने बेटे श्यामा प्रसाद को अपने पास बुलाया और कहा, “बेटा, तुम वाकई क़िस्मतवाले हो। यह तुम्हारी ख़ुशनसीबी है कि तुम्हें क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में ट्रेनिंग लेने का मौक़ा मिल रहा है। वहाँ एक से बढ़िया एक डॉक्टर हैं। सर्जन भी लाजवाब हैं। उनके काम की तारीफ़ दुनिया-भर में होती है। क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में न सिर्फ़ डॉक्टर तैयार किये जाते हैं, बल्कि वहाँ अलग-अलग बीमारियों के इलाज की खोज भी की जाती है। चिकित्सा के क्षेत्र में उन्नत स्तरीय अनुसंधान होता है।” सुंदरय्या ने आगे कहा, “श्याम, तुम वहाँ हर सुविधा का लाभ उठाना। एक मिनट भी बेकार न जाने देना। जो तुम वहाँ सीख सकते हो, वह कहीं दूसरी जगह नहीं सीख सकते हो। जिस तरह के मरीज़ तुम्हें वहाँ मिलेंगे, वैसे मरीज़ कहीं और नहीं मिलेंगे। जब मरीज़ को लगता है कि भारत में कोई भी डॉक्टर उसकी बीमारी का इलाज नहीं कर सकता है, तब वह बचने की

आख़िरी उम्मीद लेकर क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज आता है। मेरी एक बात याद रखना। शायद ही तुम्हें ऐसा मौक़ा दुबारा मिले। इस मौक़े का पूरा फ़ायदा उठाना।"

पिता की इन बातों का श्यामा प्रसाद के मन-मस्तिष्क पर गहरा असर पड़ा। पिता की बातों को श्यामा प्रसाद ने गाँठ बाँधकर बन में बिठा लिया।

क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज की कहानी दिलचस्प है। इसका इतिहास गौरवशाली है। कॉलेज की स्थापना के पीछे रोचक कहानी है। इस कहानी की नायिका हैं इडा सोफिया स्कडर। इडा सोफिया स्कडर का जन्म 9 दिसंबर 1870 को तमिलनाडु के रानीपेट में हुआ था। इडा के पिता डॉ. जॉन स्कडर चिकित्सा मिशनरी थे। वे अपनी पत्नी सोफिया के साथ भारत आये और यहाँ बीमार लोगों का इलाज करने लगे। जॉन स्कडर और सोफिया के भारत-प्रवास के दौरान इडा का जन्म हुआ। इडा से पहले जॉन स्कडर और सोफिया को पाँच संतानें हुई थीं। सभी लड़के हुए। पाँच लड़कों के बाद एक लड़की का जन्म हुआ और माता-पिता ने प्यार से नाम रखा इडा।

इडा के दादा रेवरेंड डॉ. जॉन स्कडर सीनियर 'अमेरिकिन रिफॉर्मेड चर्च' से जुड़े थे। जॉन स्कडर सीनियर ईसाई धर्म का प्रचार करने के साथ-साथ लोगों का इलाज करते थे। उन्हें सात लड़के हुए। जॉन स्कडर सीनियर ने अपने सभी बेटों को धर्म-प्रचार के काम में लगाया। सातों बेटे अलग-अलग जगह जाकर ईसाई धर्म का प्रचार करने लगे। जॉन स्कडर जूनियर को भारत भेजा गया।

जब इडा आठ साल की थीं, तब भारत में हैज़ा महामारी फैल गयी। भारत के कई हिस्सों में अकाल भी पड़ गया। महामारी और अकाल की वजह से हालात बद से बदतर होने लगे। भुखमरी की वजह से भी कई लोगों की मौत होने लगी। हैज़ा की चपेट में लाखों लोग आ गये थे। हर तरफ़ जान का ख़तरा था। ऐसी स्थिति में डॉ. जॉन स्कडर ने अपने परिवार के साथ अमेरिका लौटने का फ़ैसला किया। 1878 में डॉ. जॉन स्कडर अपने परिवार के साथ अमेरिका चले गये। जब भारत में हालात सुधरे, तब उन्होंने भारत लौटने का मन बनाया। जब वे भारत लौटे, तब वे अपनी बेटी को अपने साथ नहीं लाये। उन्होंने इडा को अपने भाई और भाभी के पास छोड़ दिया। इडा अपने चाचा और चाची की देख-रेख में रहने लगीं। लेकिन 1887 में इडा के चाचा भी अपने परिवार के साथ धर्म-प्रचार के लिए एशिया चले गये। कई महीनों तक इडा को अमेरिका में अकेले रहना पड़ा। इसी दौरान उन्हें ख़बर

मिली कि भारत में उनकी माँ सोफिया की तबीयत ख़राब है। अपनी माँ की देखभाल करने के लिए इडा भारत के लिए रवाना हो गयीं। इडा को अपनी पढ़ाई बीच में छोड़कर भारत आना पड़ा। जाने-माने धर्म-प्रचारक ड्वाइट लाइमैन मूडी के कहने पर इडा ने मैसाचुसेट्स के नॉर्थफील्ड सेमिनरी में अपनी पढ़ाई शुरू की थी। लेकिन माँ के बीमार होने की ख़बर मिलते ही इडा ने पढ़ाई छोड़ दी और भारत आ गयीं। उन दिनों इडा के माता-पिता तमिलनाडु के टिंडिवनम में रहा करते थे। भारत लौटते ही इडा अपनी माँ की सेवा में लग गयीं।

एक रात जब सभी सो रहे थे, तब कोठी के दरवाज़े में किसी ने दस्तक दी। दस्तक इतनी ज़ोरदार थी कि कुछ पलों में सभी की नींद टूट गयी। सभी को लगा कि मामला बड़ा है। जॉन स्कडर, उनकी पत्नी और इडा, तीनों दरवाज़े पर पहुँचे। जब दरवाज़ा खोला, तो तीनों ने देखा कि तीन लोग खड़े हैं। पूछने पर इन तीनों आदमियों ने बताया कि उनकी पत्नियों को प्रसव-पीड़ा हो रही है। दर्द के मारे वे तीनों कराह रही हैं। हालत गंभीर है। तीनों आदमियों ने मदद की गुहार लगायी।

डॉ. जॉन स्कडर को स्थिति की गंभीरता समझने में देर न लगी। वे तुरंत उन तीन आदमियों के साथ चलने को राज़ी हो गये। लेकिन तीनों आदमियों ने जॉन स्कडर की मदद लेने से इन्कार कर दिया। पूछ जाने पर इन तीनों ने बताया कि वे अपनी पत्नियों का इलाज पुरुष से नहीं करवाएँगे। इस पर डॉक्टर ने कहा, "देखो, यहाँ अभी मैं ही एक ऐसा व्यक्ति हूँ, जो आपकी मदद कर सकता हूँ। मेरी पत्नी बीमार हैं और उनका प्रसव में मदद करना ठीक नहीं है। वे इस हालत में भी नहीं हैं कि किसी की मदद कर सकें। मेरी बेटी को जचगी करवाने का अनुभव नहीं है। आप घबराइए मत, मैं चलता हूँ आपसे के साथ। मैं मदद कर दूँगा।"

इस पर एक शख़्स से कहा, "हुज़ूर, हमारे यहाँ ऐसा मुमकिन नहीं है। हम एक मर्द के हाथों अपनी बीवी का इलाज नहीं करवा सकते हैं। हमारे रिवाज़ इसकी मंजूरी नहीं देते हैं। अगर कोई औरत है, जो हमारी मदद कर सकती है, तो हमें मंजूर है।"

डॉ. जॉन स्कडर ने कई तरह के तर्क देकर उन तीनों आदमियों को यह मनाने की कोशिश की कि डॉक्टर का काम इलाज करना होता है। जॉन स्कडर ने कहा, "डॉक्टर यह नहीं देखता कि इन्सान का धर्म क्या है, उसकी जात क्या है। वह औरत और मर्द में फ़र्क़ नहीं करता। उसका मक़सद इन्सान की जान बचना होता है।"

तीनों में से कोई भी नहीं माना। इन तीनों में दो हिंदू थे और एक मुसलमान। लेकिन तीनों रूढ़िवादी थे। डॉक्टर जॉन स्कडर जानते थे कि आसपास कोई ऐसा शख़्स नहीं है, जो जचगी में इनकी मदद कर सकता है। लेकिन वे ज़ोर-ज़बरदस्ती भी नहीं कर सकते थे। इसी वजह से उन्हें मजबूरन घर पर रहना पड़ा। वे तीनों आदमी लौट गये। अगले दिन डॉक्टर को ख़बर मिली कि प्रसव के दौरान तीनों महिलाओं की मौत हो गयी। जॉन स्कडर को बहुत दुख हुआ। इडा को भी बहुत पीड़ा हुई। इस घटना ने इडा को अंदर से हिलाकर रख दिया। उन्हें लोगों की रूढ़िवादिता पर बहुत ग़ुस्सा आया। पुरुषों की मानसिकता उन्हें महिला-विरोधी लगी।

इडा को एहसास हुआ कि भारत में महिलाओं का इलाज करने के लिए महिला डॉक्टरों की कमी है। अनुभवी दाई के हाथों महिलाओं की जचगी हो जाती है, लेकिन जब वे किसी बीमारी का शिकार होती हैं, तब वे सीधे किसी चिकित्सक के पास नहीं जातीं। महिला का पति किसी चिकित्सक के पास जाता है और लक्षण बताकर दवाइयाँ ले आता है। इडा को इस बात पर भी पीड़ा हुआ कि भारत में महिलाओं की जान मायने नहीं रखती है। समाज पुरुष-प्रधान है।

उन तीन महिलाओं की मौत का असर इडा पर कुछ इस तरह हुआ कि उन्होंने एक बड़ा फ़ैसला ले लिया। फ़ैसला था डॉक्टर बनने का। डॉक्टर बनकर महिलाओं की मदद करने का। बीमार महिलाओं का इलाज करने का। महिलाओं को उनके अधिकार दिलवाने के लिए संघर्ष करने का।

फ़ैसला बड़ा था, इस वजह से काम आसान नहीं था। डॉक्टर बनने के लिए मेडिसिन की पढ़ाई करनी थी। उन दिनों बहुत कम महिलाएँ डॉक्टरी की पढ़ाई करती थीं। भारत में महिला डॉक्टर थी ही नहीं। अमेरिका और यूरोप में महिलाओं ने डॉक्टरी पढ़ाई शुरू कर दी थी।

बड़ी बात यह थी कि इस फ़ैसला से पहले इडा शादी कर अपना घर बसाना चाहती थीं। लेकिन उन तीन महिलाओं की मौत ने इडा को कुछ तरह हिलाकर रख दिया कि उनके लिए शादी करना और अपना घर बसाना प्राथमिकता न रहा।

डॉक्टर बनने के मजबूत इरादे के साथ इडा अमेरिका चली गयीं। 1895 में उन्होंने पेनसिल्वेनिया के वूमन्स मेडिकल कॉलेज में दाख़िला लिया और मेडिसिन

की पढ़ाई शुरू की। डॉक्टरी पढ़ाई के आख़िरी साल इडा ने कॉर्नेल यूनिवर्सिटी वेइल मेडिकल कॉलेज में प्रशिक्षण लिया। उन दिनों यह कॉलेज मेडिसिन की शिक्षा का सबसे नामचीन संस्थान था। इस कॉलेज में इडा ने सर्जरी की प्रक्रिया सीखी। क्लिनिकल ट्रेनिंग ली। डॉक्टर बनने के बाद इडा ने भारत में अस्पताल खोलने के मक़सद से अमेरिका में चंदा जुटाना शुरू किया। एक व्यक्ति ने 10,000 अमेरिकी डॉलर दिये। यह व्यक्ति चाहता था कि भारत में जो अस्पताल बनेगा, उसे उसकी मृत पत्नी का नाम दिया जाए। यह व्यक्ति अपनी पत्नी से बहुत प्यार करता था। लेकिन पत्नी की अकाल मृत्यु ने उसे झकझोर कर रख दिया। वह चाहता था कि कुछ ऐसा काम करे, जिससे महिलाओं की अकाल मृत्यु को रोका जा सके। जब इडा ने अपनी परियोजना के बारे में बताया, तब इस व्यक्ति ने 10,000 अमेरिकी डॉलर दे दिये। उन दिनों यह राशि बहुत बड़ी मानी जाती थी।

जब अस्पताल खोलने के लिए ज़रूरी राशि जुटा ली गयी, तब इडा नॉर्थफील्ड सेमिनरी की सहपाठी और प्रिय मित्र एनी हैनकॉक के साथ भारत के लिए रवाना हुईं। इडा के भारत लौटने के कुछ महीनों बाद उनके पिता की मृत्यु हो गयी। इडा ने अपने पिता की विरासत को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया और लोगों को इलाज करना शुरू किया।

शुरुआती दिनों में उन्हें कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ा। महिला होने की वजह से लोग उनके पास इलाज करवाने से कतराते थे। जिन लोगों ने उनके पिता से अपना इलाज करवाया था, उन लोगों में भी कई लोगों को इडा की क़ाबिलियत पर संदेह था। कई लोग तो ऐसे थे, जिन्हें इस बात पर यक़ीन नहीं था कि महिला भी डॉक्टर हो सकती है। ये लोग मानते थे कि केवल पुरुष ही चिकित्सक हो सकते हैं और लोगों का इलाज करने की ताक़त सिर्फ़ पुरुषों में होती है।

यह वह समय था, जब भारत में स्कूली शिक्षा सिर्फ़ लड़कों तक सीमित थी। लड़कियाँ घर के कामकाज किया करती थीं। शिक्षा कुछ परिवारों तक सीमित थी। ज़्यादातर लोग अनपढ़ थे। और तो और, भारत में कई सामाजिक कुरीतियाँ थीं। समाज में जातिवाद हावी था। छुआछूत का बोलबाला था। अमीर लोगों की संख्या बहुत कम थी। ग़रीबी चरम पर थी। हर दिन कई लोग भुखमरी का शिकार हुआ करते थे। महामारी आम बात थी और महामारी के दौर में लाखों लोगों की जान चली

जाती थी। लोगों का विश्वास जीतने के लिए इडा को कड़ी मेहनत करनी पड़ी।

साल 1900 में इडा ने उस बंगले में सिंगल बेड डिस्पेंसरी शुरू की, जिसमें उनके पिता रहा करते थे। माँ की मदद से इडा ने इसी डिस्पेंसरी में लोगों का इलाज करना शुरू किया। इसके बाद इडा ने अमेरिका में जो डॉलर इकट्ठा किये थे, उससे वेल्लूर में एक अस्पताल का निर्माण शुरू किया। 1902 में यह अस्पताल बनकर तैयार हुआ। इस अस्पताल में मरीज़ों के इलाज के लिए 40 बिस्तर थे। इस अस्पताल को उस चंदादाता की पत्नी का नाम दिया गया, जिसने दस हज़ार अमेरिकी डॉलर दिये थे। अस्पताल का नाम रखा गया मैरी टैबर शेल मेमोरियल हॉस्पिटल। भारत में सर्जरी विभाग की शुरुआत इसी अस्पताल में हुई। ख़ुद इडा ने सर्जरियाँ करनी शुरू कीं। कामयाब सर्जरियों की वजह से लोगों का विश्वास इडा पर बढ़ता चला गया। जिन मरीज़ों का इलाज दवाइयों से संभव था, इडा उन्हें दवाइयाँ देतीं। जिन मरीज़ों की बीमारी के इलाज के लिए सर्जरी ज़रूरी होती, इडा ख़ुद सर्जरी करतीं। इडा के हाथों इलाज कर बीमारी से मुक्त होने वाले लोग उनके मुरीद हो जाते। 'ऑपरेशन करने वाली डॉक्टर' के रूप में इडा की ख्याति दूर-दूर तक पहुँचने लगी। यह धारणा भी टूट गयी कि डॉक्टर सिर्फ़ मर्द होते हैं। यह भ्रम भी टूटा कि महिला सर्जरी नहीं कर सकती है। इडा 'महिला-शक्ति' की प्रतीक के रूप में उभरीं। उनसे इलाज करवाने के लिए दूर-दूर से लोग वेल्लूर आने लगे।

इडा ने अपने अस्पताल में उन शिक्षित महिलाओं को विशेष प्रशिक्षण देना शुरू किया, जो कंपाउंडर बनने की इच्छुक थीं। इडा ने 1903 में 'कंपाउंडर कोर्स' की शुरुआत की।

इसी दौरान इडा ने ग़ौर किया कि कई लोग परिवहन का साधन न होने की वजह से अस्पताल नहीं पहुँच पा रहे हैं। ग़रीबी कई लोगों को इलाज से दूर कर रही है। और तो और, महिलाएँ इलाज के लिए घर से बाहर नहीं निकल पा रही हैं। इडा ने ऐसे लोगों की मदद के लिए एक नयी योजना शुरू की।

इडा ने 'सड़क किनारे क्लीनिक' योजना की शुरुआत की। इस योजना के तहत इडा अपने सहायकों के साथ अलग-अलग गाँव जातीं और वहाँ अपनी क्लीनिक लगातीं। जिस गाँव में क्लीनिक लगती, उस गाँव के लोग ही नहीं, बल्कि आसपास के गाँवों के लोग भी आकर अपना इलाज यहीं करवाते। इस कार्यक्रम की

वजह से भी इडा की लोकप्रियता ख़ूब बढ़ी। उनके नाम और काम की चर्चा अब भारत के कोने-कोने में होने लगी।

साल 1909 में नर्सिंग कोर्स शुरू किया गया। भारत में नर्सिंग शिक्षा में डिप्लोमा पाठ्यक्रम की शुरुआत इडा के अस्पताल से हुई। इडा जानती थीं कि अस्पताल में मरीज़ों की देखभाल के लिए नर्सों का होना ज़रूरी है। डॉक्टर हर मरीज़ के साथ पूरा समय नहीं बिता सकता है। इलाज की प्रक्रिया नर्स को बता दी जाती है और जब डॉक्टर दूसरे मरीज़ों के इलाज में व्यस्त होते हैं, तब नर्सें इलाज की प्रक्रिया को आगे बढ़ाती हैं।

इडा को महिलाओं की ताक़त पर पूरा भरोसा था। भारत में महिलाओं की मदद करने के दृढ़ संकल्प की वजह से वे डॉक्टर बनी थीं। इडा चाहती थीं कि भारत में भी लड़कियाँ शिक्षित हों। भारत की महिलाएँ बड़ी संख्या में नर्स और डॉक्टर बनें। यही वजह थी कि इडा ने महिलाओं की शिक्षा पर ज़ोर दिया। अपने अस्पताल में महिलाओं के लिए अलग-अलग कोर्सों की शुरुआत की।

साल 1918 में इडा ने एक और बड़ा क्रांतिकारी क़दम उठाया। इडा ने भारत का पहला मेडिकल स्कूल स्थापित किया। मेडिकल प्रैक्टिशनर कोर्स की शुरुआत की। जो विद्यार्थी इस कोर्स की परीक्षा में पास हो जाते थे, उन्हें लोगों का इलाज करने के लिए ज़रूरी लाइसेंस दिया जाने लगा। जिस व्यक्ति को इलाज करने का लाइसेंस मिलता, उसे 'लाइसेन्शीइट प्रैक्टिशनर' कहा जाता। अस्पताल में मरीज़ों की लगातार बढ़ती संख्या को ध्यान में रखते हुए इडा ने थोट्टप्पलायम में नया अस्पताल भवन बनाया।

भारत की आज़ादी की लड़ाई के महानायक मोहनदास करमचंद गांधी भी इडा के काम से बहुत प्रभावित थे। 1928 में महात्मा गांधी ने इडा के मेडिकल स्कूल का दौरा किया और जन-सेवा के लिए इडा और उनके सहयोगियों की जमकर तारीफ़ की।

1942 में इडा ने मेडिकल कॉलेज की स्थापना की और एमबीबीएस पाठ्यक्रम शुरू किया। कॉलेज का नाम रखा गया क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज। इस कॉलेज की स्थापन में अमेरिका के कई चर्चों का बड़ा योगदान था। इस कॉलेज में सिर्फ़ लड़कियों को डॉक्टरी शिक्षा दी जाने लगी। यह बहुत बड़ा क़दम था। उन दिनों भारत

में बहुत कम मेडिकल कॉलेज थे। भारत आज़ाद नहीं हुआ था। भारत का विभाजन भी नहीं हुआ था। अविभाजित भारत में उन दिनों पॉन्डिचेरी, कलकत्ता, मद्रास, गोवा, बॉम्बे, लाहौर, लखनऊ, पटना और आगरा में मेडिकल कॉलेज चल रहे थे। इडा ने मेडिकल कॉलेज खोलकर ऐतिहासिक क़दम उठाया था। इससे पहले भारत में जितने भी मेडिकल कॉलेज खुले थे, सभी सरकार ने खोले थे। पॉन्डिचेरी के कॉलेज को छोड़कर बाक़ी सभी मेडिकल कॉलेजों की स्थापना अंग्रेज़ी हुकूमत ने की थी। इडा नये-नये क्रांतिकारी और ऐतिहासिक कार्य करते हुए कामयाबियों के झंडे गाढ़ रही थीं।

इडा ने साल 1945 में लैब तकनीशियन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम शुरू किया। इसके अगले साल, यानी 1946 में भारत का पहला नर्सिंग कॉलेज स्थापित किया। 'नर्सिंग' में डिग्री कोर्स की शुरुआत की गयी।

भारत की आज़ादी के बाद भी इडा की जन-सेवा जारी रही। वे भारत छोड़कर नहीं गयीं। 1947 से क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में लड़कों को भी दाख़िला दिया जाने लगा।

1948 में क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज ने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। दुनिया में पहली बार इसी अस्पताल में कुष्ठ रोगी की 'पुनर्निर्माण सर्जरी' यानी रीकंस्ट्रक्टिव सर्जरी की गयी। कुष्ठ रोग के जानकार और सर्जन डॉ. पॉल ब्रैंड ने 'पुनर्निर्माण सर्जरी' कर नया इतिहास रचा।

उन दिनों कई लोग कुष्ठ रोग को लाइलाज मानते थे। कई लोग इसे छुआछूत वाला रोग कहते थे। कुष्ठ रोग से पीड़ित इन्सान का सामाजिक बहिष्कार किया जाता था। इडा ने अपने अस्पताल में कुष्ठ रोगियों के इलाज की व्यवस्था की। कुष्ठ रोगियों के लिए एक सेनेटोरियम बनाया। इडा ने टीबी के मरीज़ों के लिए भी एक अलग सेनिटेरियम स्थापित किया।

इडा ने डॉ. पॉल ब्रैंड से भारत आने और क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में अपनी सेवाएँ देने का अनुरोध किया था। इस अनुरोध को स्वीकार कर वे 1946 में भारत आ गये और मरीज़ों का इलाज करने लगे। डॉ. पॉल ब्रैंड का जन्म भी तमिलनाडु में हुआ था। उनके माता-पिता भी धर्म-प्रचार के लिए भारत आये थे। डॉ. पॉल ब्रैंड ने लंदन के यूनिवर्सिटी कॉलेज अस्पताल (यूसीएच) से डॉक्टरी शिक्षा हासिल की थी।

दक्षिण एशिया में पहली बार किसी अस्पताल में न्यूरोलॉजी डिपार्टमेंट यानी तंत्रिका-विज्ञान विभाग की स्थापना इसी अस्पताल में की गयी। साल 1949 में मशहूर न्यरो सर्जन डॉ. जैकब चांडी ने इस विभाग की शुरुआत की। डॉ. जैकब चांडी भारत में 'न्यूरो सर्जरी के जनक' के रूप में मशहूर हुए। इनका जन्म 23 जनवरी, 1910 में केरल के कोट्टायम में हुआ था। उन्होंने मद्रास मेडिकल कॉलेज से एमबीबीएस की पढ़ाई की और डॉक्टर बने। उन्होंने बहरीन के एक हॉस्पिटल से अपने डॉक्टरी जीवन की शुरुआत की। डॉ. जैकब चांडी ने इस मिशनरी हॉस्पिटल में साल 1944 तक काम किया। इसके बाद वे एमडी कोर्स करने के लिए अमेरिका चले गये। यहाँ पेंसिलवेनिया यूनिवर्सिटी से एमडी की डिग्री हासिल की। अपने अमेरिका-प्रवास के दौरान डॉ. जैकब चांडी ने जोनाथन रोड्स से सर्जरी की प्रक्रिया सीखी। साल 1945 में डॉ. चांडी को मॉन्ट्रियल न्यूरोलॉजिकल इंस्टीट्यूट की फेलोशिप मिली। 1948 तक इसी इंस्टीट्यूट में उन्होंने कई सर्जरियाँ की। रॉयल कॉलेज ऑफ़ कनाडा की फेलोशिप मिलने पर वे शिकागो चले गये। उन्हें शिकागो यूनिवर्सिटी का चीफ रेजिडेंट नियुक्त किया गया। साल 1948 में वे भारत लौट आये और क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में न्यूरो सर्जरी का पहला विभाग शुरू किया। चांडी ने सन् 1951 में न्यूरोलॉजिकल सोसाइटी ऑफ़ इंडिया की स्थापना की। 1958 में डॉ. जैकब चांडी की अगुवाई में न्यूरो सर्जरी पर पहला ट्रेनिंग प्रोग्राम आयोजित किया गया।

इडा की कोशिशों की वजह से साल 1950 में क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में एमडी और एमएस कोर्सों की शुरुआत हो गयी। साल 1954 में इडा ने रेडियोग्राफर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम शुरू करवाया। 1956 में मानसिक स्वास्थ्य केंद्र की स्थापना की। 1957 में फार्मेसी डिप्लोमा कोर्स शुरू किया।

इडा की लोकप्रियता चरम पर पहुँच गयी थी। एक घटना से उनकी लोकप्रियता का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। एक बार एक व्यक्ति ने इडा ने नाम विदेश से ख़त लिखा। यह व्यक्ति इडा की जन-सेवा से प्रभावित था। इसने इडा की तारीफ़ करते हुए ख़त लिखा। लेकिन इस व्यक्ति को इडा का पता नहीं मालूम था। इस शख़्स ने ख़त पर नाम और पते वाली जगह सिर्फ़ इडा का नाम लिखा और उसके नीचे इंडिया लिखा। इसके बावजूद ख़त इडा तक पहुँच गया, यानी सभी जानते थे कि इडा कहाँ रहती हैं।

जन-सेवा को मिशन बनाकर जीने वाली इडा ने 89 साल की उम्र में अंतिम साँस ली। 23 मई, 1960 को भारत में उनका निधन हो गया। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद भी क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज और अस्पताल में नये-नये कीर्तिमान स्थापित करने का काम जारी रहा। सर्वोन्नत स्तरीय शोध और अनुसंधान भी जारी रहा। लोगों का इलाज कभी नहीं रुका। अस्पताल में नये-नये विभाग खोले जाने लगे। चिकित्सकीय विज्ञान से जुड़े नये-नये पाठ्यक्रम शुरू किये जाने लगे।

साल 1961 में क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज ने एक बार फिर सारी दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इसी अस्पताल में भारत की पहली सफल ओपन हार्ट सर्जरी हुई। इसी साल भारत में पहली बार कान की माइक्रोसर्जरी भी यहीं हुई। भारत में पहली बार 'गुर्दा डायलिसिस उपचार' भी इसी अस्पताल में शुरू हुआ। 1962 में मेडिकल रिकॉर्ड्स और फिजियोथेरेपी पाठ्यक्रम शुरू किया गया। 1965 में 'फ्लेमिंग मेमोरियल रिसर्च लेबोरेटरी इन वायरोलॉजी' की स्थापना हुई। 1966 में भारत का पहला पुनर्वास संस्थान शुरू किया गया। 1968 में व्यावसायिक चिकित्सा और अस्पताल प्रशासन पाठ्यक्रम और 1969 में कॉलेज ऑफ़ नर्सिंग में पोस्ट-ग्रेजुएट डिग्री कोर्स की शुरुआत हुई। 1970 में भारत का पहला नेफ्रोलॉजी विभाग खोला गया।

क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज और अस्पताल की महान चिकित्सा उपलब्धियों और वहाँ काम करने वाले डॉक्टरों की नायाब कामयाबियों के बारे में जानकर श्यामा प्रसाद को बहुत ख़ुशी हुई। पिता की सलाह मानते हुए श्यामा प्रसाद ने पहले दिन से ही पूरा समय और ध्यान शिक्षण-प्रशिक्षण पर लगाना शुरू किया। श्यामा प्रसाद एक कामयाब सर्जन बनना चाहते थे, इस वजह से उन्होंने अपना ज़्यादा समय ऑपरेशन थिएटर में बिताना शुरू किया। यूरोलोजी, कार्डियोथोरेसिक और वैस्कुलर सर्जरी, प्लास्टिक सर्जरी, पीडियाट्रिक्स, ईएनटी, ऑर्थोपेडिक, जनरल सर्जरी विभागों में श्यामा प्रसाद को बहुत कुछ नया सीखने को मिला। अलग-अलग विभागों के अलग-अलग ऑपरेशन थिएटरों में अलग-अलग तरह की सर्जरी-प्रक्रियाओं को सीखने का मौक़ा मिला।

क्रिश्चियन मेडिकल अस्पताल की ख़ास बात यह थी कि यहाँ दिन में चौबीस घंटे लोगों का इलाज चलता रहता था। दिन-रात ऑपरेशन थिएटर में सर्जरियाँ होती

रहती थीं। इसी वजह से मेडिकल विद्यार्थी के लिए हमेशा कुछ नया सीखने का मौक़ा रहता था।

सभी शिक्षक अनुभवी थे और विद्यार्थियों की हर मुमकिन मदद किया करते थे। सर्जरी करते समय सर्जन विद्यार्थियों को बीमारी और उसके इलाज के बारे में बताते थे। इतना ही नहीं, सर्जरी की प्रक्रिया से जुड़े हर पहलू के बारे में समझाते थे। सर्जरी पूरी होने के बाद विद्यार्थियों के सवालों का जवाब देते थे। हर विद्यार्थी की शंका दूर करना अपनी ज़िम्मेदारी समझते थे। अपनी निगरानी में विद्यार्थियों से सर्जरियाँ करवाते थे। श्यामा प्रसाद को भी अपने प्रोफ़ेसरों की पर्यवेक्षण में कई बार सर्जरी करने का मौक़ा मिला।

इसी बीच श्यामा प्रसाद को यह पता चला कि क्रिश्चियन मेडिकल हॉस्पिटल में पहली बार किडनी ट्रांसप्लांट किया जाएगा। यह कोई मामूली घटना नहीं थी। भारत में इससे पहले कभी किडनी ट्रांसप्लांट नहीं किया गया था। कुछ विकसित देशों में किडनी ट्रांसप्लांट किया गया था।

श्यामा प्रसाद को लगा कि उन्हें इस ऐतिहासिक घटना का साक्षी बनना चाहिए। उन्हें लगा कि अगर वे किडनी ट्रांसप्लांट की प्रक्रिया देखेंगे, तब वे भी इस प्रक्रिया के बारे में सीख पाएँगे।

उन दिनों किडनी ट्रांसप्लांट की प्रक्रिया घंटों चलती थी। दुनिया का पहला किडनी ट्रांसप्लाट शिकागो में हुआ था। अमेरिकी महिला रूथ टकर के दोनों गुर्दे ख़राब हो गये थे। डॉक्टर रिजर्ड लॉलर की टीम ने एक मृत महिला के शरीर से किडनी निकालकर रूथ को लगायी थी। नौ माह तक रूथ के शरीर में ट्रांसप्लांट किडनी रखी गयी। इस बीच दूसरी किडनी ठीक हो गयी और वे पाँच साल तक ज़िंदा रहीं।

इसके बाद 1954 में पहली बार दो ज़िंदा लोगों के बीच किडनी ट्रांसप्लांट हुआ। रिचर्ड हेरिक की जान बचाने के लिए उनके जुड़वां भाई रोनाल्ड ने अपनी किडनी देने का फ़ैसला किया था। बॉस्टन में डॉक्टरों की एक टीम ने किडनी ट्रांसप्लांट किया।

'किडनी ट्रांसप्लांट' में एक व्यक्ति के शरीर से किडनी निकालकर उसे उस व्यक्ति के शरीर में डाला जाता, जिसकी किडनी ने काम बंद कर दिया हो। किडनी फ़ेल होने पर या किडनी में कोई बड़ी बीमारी होने पर ट्रांसप्लांट की ज़रूरत पड़ती

है। उन दिनों गुर्दे ख़राब होने की वजह से कई लोगों की मौत हो रही थी। जान बचाने के लिए 'किडनी ट्रांसप्लांट' की सर्जिकल प्रक्रिया वरदान साबित होने लगी थी।

किडनी ट्रांसप्लांट में कई तरह के जोख़िम होते हैं। ज़रा-सी लापरवाही मरीज़ की जान ले सकती है। सर्जरी में निपुण व्यक्ति ही किडनी ट्रांसप्लांट कर सकता है। इस प्रक्रिया में सिर्फ़ एक सर्जन से काम नहीं होता। सर्जनों की एक टीम प्रक्रिया को अंजाम देती है। श्यामा प्रसाद इस सारी प्रक्रिया को देखने को बेचैन हुए जा रहे थे। वे अपने प्रोफ़ेसरों के पास पहुँचे और उन्हें यह प्रक्रिया देखने की अनुमति देने का अनुरोध किया। प्रोफ़ेसर अच्छे से जानते थे कि श्यामा प्रसाद में सीखने की ललक ग़ज़ब की है। उनमें एक बेहद कामयाब सर्जन बनने के सारे गुण मौजूद हैं। इसी वजह से प्रोफ़ेसरों ने श्यामा प्रसाद का अनुरोध स्वीकार कर दिया। लेकिन किडनी ट्रांसप्लांट की सारी प्रक्रिया देखने के लिए एक शर्त रखी। यह शर्त सर्जरी में पीजी कर रहे सभी विद्यार्थियों के लिए थी। विद्यार्थियों से कहा गया कि किडनी ट्रांसप्लांट वाले दिन जो विद्यार्थी तड़के 4 बजे ऑपरेशन थिएटर पहुँचेगा, उसे ही प्रक्रिया देखने का मौक़ा मिलेगा।

किडनी ट्रांसप्लांट की प्रक्रिया वाले दिन की पिछली रात श्यामा प्रसाद सोये ही नहीं। उन्हें लगा कि अगर वे सो गये और समय पर नींद नहीं टूटी, तो वे एक ऐतिहासिक घटना का साक्षी नहीं बन पाएँगे।

उन दिनों हर तरफ़ इसी किडनी ट्रांसप्लांट को लेकर चर्चा हो रही थी। चिकित्सा-क्षेत्र से जुड़े कई सर्जन और डॉक्टर इस प्रक्रिया को प्रत्यक्ष देखना चाहते थे। चूँकि प्रक्रिया बहुत जटिल थी और बेहद साफ़-सुथरे और अनुकूल माहौल में की जानी थी, ज़्यादा लोगों को ऑपरेशन थिएटर और उसके आसपास आने की इजाज़त नहीं दी जा सकती थी। श्यामा प्रसाद ख़ुद को बेहद ख़ुशनसीब मान रहे थे कि उन्हें यह प्रक्रिया देखने का मौक़ा मिलने वाला है। वे किसी सूरत-ओ-हाल इस मौक़े को गँवाना नहीं चाहते थे। इस वजह से वे रात-भर सोये नहीं। ठीक चार बजे श्यामा प्रसाद ऑपरेशन थिएटर पहुँच गये। एक सर्जन ने उन्हें वह गुर्दा दिखाया, जिसे मरीज़ के शरीर में लगाया जाने वाला था। इस ट्रांसप्लांट को लेकर ऑपरेशन थिएटर और उसके बाहर क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज और हॉस्पिटल से जुड़े लोग बेहद रोमांचित और उत्साहित थे।

निर्धारित समय पर प्रक्रिया शुरू हुई। मरीज़ के शरीर से ख़राब हो चुका गुर्दा निकाला गया और उसकी जगह दूसरे व्यक्ति का गुर्दा लगाया गया। इस प्रक्रिया को पूरा होने में छह घंटे से ज़्यादा समय लगा।

श्यामा प्रसाद ने किडनी ट्रांसप्लांट से जुड़े काम को बड़े ग़ौर से देखा। किडनी ट्रांसप्लांट कामयाब रहा। इस ऐतिहासिक कामयाबी पर क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में ही नहीं बल्कि पूरे भारतीय चिकित्सा-क्षेत्र में ख़ुशी की लहर दौड़ गयी। इस कामयाबी की वजह से श्यामा प्रसाद भी गदगद हुए। उनके मन में नये उत्साह का संचार हुआ। इस घटना ने उनकी सोच में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया। उनका नज़रिया पूरी तरह से सकारात्मक हो गया। उन्हें लगा कि कोशिश जारी रहनी चाहिए। बिना कोशिश किये कामयाबी हासिल नहीं होती। नामुमकिन जैसा कुछ नहीं है। भारत के चिकित्सक किसी से पीछे नहीं हैं। भारत में भी अब बड़ी-बड़ी सर्जरियाँ मुमकिन हैं। बड़े-बड़े ऑपरेशन किये जा सकते हैं। इस ऐतिहासिक घटना का साक्षी बनने की वजह से श्यामा प्रसाद का आत्म-विश्वास दृढ़ हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि जीवन को नयी दशा और दिशा मिली है।

क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में श्यामा प्रसाद सबसे ज़्यादा प्रभावित डॉ. गणेशन से हुए। डॉ. गणेशन नामचीन सर्जन थे। इन्होंने श्यामा प्रसाद को अलग-अलग बीमारियों के निदान के लिए की जाने वाली सर्जरियों के बारे में बताया। कई बार सर्जरी करने का मौक़ा दिया। श्यामा प्रसाद को डॉ. लिली जॉन के काम करने का तरीक़ा भी बहुत पसंद आया। डॉ. लिली जॉन दिल का ऑपरेशन किया करते थे। क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में प्रोफ़ेसर रामचंद्र राव ने भी श्यामा प्रसाद की बहुत मदद की। वे तेलुगुभाषी थे।

वैसे तो श्यामा प्रसाद को वेल्लूर में फ़ुर्सत के दिन बहुत कम मिलते थे, लेकिन जब भी उन्हें पढ़ाई-लिखाई, शिक्षण-प्रशिक्षण से फ़ुर्सत मिलती, वे अपना समय दोस्तों के साथ बिताते। छुट्टी वाले दिन वे दोस्तों के साथ फ़िल्म देखने चले जाते। वेल्लूर के सिनेमाघरों में ज़्यादातर तमिल फ़िल्में लगती थीं। श्यामा प्रसाद ने अपने एक साल के वेल्लूर-प्रवास के दौरान कई तमिल फ़िल्में देखीं। वेल्लूर में रहने की वजह से तमिल भाषा पर उनकी पकड़ मजबूत हो गयी। मौक़ा मिलने पर वे अपने दोस्तों

के साथ तिरुपति भी आ-जाया करते। घर पर कुछ ख़ुशनुमा पल बिताने के बाद वे वेल्लूर लौट आते।

एक साल के वेल्लूर-प्रवास ने श्यामा प्रसाद की ज़िंदगी बदल दी। जिस तरह का उन्नत स्तरीय शिक्षण-प्रशिक्षण उन्हें यहाँ मिला, उसकी वजह से उनका विश्वास हिमालय जितना ऊँचा और मजबूत हो गया। एक साल तक क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज में ट्रेनिंग लेने के बाद आख़िरी साल की पढ़ाई के लिए श्यामा प्रसाद श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज लौट आये।

श्यामा प्रसाद ने पीजी कोर्स के दौरान लोगों को रक्तदान करने के लिए प्रेरित किया। हर तीन महीने में रक्तदान करने की उनकी आदत बरक़रार रही। जब भी किसी को 'ओ' ग्रुप ख़ून की अचानक ज़रूरत पड़ती, तब श्यामा प्रसाद तुरंत अपना ख़ून देने को राज़ी हो जाते।

अस्पताल में ख़ून की कमी पड़ने पर विद्यार्थी आकर ख़ून दे सकें, इस मक़सद से श्यामा प्रसाद ने एक डायरेक्टरी तैयार की। इस डायरेक्टरी में सभी विद्यार्थियों का ब्लड ग्रुप और उनका पता लिखा हुआ था। अस्पताल में अगर किसी ब्लड ग्रुप विशेष की कमी पड़ी, तो ख़ून के लिए अस्पताल प्रबंधन किसी भी समय इन विद्यार्थियों से संपर्क कर सकता था।

माँ श्यामा प्रसाद को बार-बार ख़ून देने से मना करती थीं। श्यामा प्रसाद दुबले-पतले थे। माँ को शंका थी कि ख़ून देने से वे कमज़ोर हो जाएँगे। लेकिन पिता सुंदरय्या ने हमेशा सभी की शंकाओं को दूर करने की कोशिश की। इतना ही नहीं, सुंदरय्या और श्यामा प्रसाद लोगों को रक्तदान से होने वाले फ़ायदों के बारे में बताते। वे कहते कि ऑपरेशन के समय काफ़ी ख़ून शरीर से निकल जाता है। ऑपरेशन के समय और उसके बाद मरीज़ की जान बचाने के लिए ख़ून की ज़रूरत होती है। सही समय पर ख़ून न मिलने से मरीज़ की जान जा सकती है। इसी वजह से रक्तदान से इन्सानों की जान बचायी जा सकती है। यह जानना भी बहुत ज़रूरी है कि हर इन्सान रक्तदान नहीं कर सकता है। स्वस्थ्य इन्सान ही ख़ून दे सकता है। बीमार इन्सान ख़ून का दान नहीं कर सकता है।

साल 1900 में मशहूर जीव-वैज्ञानिक कार्ल लैंडस्टैनर ने इन्सान के ख़ून को चार समूहों—ए, बी, एबी और ओ में बाँटा था।. ओ को छोड़ कर ए, बी, एबी समूहों

की कोशिकाओं में अनुरूपी एंटीजेन्स होते हैं। इसलिए ओ किसी भी समूह को अपना ख़ून दे सकता है और 'यूनिवर्सल डोनर' कहलाता है। एबी समूह को 'यूनिवर्सल रेसिपिएंट' कहते हैं, क्योंकि यह ए, बी, एबी और ओ सभी रक्त समूह से रक्त ले सकता है। आमतौर पर माना जाता है कि सबसे दुर्लभ रक्त समूह ओ नेगेटिव होता है, जो बहुत मुश्किल से मिलता है, क्योंकि यह रक्त चुनिंदा लोगों में पाया जाता है। लेकिन ओ नेगेटिव रक्त समूह से भी दुर्लभ एक ऐसा रक्त समूह है, जो लाखो लोगों में से किसी एक में पाया जाता है। इस समूह का नाम बॉम्बे ब्लड ग्रुप है। इस रक्त समूह को 'रेयर ऑफ़ द रेयरेस्ट' रक्त समूह भी कहते है। यह रेयरेस्ट ऑफ़ रेयर ब्लड टाइप विश्व में सिर्फ 0.0004 फ़ीसदी लोगों में पाया जाता है। एक अनुमान के मुताबिक़, भारत में 10,000 लोगों में केवल एक व्यक्ति का ब्लड बॉम्बे ब्लड टाइप है। इसे एबीओ ब्लड टाइप भी कहते हैं। डॉ. वाई. एम. भडे ने 1952 में इसकी खोज की थी। इसको बॉम्बे ब्लड इसलिए कहा जाता है क्योंकि सबसे पहले यह बॉम्बे के कुछ लोगों में पाया गया था। इस ब्लड टाइप के भीतर पायी जाने वाली फेनोटाइप रिएक्शन के बाद यह पता चला कि इसमें एक एच एंटीजेन होता है। इससे पहले इसे कभी नहीं देखा गया था। अधिक समझने के लिए इनकी लाल कोशिकाओं (आरबीसी) में एबीएच एंटीजन होते हैं और उनकी सीरा में एंटी-ए, एंटी-बी और एंटी-एच होते हैं। एंटी-एच को एबीओ समूह में नहीं खोजा गया है, लेकिन प्रीट्रांसफ्यूज़न टेस्ट में इसके बारे में पता चला है। यही एच एंटीजन एबीओ ब्लड समूह में बिल्डिंग ब्लॉक का काम करते है। एच एंटीजन की कमी 'बॉम्बे फेनोटाइप' के रूप में जानी जाती है। बॉम्बे ब्लड ग्रुप वाला व्यक्ति एबीओ ब्लड ग्रुप वाले को ब्लड दे सकता है। लेकिन इनसे ब्लड ले नहीं सकता है। यह सिर्फ़ अपने ही ब्लड ग्रुप यानी एचएच ब्लड टाइप वालों से ही ब्लड ले सकता हैं। अक्सर देखा गया है कि यह ब्लड ग्रुप टाइप क़रीबी ब्लड रिलेशन वाले लोगों में ही पाया जाता है। बॉम्बे में इस फेनोटाइप को रखने वाले व्यक्ति मात्र 0.01 फ़ीसदी होंगे। अगर माता-पिता का ब्लड बॉम्बे ब्लड टाइप है, तो ऐसी संभावना होती है कि बच्चे का ब्लड टाइप भी एचएच होगा। श्यामा प्रसाद ने पढ़ाई के साथ-साथ रक्तदान के प्रति लोगों में जागरूकता लाने की हर मुमकिन कोशिश की।

'मास्टर ऑफ़ सर्जरी' की पढ़ाई आसान नहीं होती। विद्यार्थी को काफ़ी समय

ऑपरेशन थिएटर में बिताना पड़ता है। मोटी-मोटी किताबें पढ़नी पड़ती हैं। शोध और अनुसंधान करना पड़ता है। लिखित और मौखिक परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं। परीक्षाएँ आसान नहीं होतीं। पाठ्यक्रम व्यापक होता है। श्यामा प्रसाद ने ऑपरेशन थिएटर में काम करते हुए सर्जरी की प्रक्रिया के बारे में बहुत कुछ सीख लिया था। सीखने की प्रक्रिया निरंतर जारी थी। सभी सीनियर विद्यार्थी और शिक्षक श्यामा प्रसाद के कामकाज से ख़ुश थे। मरीज़ों की देखभाल के मामले में भी श्यामा प्रसाद कई विद्यार्थियों से आगे थे। प्रैक्टिकल परीक्षा से श्यामा प्रसाद को कोई डर नहीं था। उन्हें लिखित परीक्षा का डर सता रहा था। परीक्षा से पहले श्यामा प्रसाद अपना ज़्यादा समय किताबों को पढ़ने में बिताते थे। लेकिन परीक्षा के लिए कई किताबें पढ़नी होती हैं, इस वजह से उन्हें हर किताब की हर बात को याद रखना मुश्किल जान पड़ा। श्यामा प्रसाद की कोशिश में कोई कमी नहीं थी, लेकिन वे अलग-अलग महत्वपूर्ण विषयों की बातें भूल रहे थे। ऑपरेशन करने में उन्हें मज़ा आता था, लेकिन परीक्षा लिखने में नहीं। श्यामा प्रसाद का मानना था कि सर्जरी के कोर्स में लिखित परीक्षाएँ कम होनी चाहिए और प्रायोगिक परीक्षाएँ ज़्यादा। लेकिन मेडिकल शिक्षा के नियम वे बदल नहीं सकते थे। एमएस की डिग्री हासिल करने के लिए लिखित, मौखिक और प्रायोगिक परीक्षाओं में पास होना ज़रूरी था।

एक बार की बात है। श्यामा प्रसाद एग्ज़ाम की तैयारी में जुटे थे। वे पाठ्यक्रम की किताब पढ़ने लगे। जैसे ही एक चैप्टर ख़त्म कर वे दूसरे चैप्टर में जाते, वे पहले चैप्टर की बातें भूल जाते। यही क्रम कई दिनों तक जारी रहा। श्यामा प्रसाद को घबराहट महसूस हुई। उन्हें लगा कि उन्हें एकाग्रता-विकार है। इस विकार को दूर करने के मक़सद से परीक्षा से ठीक एक दिन पहले श्यामा प्रसाद ने डेक्सएड्रिन की एक गोली खा ली। श्यामा प्रसाद ने पढ़ा था और अपने शिक्षकों से सुना भी था कि डेक्सएड्रिन की गोली लेने की वजह से एकाग्रता बढ़ती है। इन्सान सतर्क हो जाता है। आत्मविश्वास बढ़ता है और आशंकाएँ दूर होती हैं। इतना ही नहीं, इस गोली को खाने से नींद नहीं आती। श्यामा प्रसाद को लगा कि वे परीक्षा से पहले वाली रात को यह गोली लेंगे। गोली लेने से उन्हें नींद नहीं आएगी और उनकी किताबों के प्रति एकाग्रता बढ़ेगी। श्यामा प्रसाद ने गोली खा ली, और रात-भर किताबों का कीड़ा बने रहे। सुबह जब वे परीक्षा देने केंद्र पहुँचे, अब प्रश्न-पत्र देखकर उनका

माथा चकरा गया। उन्हें एक भी प्रश्न का उत्तर याद नहीं था। गोली का शायद उल्टा असर हुआ था। जो याद किया, वह सारा भूल गये। लाख कोशिश करने पर भी कुछ याद नहीं आया। श्यामा प्रसाद एक वाक्य भी ठीक से नहीं लिख पाये। उन्हें ख़ुद पर बहुत ग़ुस्सा आया। ख़ुद से घिन्न होने लगी। उन्हें यक़ीन हो गया कि वे परीक्षा पास नहीं कर पाएँगे। निराश मन से श्यामा प्रसाद घर लौट आये। जैसा कि अनुमान था, श्यामा प्रसाद परीक्षा में फेल हो गये। जीवन में यह पहली ऐसी परीक्षा थी, जिसमें श्यामा प्रसाद फेल हुए थे। पहली क्लास से लेकर एमबीबीएस की पढ़ाई तक श्यामा प्रसाद हर परीक्षा में पास हुए थे। प्रवेश-परीक्षाओं में भी उनका प्रदर्शन शानदार रहा था। एमएस कोर्स के दौरान भी उनकी गिनती सबसे होनहार विद्यार्थी के रूप में होती थी। वे सभी शिक्षकों के प्रिय छात्र थे। सभी यही मानते थे कि श्यामा प्रसाद शानदार नंबरों से परीक्षा पास करेंगे। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। सभी शिक्षक परीक्षा-परिणाम देखकर दंग रह गये। सुंदरय्या के लिए भी इस बात पर यक़ीन करना मुश्किल था कि उनका लड़का परीक्षा में फेल हो गया है। सुंदरय्या को सभी शिक्षकों ने बताया था कि उनका बेटा शानदार सर्जन बनने जा रहा है। वह मेहनती है और उसने आसानी से सर्जरी की प्रक्रिया सीख ली। मरीज़ों की देखभाल के मामले में भी वह अव्वल है। सुंदरय्या को यह बात समझ नहीं आयी कि उनका लड़का आख़िर फेल हुआ कैसे? उन्हें फेल होने का एक कारण भी दिखाई नहीं दे रहा था।

पिता और सभी शिक्षकों ने श्यामा प्रसाद को और निराश होने से रोकने की कोशिश की। सभी ने हौसलाअफजाही की। उत्साह जगाने की कोशिश की। शेषाचारी ने कहा, "एक एग्ज़ाम फेल होने से कुछ नहीं होता। कई तेज़ विद्यार्थी परीक्षा में फेल हो जाते हैं। फेल होने का यह मतलब नहीं है कि विद्यार्थी में क़ाबिलियत नहीं है। परीक्षा में पास होना अलग है, क़ाबिल होना अलग। कई ऐसे कामयाब डॉक्टर और सर्जन हैं, जो मेडिकल कॉलेज की पढ़ाई के दौरान परीक्षा में फेल हुए। लेकिन आगे चलकर यही लोग बेहद कामयाब डॉक्टर बने। मुझे पूरा यक़ीन है कि तुम भी एक बेहतरीन सर्जन बनोगे।"

पिता सुंदरय्या ने कहा, "जो हुआ, सो हुआ। बीती बात भूल जाओ। अब आगे की सोचो। अगली बार तैयारी इस तरह करो कि प्रश्न कितने भी कठिन क्यों न हो, तुम जवाब देने में सक्षम बनो। इन्सान वही कामयाब होता है, जो ग़लतियों से

सीखता है। जो इन्सान ग़लतियाँ दोहराता है, वह कामयाब नहीं होता। तुम अब आगे कोई ग़लती मत करो। मेरी बात पर यक़ीन करो ... तुम कामयाब सर्जन बनोगे।"

श्यामा प्रसाद को अपनी ग़लती का एहसास था। उन्होंने क़सम खा ली कि वे अब परीक्षा की तैयारी में किसी भी तरह की कोई दवाई का सहारा नहीं लेंगे। श्यामा प्रसाद ने प्रण किया कि आगे हर परीक्षा के लिए उनकी तैयारी पक्की और तगड़ी होगी। श्यामा प्रसाद ने इस घटना के बाद से ऑपरेशन थिएटर में अनुभव हासिल करने के साथ-साथ किताबी ज्ञान हासिल करने पर भी पूरा ध्यान दिया। उनकी तैयारी कुछ ऐसी रही कि वे आगे की सभी परीक्षाओं में पास हुए। एक बार फेल होने की वजह से उन्हें एमएस कोर्स पूरा करने में तीन साल के बजाय चार साल लगे। साल 1982 में श्यामा प्रसाद ने 'मास्टर ऑफ़ सर्जरी' की डिग्री हासिल की।

श्यामा प्रसाद से पहले ही उनकी पत्नी लक्ष्मी राज्यम का कोर्स पूरा हो गया। डिप्लोमा इन ऑब्सेट्रिक एंड गाइनकालजी कोर्स पूरा करने के बाद लक्ष्मी राज्यम ने नौकरी की तलाश शुरू की। उन्हें नेल्लूर के अमेरिकन बैपटिस्ट मेमोरियल हॉस्पिटल में नौकरी मिल गयी। उन दिनों यह अस्पताल डॉक्टर बेरम्मा की वजह से मशहूर था। बेरम्मा मूल रूप से अमेरिकी महिला थीं, लेकिन ग़रीबों और ज़रूरतमंदों की मदद करने के इरादे के साथ भारत आ गयी थीं। बेरम्मा का असली नाम मैरिएन ओलेटा बोहर था। उनका जन्म 24 जुलाई, 1926 को लॉन्ग पाइन, नेब्रास्का में हुआ था। मैरिएन के पिता इरविन डॉक्टर थे। माँ अल्टा बोहर गृहिणी थीं। पिता अलग-अलग जगह जाकर बीमार लोगों का इलाज किया करते थे। इसी वजह से मैरिएन की परवरिश भी अलग-अलग जगह हुई। उनका बचपन लॉन्ग पाइन, हेंडरसन, नेब्रास्का, पोर्टलैंड, ऑरिगॉन, वाशिंगटन जैसे अलग-अलग स्थानों पर बीता। मैरिएन शुरू से ही पढ़ाई-लिखाई में तेज़ थीं। विज्ञान उनका पसंदीदा विषय था। 1940 में क्रिसमस के त्योहार पर मैरिएन के परिवार ने फर्स्ट बैपटिस्ट चर्च की सदस्यता ले ली। 1942 में उनका परिवार सिएटल में आ बसा। मैरिएन की स्कूली शिक्षा पूरी होने के कुछ दिनों बाद ही उनकी माँ की मृत्यु हो गयी। माँ अल्टा बोहर को ब्रेन ट्यूमर हुआ था।

मैरिएन ने वाशिंगटन विश्वविद्यालय में ग्रेजुएशन कोर्स में दाख़िला ले लिया।

अध्ययन का मुख्य विषय रसायनशास्त्र था। मैरिएन की पढ़ाई चल ही रही थी कि उनके पिता ने दूसरी शादी कर ली। ग्रेजुएशन कोर्स पूरा होते ही मैरिएन ने अपने पिता की तरह डॉक्टर बनने की सोची। उन्हें लगा कि वे भी डॉक्टर बनकर लोगों की सेवा कर सकती हैं। जब मैरिएन ने अपनी इच्छा के बारे में पिता को बताया, तब उन्हें आश्चर्य हुआ। आश्चर्य की एक बड़ी वजह थी। उन दिनों बहुत कम लड़कियाँ डॉक्टरी पेशा चुनती थीं। मेडिकल स्कूलों में दाख़िला लेने वाले विद्यार्थियों में लड़कियों की संख्या पाँच फ़ीसदी के आसपास हुई हुआ करती थी।

लेकिन मैरिएन ने ठान ली थी कि वे डॉक्टर बनेंगी। पिता को मैरिएन की ज़िद के आगे झुकना पड़ा। मैरिएन ने नॉर्थवेस्टर्न यूनिवर्सिटी मेडिकल स्कूल में सीट के लिए आवेदन किया। उनका आवेदन मंज़ूर कर लिया गया। 19 साल की उम्र में मैरिएन ने डॉक्टरी पढ़ाई शुरू की। उनके मेडिकल स्कूल में कुल 150 मेडिकल विद्यार्थी थे। इन विद्यार्थियों में केवल चार लड़कियाँ थीं और इन्हीं लड़कियों में एक थीं मैरिएन। डॉक्टरी पढ़ाई पूरी करने के बाद मैरिएन ने कुक काउंटी अस्पताल में अपनी इंटर्नशिप पूरी की। 'डॉक्टर ऑफ़ मेडिसिन' की डिग्री मिलते ही मैरिएन ने मरीज़ों का इलाज शुरू कर दिया। इसके कुछ महीनों बाद वे नॉर्थ शोर बैपटिस्ट चर्च से जुड़ गयीं। मरीज़ों का इलाज करने के साथ-साथ वे ईसाई धर्म का प्रचार भी करने लगीं। 15 मई 1952 को शिकागो में हुई वूमन्स अमेरिकन बैपटिस्ट फॉरेन सोसाइटी की वार्षिक बैठक में मैरिएन से भारत जाकर ईसाई धर्म का प्रचार करने और मरीज़ों का इलाज करने का अनुरोध किया गया। मैरिएन ने इस अनुरोध को स्वीकार लिया। फरवरी 1953 में मैरिएन भारत आ गयीं। पहले उन्होंने ओंगोल के अस्पताल में अपनी सेवाएँ दीं। यहाँ काम करते हुए मैरिएन ने तेलुगु भाषा सीख ली। इसके बाद वे नेल्लूर आ गयीं और यहाँ अमेरिकन बैपटिस्ट मेमोरियल हॉस्पिटल में अपनी सेवाएँ देने लगीं। तेलुगुभाषियों को मैरिएन ओलेटा बोहर का नाम ठीक से उच्चारण करना नहीं आता था। इसी वजह से लोग उन्हें प्यार और सम्मान के साथ 'बेरम्मा' कहने लगे।

कुछ ही दिनों में बेरम्मा पूरे नेल्लूर ज़िले में मशहूर हो गयीं। उन्हीं की वजह से दूर-दूर से गर्भवती महिलाएँ जचगी करवाने अमेरिकन बैपटिस्ट मेमोरियल हॉस्पिटल आने लगी।

बेरम्मा इस अस्पताल से अनुबद्ध नर्सिंग हॉस्पिटल में विद्यार्थियों को प्रशिक्षण भी दिया करती थीं। बेरम्मा के अस्पताल से जुड़ने के बाद लक्ष्मी राज्यम को बहुत कुछ सीखने को मिला। कई बार तो उन्हें दिन में दस से ज़्यादा महिलाओं की जचगी करवानी पड़ती। अमेरिकन बैपटिस्ट मेमोरियल हॉस्पिटल में ग़रीब लोगों का इलाज करते हुई लक्ष्मी राज्यम को बहुत ख़ुशी मिलने लगी।

अध्याय 8

सरकारी अस्पतालों में किये कई अनूठे ऑपरेशन, सर्जरी से बचायी हज़ारों की जान

एमएस की डिग्री लेने के कुछ महीनों बाद श्यामा प्रसाद को सरकारी नौकरी मिल गयी। आंध्रप्रदेश सरकार ने उन्हें चित्तूर ज़िले के पैपालयम गाँव में डॉक्टरी सेवाएँ देने का आदेश दिया। श्यामा प्रसाद पैपालयम गाँव के प्राथमिक चिकित्सा केंद्र में मरीज़ों का इलाज करने लगे। गाँवों में लोगों को चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध करवाने के मक़सद से साल 1952 में प्राथमिक चिकित्सा केंद्र स्थापित करने की प्रक्रिया शुरू हुई थी। सबसे पहले दिल्ली के नजफगढ़, पश्चिम बंगाल के सिंगूर और मद्रास के पूनमल्ली में ये केंद्र खोले गये। इसके बाद कई गाँवों में प्राथमिक चिकित्सा केंद्र स्थापित किये गये। प्राथमिक चिकित्सा केंद्र में हर तरह के मरीज़ आया करते हैं। पैपालयम गाँव के प्राथमिक चिकित्सा केंद्र में भी अलग-अलग समस्याओं से परेशान मरीज़ इलाज के लिए आया करते थे। सिर में दर्द की शिकायत से लेकर छोटी-बड़ी दुर्घटना का शिकार हुए लोग भी इलाज के लिए यहीं आया करते थे। प्राथमिक चिकित्सा केंद्र में इलाज मुमकिन न हो पाने पर मरीज़ों को नज़दीकी सामुदायिक केंद्र भेजा जाता है। श्यामा प्रसाद को गाँव में काम करते हुए बहुत कुछ सीखने को मिला। साँप और बिच्छू के काटने से परेशान मरीज़ों के इलाज से लेकर कैंसर से पीड़ित मरीज़ों का इलाज़ करने का मौक़ा श्यामा प्रसाद को मिला। कुछ महीनों के बाद श्यामा प्रसाद का तबादला कर दिया गया। उनकी नियुक्ति नेल्लूर ज़िले के

मल्लम गाँव में हुई। यहाँ भी उन्हें प्राथमिक चिकित्सा केंद्र में काम करने की ज़िम्मेदारी मिली। अपने पिता की तरह श्यामा प्रसाद ने डॉक्टरी सेवाओं को सिर्फ़ प्राथमिक चिकित्सा केंद्र तक सीमित नहीं रखा। उनके घर के दरवाज़े हमेशा मरीज़ों और ज़रूरतमंद लोगों की मदद के लिए खुले रहते थे। मल्लम गाँव में कुछ महीने काम करने के बाद श्यामा प्रसाद का एक बार फिर तबादला हुआ। इस बार उनकी नियुक्त गाँव में नहीं बल्कि शहर में हुई। आंध्रप्रदेश सरकार ने उन्हें तिरुपति के श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में असिस्टेंट प्रोफ़ेसर नियुक्त किया। यह अपने आप में एक बड़ी कामयाबी थी। जिस मेडिकल कॉलेज से श्यामा प्रसाद ने एमबीबीएस और एमएस कोर्स की पढ़ाई की थी, उसी कॉलेज में उन्हें पढ़ाने का मौक़ा मिला था। वे विद्यार्थी से शिक्षक हो गये। अपने गुरुओं के सहकर्मी हो गये। विद्यार्थी के रूप में कॉलेज छोड़े ज़्यादा दिन नहीं हुए थे कि श्यामा प्रसाद उसी कॉलेज में शिक्षक बन गये। उनके लिए गर्व करने की एक और बात थी। इसी कॉलेज में उनके पिता भी शिक्षक और प्रोफ़ेसर की भूमिका निभा चुके थे। श्यामा प्रसाद के लिए सबसे ज़्यादा ख़ुशी देने वाली बात यह थी कि उन्हें अपने गुरु शेषाचारी की यूनिट में काम करने का मौक़ा मिला।

श्यामा प्रसाद असिस्टेंट प्रोफ़ेसर के नाते एमबीबीएस और बीडीएस के विद्यार्थियों को सर्जरी के गुर सिखाने लगे। साथ ही ऑपरेशन थिएटर में सर्जरियाँ भी करने लगे। ज़्यादातर सर्जरियाँ वे ख़ुद किया करते थे। बड़ी और जटिल सर्जरियों में प्रोफ़ेसर शेषाचारी का हाथ बंटाया करते थे।

इसी दौरान 23 मार्च 1986 को श्यामा प्रसाद और लक्ष्मी राज्यम को दूसरी संतान हुई। तिरुपति में लक्ष्मी राज्यम ने एक स्वस्थ्य और सुंदर कन्या को जन्म दिया। माता-पिता ने प्यार से इस लड़की का नाम सुमा रखा। सुमा के जन्म के कुछ महीनों बाद श्यामा प्रसाद का तबादला हैदराबाद हो गया। वे उस्मानिया मेडिकल कॉलेज में बतौर असिस्टेंट प्रोफ़ेसर काम करने लगे। जिस यूनिट में श्यामा प्रसाद की नियुक्ति हुई, उसे यूनिट के मुखिया थे प्रोफ़ेसर एल. भास्कर रेड्डी। भास्कर रेड्डी की गिनती आंध्रप्रदेश के सबसे उम्दा सर्जनों में होती थी। उस्मानिया मेडिकल कॉलेज आंध्रप्रदेश का नंबर एक मेडिकल कॉलेज है। उस्मानिया मेडिकल कॉलेज को पहले हैदराबाद मेडिकल स्कूल के नाम से जाना जाता था और इसकी स्थापना

1846 में हैदराबाद और बरार के पाँचवें निज़ाम, अफ़ज़ल-उद-दौला ने की थी। 1919 में उस्मानिया विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद, हैदराबाद के सातवें निज़ाम मीर उस्मान अली ख़ान के नाम पर स्कूल का नाम बदलकर उस्मानिया मेडिकल कॉलेज कर दिया गया। हैदराबाद मेडिकल स्कूल के पहले प्रिंसिपल डॉ. एडवर्ड लॉरी ने अफ़ज़लगंज अस्पताल (अब उस्मानिया जनरल हॉस्पिटल) में एनेस्थीसिया पर कई प्रयोग किये। दुनिया की पहली महिला एनेस्थिसियोलॉजिस्ट डॉ. रूपा बाई फुरदूनजी ने यहाँ से 1889 में स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी। उस्मानिया मेडिकल कॉलेज और हॉस्पिटल का इतिहास गौरवशाली है। जिस किसी डॉक्टर को यहाँ काम करने का मौक़ा मिलता है, वह अपने आप को ख़ुशनसीब समझता है। उस्मानिया अस्पताल आंध्रप्रदेश की राजधानी हैदराबाद में होने की वजह से यहाँ दूर-दूर से मरीज़ आया करते थे। अलग-अलग बीमारियों से पीड़ित मरीज़ों का इलाज यहाँ हुआ करता है। चौबीस घंटे अस्पताल में मरीज़ों का आना लगा रहता है। ऑपरेशन थिएटरों में सर्जरी की प्रक्रिया चलती रहती है। उस्मानिया मेडिकल कॉलेज में काम करते हुए श्यामा प्रसाद ने सर्जरी में महारत हासिल ली। यहाँ बड़ी-बड़ी सर्जरियाँ वे ख़ुद करने लगे। शरीर से ट्यूमर निकालने की सर्जिकल प्रक्रिया भी वे ख़ुद से करने लगे। इसी बीच श्यामा प्रसाद ने सर्जरी में सुपरस्पेशलिटी कोर्स करने का फ़ैसला किया। उन्होंने 'मास्टर ऑफ़ चिरुर्गिया' यानी एमसीएच डिग्री के लिए हुई प्रवेश-परीक्षा लिखी। श्यामा प्रसाद को आंध्र मेडिकल कॉलेज में सीट मिल गयी। वे उस्मानिया मेडिकल कॉलेज से यह कोर्स करना चाहते थे, लेकिन उन्हें यहाँ सीट नहीं मिली। एमसीएच डिग्री हासिल करने के लिए श्यामा प्रसाद हैदराबाद से विशाखपट्नम आ गये।

'मास्टर ऑफ़ चिरुर्गिया' सर्जरी में सबसे उन्नत पोस्टडॉक्टरल यानी डॉक्टरेट की डिग्री है। यह कोर्स तीन साल का होता है। भारतीय चिकित्सा-प्रणाली में सर्वोच्च डिग्री 'मास्टर ऑफ़ चिरुगिया' ही है। श्यामा प्रसाद ने सर्विस से ब्रेक लेकर पीडियाट्रिक सर्जरी में सुपरस्पेशलिटी कोर्स के लिए शिक्षण-प्रशिक्षण लेना शुरू किया।

इस कोर्स के दौरान श्यामा प्रसाद ने न सिर्फ़ आंध्र मेडिकल कॉलेज और किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में ट्रेनिंग ली, बल्कि वे देश के नामचीन अस्पताल गये और वहाँ विशेषज्ञों से प्रशिक्षण हासिल किया।

श्यामा प्रसाद ने एग्मोर के शिशु अस्पताल के बारे में बहुत सुना था। जब

खुद की पहली संतान का जन्म समय से पहले हुआ था, तब शिशु के स्वास्थ्य को लेकर उभरी शंकाओं को दूर करने के लिए श्यामा प्रसाद अपने बेटे को इसी अस्पताल ले गये थे। पिता सुंदरय्या ने श्यामा प्रसाद को बताया था कि नवजात शिशुओं के इलाज के लिए एग्मोर का शिशु अस्पताल सबसे बढ़िया चिकित्सा केंद्र है। इस अस्पताल की स्थापना अंग्रेज़ों के ज़माने में की गयी थी। आज़ादी के बाद यह अस्पताल इंस्टीट्यूट ऑफ़ चाइल्ड हेल्थ एंड हॉस्पिटल फॉर चिल्ड्रेन के नाम से मशहूर हुआ। जचगी के लिए दूर-दूर महिलाएँ इस अस्पताल आया करती थीं। उन दिनों ज़्यादातर प्रसव सरकारी अस्पतालों में हुआ करते थे। एग्मोर के अस्पताल में हर दिन कई जचगियाँ हुआ करती थीं। कई बार तो एक दिन में दो दर्जन से ज़्यादा जचगियाँ होती थीं। कुछ मामलों में नवजात शिशु की हालत ठीक न होने या फिर जन्मजात समस्या होने पर इनके इलाज की व्यवस्था वहीं पर थी। अस्पताल में चौबीस घंटे शिशु विशेषज्ञ और चिकित्सक रहा करते थे। ज़रूरत होने पर तुरंत सर्जरी की जाती थी। अस्पताल में बच्चों पर सर्जरियों का सिलसिला लगातार चलता रहता था। बच्चों को होने वाली अलग-अलग बीमारियों का इलाज एक ही अस्पताल में होने की वजह से श्यामा प्रसाद ने एग्मोर के अस्पताल में ट्रेनिंग लेने का फ़ैसला लिया था।

एग्मोर के अस्पताल में काम करते हुए श्यामा प्रसाद को बहुत सीखने को मिला। इस अस्पताल में बच्चों के इलाज के लिए दो हज़ार बेड हुआ करते थे। पूरे एशिया महाद्वीप में यह बच्चों का सबसे बड़ा अस्पताल था। यहाँ सर्जरी टीम में 6 यूनिटें काम किया करती थीं। हर यूनिट में एक प्रोफ़ेसर के नेतृत्व में काम होता था। हर टीम में एक एसोसिएट प्रोफ़ेसर, एक असिस्टेंट प्रोफ़ेसर और कई मेडिकल विद्यार्थी हुआ करते थे। रात-दिन अस्पताल में सर्जरियाँ हुआ करती थीं। हर दिन रात के समय भी दस से बारह सर्जरियाँ होती थीं। एग्मोर के अस्पताल में सर्जरियाँ करते हुए श्यामा प्रसाद का अनुभव बढ़ा।

श्यामा प्रसाद ने अनुभव किया कि शिशु के जन्म को लेकर अभिभावक बहुत उत्साहित होते हैं। परिवार में ख़ुशी और उत्सव का माहौल होता है। लेकिन शिशु के जन्म के बाद किसी बीमारी या विकृति का पता चलने पर परिवारवालों के चहरों पर मायूसी छा जाती है। माथे पर चिंता की लकीरें आ जाती हैं। ख़ुशी गम में तब्दील

हो जाती है। उत्सव का माहौल ख़त्म हो जाता है और मन में तरह-तरह की शंकाएँ जन्म लेती हैं।

श्यामा प्रसाद ने कुछ ऐसे मामले देखे, जहाँ नवजात शिशु के होंठ व तालु कटे-फटे हुए थे। इस तरह के शिशु को देखकर माता-पिता, दोनों विलाप करने लगते थे। लेकिन अनुभवी डॉक्टर अभिभावकाओं को समझाया करते थे कि यह विकृति सर्जरी से दूर हो जाएगी। श्यामा प्रसाद को भी सर्जरी कर कटे-फटे होंट और तालु ठीक करने का मौक़ा मिला। श्यामा प्रसाद को एग्मोर के अस्पताल में कैंसर के मामलों में भी सर्जरी कर बच्चों की जान बचाने का मौक़ा कई बार मिला।

मद्रास-प्रवास का फ़ायदा उठाते हुए श्यामा प्रसाद मद्रास मेडिकल कॉलेज भी गये। यही वह शिक्षा संस्थान हैं, जहाँ से उनके पिता ने मेडिसिन की पढ़ाई की थी। श्यामा प्रसाद ने मद्रास मेडिकल कॉलेज से अनुबद्ध जनरल हॉस्पिटल में भी ट्रेनिंग ली। उन्होंने बाल-चिकित्सा विभाग में काफ़ी समय बिताया और बच्चों को होने वाली बीमारियों के इलाज के नये तरीक़ों के बारे में जाना और समझा।

1853 में शुरू हुए मद्रास जनरल हॉस्पिटल में पहले बच्चों की बीमारियों के इलाज के लिए अलग विभाग नहीं था। व्यस्कों के डॉक्टर बच्चों का भी इलाज किया करते थे। 1948 में जाने-माने बाल-रोग विशेषज्ञ प्रोफ़ेसर एस. टी. एचर ने मद्रास जनरल हॉस्पिटल में बाल-चिकित्सा विभाग की स्थापना की। चालीस के दशक में भारत में सिर्फ़ 15 बाल-रोग विशेषज्ञ थे। बंबई में 6, दिल्ली में 2, मद्रास में 2 और कलकत्ता में 5 बाल-रोग विशेषज्ञ बच्चों का इलाज कर रहे थे।

भारत में बाल-रोग चिकित्सा की शुरुआत साल 1928 में बॉम्बे में हुई। उस ज़माने के मशहूर उद्योगपति और समाज-सेवी सर नेस वाडिया और उनके भाई सर कुसरो वाडिया ने बॉम्बे में बच्चों के लिए एक अलग अस्पताल खोलने की सोची। दोनों भाई मिलकर बॉम्बे डाइंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी चलाया करते थे। दोनों भाइयों ने कई शिक्षा संस्थान खोले। दोनों ने अपनी माँ बाई जेरबाई वाडिया की याद में बच्चों के लिए 'द बाई जेरबाई वाडिया अस्पताल' स्थापित किया। इस अस्पताल की आधारशिला 7 मार्च, 1928 को रखी गयी थी और 12 दिसंबर 1929 को बॉम्बे के गवर्नर सर फ्रेडरिक साइक्स ने इसका विधिवत उद्घाटन किया। मशहूर

बाल-चिकित्सा विशेषज्ञ डॉ. जॉर्ज कोएल्हो भारत के पहले बाल-चिकित्सा अस्पताल के अधीक्षक बने।

डॉ. जॉर्ज कोएल्हो को 'भारत में बाल-चिकित्सा का जनक' कहा जाता है। डॉ. जॉर्ज कोएल्हो ने साल 1926 में स्वतंत्र रूप से बाल-चिकित्सा पर अनुसंधान शुरू कर दिया था। एक मायने में वे भारत के पहले बाल-चिकित्सा विशेषज्ञ थे। डॉ. जॉर्ज कोएल्हो की पहल की वजह से साल 1944 में बाई जीरबाई वाडिया अस्पताल में बाल-स्वास्थ्य में डिप्लोमा के लिए स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम की शुरुआत हुई। इसके दो साल बाद यानी 1946 में बॉम्बे विश्वविद्यालय में यही कोर्स शुरू किया गया। इस कोर्स की वजह से भारत में बाल-चिकित्सा विशेषज्ञों की संख्या बढ़ने लगी। 1950 में डॉ. कोएल्हो ने भारतीय बाल-रोग विशेषज्ञ संघ की स्थापना की। उन्होंने 1952 से 1959 तक 'इंडियन जर्नल ऑफ़ चाइल्ड हेल्थ' का संपादन किया। जाने-माने चिकित्सक डॉ. के.सी. चौधरी ने साल 1933 में 'इंडियन जर्नल ऑफ़ चाइल्ड हेल्थ' पत्रिका निकालनी शुरू की थी। इतिहास की किताबें बताती हैं कि 1928 में अपनी पहली वियना-यात्रा के दौरान डॉ. के. सी. चौधरी वहाँ बाल-कल्याण सेवाओं से बहुत प्रभावित हुए। वियना में कई संस्थाएँ बच्चों के इलाज के लिए काम कर रही थीं। इन संस्थाओं के काम से प्रभावित डॉ. के. सी. चौधरी ने भारत में बाल-चिकित्सा अस्पताल खोलने का मन बना लिया। पहले उन्होंने बाल-रोग विज्ञान पर एक पत्रिका निकालनी शुरू की। भारत के डॉक्टरों को इस पत्रिका से काफ़ी फ़ायदा हुआ।

साल 1956 में डॉ. के. सी. चौधरी कलकत्ता में बच्चों का अस्पताल खोलने में कामयाब हुए। 'दि इंस्टीट्यूट ऑफ़ चाइल्ड हेल्थ' के नाम से शुरू इस अस्पताल का उद्घाटन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने किया।

इससे पहले 1948 एस. टी. एचर की पहल की वजह से मद्रास जनरल हॉस्पिटल में बाल-चिकित्सा विभाग की स्थापना हो पायी थी। इसी साल बॉम्बे के टोपीवाला नेशनल मेडिकल कॉलेज और बी. वाई. एल. नायर चौरिटेबल अस्पताल में भी बाल-चिकित्सा विभाग खोला गया। डॉ. शांतिलाल सेठ इस विभाग के पहले मुखिया बने। इसी दौरान प्रोफ़ेसर लाला सूरज नंदन प्रसाद ने पटना में बाल-रोग विभाग की शुरुआत की।

50 के दशक की शुरुआत में बॉम्बे और पटना में बाल-रोग विज्ञान में एमडी कोर्स की शुरुआत हुई। बाल-रोग विशेषज्ञ डॉ. पी. एन. तनेजा की कोशिशों की वजह से पहले दिल्ली के इरविन अस्पताल और फिर बाद में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में बाल-चिकित्सा विभाग की शुरुआत हुई। डॉ. जे. एन. पोहोवाला ने इंदौर के सबसे बड़े सरकारी अस्पताल में बाल-रोग विभाग की शुरुआत की। इसके बाद भारत में तेज़ी से सभी बड़े अस्पतालों में बाल-चिकित्सा विभाग खुलने शुरू हुए। अलग-अलग मेडिकल कॉलेजों और शिक्षा-अनुसंधान संस्थाओं में बाल-चिकित्सा कोर्स शुरू किये गये। बाल रोगों और उनके इलाज पर शोध और अनुसंधान शुरू हुआ।

डॉ. एस. टी. एचर ने 28 बिस्तरों के साथ मद्रास जनरल हॉस्पिटल में बाल-चिकित्सा विभाग की शुरुआत करवायी थी। लेकिन विभाग में बीमार बच्चों की संख्या के लगातार बढ़ने की वजह से डॉ. एस. टी. एचर ने बच्चों के लिए एक अलग अस्पताल खोलने की सोची। इसी सोच का नतीजा रहा एग्मोर का 'इंस्टीट्यूट ऑफ़ चाइल्ड हेल्थ एंड हॉस्पिटल फॉर चिल्ड्रन'।

1957 में मद्रास मेडिकल कॉलेज में बाल-स्वास्थ्य में डिप्लोमा और 1961 में एमडी कोर्स की शुरुआत की गयी। देश के अलग-अलग अस्पतालों से डॉक्टर बाल-चिकित्सा में प्रशिक्षण प्राप्त करने और बाल-रोग विशेषज्ञ बनने के लिए मद्रास जनरल हॉस्पिटल और एग्मोर के इंस्टीट्यूट ऑफ़ चाइल्ड हेल्थ एंड हॉस्पिटल फॉर चिल्ड्रन आने लगे। श्यामा प्रसाद को भी मद्रास में बच्चों की बीमारियों और उनके इलाज के बारे में सीखने का मौक़ा मिला।

श्यामा प्रसाद बैंगलोर भी गये। यहाँ उन्होंने बैंगलोर मेडिकल कॉलेज से अनुबद्ध अस्पतालों - वाणी विलास महिला-शिशु अस्पताल और विक्टोरिया अस्पताल में बच्चों पर की जाने वाली सर्जरियों के बारे में सीखा। ये दोनों अस्पताल अंग्रेज़ों के ज़माने में स्थापित किये गये थे। आज़ादी के बाद इन दोनों को बैंगलोर मेडिकल कॉलेज से अनुबद्ध कर दिया गया।

सीखने की प्रबल इच्छा श्यामा प्रसाद को चंडीगढ़ भी ले गयी। यहाँ उन्होंने राष्ट्रीय महत्व की मेडिकल संस्था, पोस्टग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च में भी प्रशिक्षण हासिल किया। इस संस्थान की परिकल्पना पंजाब के

मुख्यमंत्री सरदार प्रताप सिंह कैरों ने की थी। वे चाहते थे कि पंजाब में एक ऐसा मेडिकल संस्थान बने, जहाँ अंतरराष्ट्रीय स्तर का अनुसंधान हो। लाइलाज मानी जाने वाली बीमारियों के इलाज के तरीक़ों का पता लगाया जाए। बड़ी-बड़ी बीमारियों का इलाज संभव हो। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इस परिकल्पना को साकार करने में पंजाब सरकार की हर मुमकिन मदद की। प्रो. तुलसी दास, प्रो. संतोख सिंह आनंद, प्रो. पी.एन. चुट्टानी, प्रो. बी.एन. ऐकत, प्रो. संत राम ढल और प्रो. बाला कृष्ण जैसे जाने-माने चिकित्सकों और शिक्षकों ने इस संस्थान की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

1962 में संस्थान का काम शुरू हुआ और प्रधानमंत्री नेहरू ने 7 जुलाई 1963 को अस्पताल का विधिवत उद्घाटन किया। शुरुआती सालों में यह संस्थान अविभाजित पंजाब सरकार के अधीन था। लेकिन राज्य के पुनर्गठन के बाद संस्थान का प्रशासनिक नियंत्रण नवंबर 1966 में केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के पास आ गया। 1967 में संसद के एक अधिनियम के तहत इस संस्थान को एक स्वायत्त निकाय बना दिया गया।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के बाद चिकित्सा के क्षेत्र में यह भारत का सबसे बड़ा अनुसंधान-केंद्र बनकर उभरा। श्यामा प्रसाद ने क़रीब एक महीने तक पोस्टग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च में काम किया। वे कई दिनों तक दिल्ली में भी रहे। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में बाल-रोग चिकित्सा के जानकारों के साथ काम करते हुए अनुभव हासिल किया। यहीं पर श्यामा प्रसाद ने लिखित, मौखिक और प्रायोगिक परीक्षाओं की तैयारी की।

दिल्ली में डॉ. सुब्बा राव के रूप में श्यामा प्रसाद को एक दोस्त, सहपाठी और प्रशिक्षु डॉक्टर मिला। सुब्बा राव अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान से 'मास्टर ऑफ़ चिरुर्गिया' कोर्स कर रहे थे। श्यामा प्रसाद और सुब्बा राव की दोस्ती दिन-ब-दिन तगड़ी होती चली गयी।

आमतौर पर 'मास्टर ऑफ़ चिरुर्गिया' कोर्स के विद्यार्थी उसी अस्पताल में प्रशिक्षण लेते हैं, जो कि संबंधित मेडिकल कॉलेज से अनुबद्ध होता है। श्यामा प्रसाद आंध्र मेडिकल कॉलेज से 'मास्टर ऑफ़ चिरुर्गिया' कोर्स कर रहे थे और वे किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में सर्जरी की ट्रेनिंग लेने के अधिकारी थे। लेकिन, श्यामा प्रसाद भारत

के सर्वोन्नत मेडिकल कॉलेजों के श्रेष्ठ सर्जनों से सीखना चाहते थे। इसी वजह से उन्होंने देश के बड़े-बड़े मेडिकल शिक्षा संस्थाओं का दौरा करने और वहाँ निपुण सर्जनों से सर्जरी की प्रक्रिया सीखने के लिए विशेष अनुमति हासिल की।

मद्रास, बैंगलोर, दिल्ली, चंडीगढ़, बॉम्बे, कलकत्ता, हैदराबाद जैसे बड़े शहरों की सबसे प्रतिष्ठित संस्थाओं में प्रशिक्षण लेकर श्यामा प्रसाद ने सर्जरी में निपुणता हासिल कर ली। इस प्रशिक्षण की वजह से उनका आत्मविश्वास और भी मजबूत हो गया। विशाखपट्नम लौटने के बाद वे बड़ी-बड़ी सर्जरियाँ करने लगे। साल 1989 में उन्हें 'मास्टर ऑफ़ चिरुर्गिया' की डिग्री मिली। डिग्री मिलते ही उनके पास निजी अस्पतालों से प्रस्ताव आने लगे। कई बड़े कॉर्पोरेट अस्पतालों ने श्यामा प्रसाद को तगड़ी तनख़्वाह पर नौकरी देने की पेशकश की। कुछ संस्थाओं ने उन्हें विदेश जाने का सुझाव दिया। कुछ साथी सर्जन उन्हें ऑस्ट्रेलिया ले जाना चाहते थे। कुछ दोस्त उन्हें अमेरिका जाने की सलाह दे रहे थे। सभी प्रस्ताव कई मायनों में लुभावने थे। श्यामा प्रसाद के कई साथी विदेश जाकर बस गये थे। लेकिन अपने पिता की विरासत को आगे बढ़ाने के दृढ़ संकल्प की वजह से श्यामा प्रसाद ने विदेश जाने के सभी प्रस्ताव ठुकरा दिये। उन्होंने भारत में रहते हुए ग़रीबों की मदद करते रहने की ठानी।

'मास्टर ऑफ़ चिरुर्गिया' की डिग्री मिलते ही श्यामा प्रसाद आंध्र मेडिकल कॉलेज में असिस्टेंट प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। उन्हें किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में सर्जन की भूमिका निभाने की ज़िम्मेदारी भी मिली। श्यामा प्रसाद को बाल-चिकित्सा विभाग में ज़िम्मेदारियाँ सौंपी गयी। वे नवजात शिशु से लेकर 18 साल के बच्चे तक का इलाज करने लगे।

इसी दौरान श्यामा प्रसाद की पत्नी लक्ष्मी राज्यम ने भी सरकारी अस्पताल से जुड़ने की सोची। उन्हें भी लगता था कि सरकारी अस्पताल में काम करते हुए ग़रीब लोगों की मदद बेहतर ढंग से की जा सकती है। प्राइवेट प्रैक्टिस के ज़रिये भी लोगों की मदद की जा सकती है। लेकिन ग़रीब लोग यह जानते हैं कि किसी डॉक्टर के प्राइवेट क्लीनिक पर जाने से फीस ली जाती है। इसी वजह से वे सीधे सरकारी अस्पताल जाते हैं। लक्ष्मी राज्यम की कोशिश रंग लायी। उन्हें साल 1990 में विजयनगरम ज़िले में नौकरी मिल गयी। एक साल वहाँ काम करने के बाद सरकार ने उनका तबादला विशाखपट्नम के किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में कर दिया। वे यहाँ

प्रसूति-कक्ष में अपनी सेवाएँ देने लगीं। अब पति-पत्नी दोनों एक ही हॉस्पिटल में काम करने लगे।

उन दिनों ट्रेकिइसोफेगल फिस्टुला (टीईएफ) के कई मामले आये करते थे। इन मामलों में शिशु की जान बचाने के लिए सर्जरी एक मात्र उपाय थी। लेकिन किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में सर्जरी के बावजूद वेंटिलेटर न होने की वजह से कई बच्चों की जान जा रही थी। टीईएफ के ज़्यादातर मामलों में सर्जन शिशुओं की जान नहीं बचा पा रहे थे। टीईएफ भोजन-नली और श्वास-नली में विकृति आने से होने वाली समस्या है। भोजन-नली (ईसोफेगस) वह नली है, जो गले को पेट से जोड़ती है। श्वास-नली (ट्रेकिआ) वह नली है, जो गले को फेफड़ों से जोड़ती है। सामान्य स्थिति में भोजन-नली और श्वास-नली आपस में जुड़ी नहीं होती हैं। ये दो अलग-अलग नलिकाएँ हैं। लेकिन कुछ मामलों में कुछ कारणों से ये नलियाँ जुड़ जाती हैं। यह जुड़ना एक या उससे ज़्यादा जगह पर हो सकता है। इस विकार को ट्रेकिइसोफेगल फिस्टुला यानी टीईएफ कहते हैं। टीईएफ 'जन्म दोष' है, यानी यह एक ऐसी समस्या है, जो जन्म के समय से होती है। गर्भावस्था के दौरान यह समस्या पैदा होती है। जानकारों का कहना है कि गर्भावस्था के दौरान जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे अंग-प्रणालियाँ बनती हैं और विकसित होती हैं। गर्भ में शिशु का विकास होता है। शरीर के अन्य सभी अंगों के साथ-साथ भोजन-नली और श्वास-नली भी विकसित होती हैं। अलग-अलग नलियों के रूप में ये दोनों विकसित होने लगती हैं। गर्भावस्था के 4 से 8 हफ़्तों में भोजन-नली और श्वास-नली के बीच एक दीवार-सी बन जाती है। और, यही दीवार दोनों को अलग रखती है। जब यह दीवार उस तरह से नहीं बनती, जैसी कि बननी चाहिए, तब 'ट्रेकिइसोफेगल फिस्टुला' की समस्या उत्पन्न होती है। इस स्थिति में जन्म लेने वाला बच्चा जो भी पदार्थ लेता है, वह श्वास- नली में चला जाता है। पदार्थ श्वास-नली से होते हुए फेफड़ों में पहुँच जाता है। भोजन के पदार्थ के फेफड़ों में चले जाने से निमोनिया और अन्य बीमारियाँ पैदा होती हैं।

विकार होने पर शिशुओं में जन्म के तुरंत बाद ट्रेकिइसोफेगल फिस्टुला के लक्षण दिखाई देते हैं। ट्रेकिइसोफेगल फिस्टुला से पीड़ित शिशुओं को जब खिलाया या पिलाया जाता है, तब वे खाँसने लगते हैं। इन शिशुओं के मुँह से आमतौर पर

सफ़ेद झागदार बुलबुले निकलते हैं। कुछ मामलों में शिशु उल्टी करने लगते हैं। कुछ मामलों में जन्म के कुछ घंटों बाद शिशुओं की त्वचा का रंग नीला हो जाता है, ख़ासकर उस समय जब शिशु कुछ पी रहा होता है। कई मामलों में शिशु को साँस लेने में तकलीफ़ होती है।

जैसे ही शिशु में ये लक्षण देखे जाते हैं, उसकी जाँच करवायी जाती है। एक्स-रे टेस्ट से यह पता चल जाता है कि शिशु को ट्रेकिइसोफेगल फिस्टुला विकार है या नहीं।

आमतौर पर शिशु की छाती और पेट की एक्स-रे जाँच की जाती है। इस जाँच के लिए शिशु के मुँह या नाक में एक छोटी ट्यूब शरीर के अंदर डाली जाती है। अगर शिशु में ट्रेकिइसोफेगल फिस्टुला की समस्या है, तब ट्यूब शरीर के ज़्यादा अंदर तक नहीं जा पाती है। एक्स-रे से यह साफ़ पता चल जाता है कि भोजन-नली और श्वास-नली कहाँ-कहाँ मिली हैं। दोनों नलियों को अलग करने की ज़रूरत होती है। दोनों को अलग न किये जाने की स्थिति में शिशु की जान जा सकती है। ख़तरा हमेशा बना रहता है। सर्जरी के ज़रिये भोजन-नली और श्वास-नली को अलग किया जाता है। चूँकि मामला शरीर के दो अत्यंत महत्वपूर्ण अंगों से जुड़ा होता है, सर्जरी के दौरान कई तरह के ख़तरे होते हैं। वेंटिलेटर की ज़रूरत पड़ती है। उन दिनों किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में बहुत कम वेंटिलेटर हुआ करते थे। कई मामलों में वेंटिलेटर की जगह अनिश्थीसिया मशीनों का इस्तेमाल किया जाता था।

किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में श्यामा प्रसाद को पहले दिन से ही ट्रेकिइसोफेगल फिस्टुला के मामलों में सर्जरी करने का मौक़ा मिला। लेकिन ज़्यादातर मामलों में वे शिशुओं की जान नहीं बचा पाये। ट्रेकिइसोफेगल फिस्टुला के मामलों में औसतन दस में सिर्फ़ तीन मामलों में शिशु की जान बच पाती थी। जब भी ट्रेकिइसोफेगल फिस्टुला की वजह से किसी शिशु की जान चली जाती, तब श्यामा प्रसाद को बहुत दुख होता। उन्हें सरकारी अस्पतालों में सुविधाओं की कमी पर ग़ुस्सा आता। उन्हें यह बात समझ नहीं आती कि वेंटिलेटर की आवश्यकता और महत्ता के बारे में जानकारी होने के बावजूद सरकार अस्पतालों में ज़रूरत के मुताबिक़ वेंटिलेटर क्यों नहीं लगवाती है। वेंटिलेटर होने की स्थिति में कई मरीज़ों की जान बचायी जा सकती थी।

कई मामलों में शिशु के जन्म लेते ही सर्जरी करने की ज़रूरत पड़ती है।

आमतौर पर जन्मजात विकृति होने या फिर किसी बीमारी के लक्षण दिखाई देने पर डॉक्टर बच्चे की जान बचाने के लिए सर्जरी करने का फ़ैसला करते हैं। जहाँ दवाई से बीमारी दूर की जा सकती हैं, वहाँ दवाइयों का इस्तेमाल होता है। लेकिन अगर सर्जरी एकमात्र विकल्प है, तब जन्म के तुरंत बाद सर्जरी की जाती है। सर्जरी में देरी की वजह से शिशु की जान जा सकती है। ऐसा भी नहीं है कि बीमारी का पता चलते ही सर्जरी कर दी जाती है। सर्जरी से पहले शिशु का गहन परीक्षण ज़रूरी होता है। ख़ून की जाँच करवायी जाती है। एक्स-रे या फिर सोनोग्राफी की ज़रूरत पड़ सकती है। सर्जरी के दौरान शरीर से ख़ून काफ़ी निकलता है। इसी वजह से ख़ून की ज़रूरत पड़ती है। ख़ून की व्यवस्था किये बिना सर्जरी नहीं शुरू की जा सकती है। ख़ून की कमी होने पर जान जाने का जोखिम रहता है। ऑपेरशन थिएटर को सैनिटाइज़ करना ज़रूरी होता है। ऑपेरशन के बाद शिशु की चिकित्सकीय देखभाल ज़रूरी होती है। कई सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं। समय पर दवाई देनी पड़ती है। किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में श्यामा प्रसाद को नवजात शिशु से लेकर 18 साल के बच्चों की सर्जरी करने का मौक़ा मिला। पीडियाट्रिक्स सर्जरी डिपार्टमेंट में नवजात शिशु से लेकर 18 साल के बच्चों की सर्जरी की जाती है।

शुरुआती दिनों में श्यामा प्रसाद ने देखा था कि पीडियाट्रिक सर्जरी डिपार्टमेंट को रेफ़र किये जाने वाले ज़्यादातर मामलों में या तो आँतों की रुकावट की समस्या होती थी या फिर मल-निकासी का रास्ता बंद हो गया होता। कुछ मामले हर्निया, आँतों के उलझने, सिर बड़ा होने से जुड़े होते थे।

उन दिनों बच्चों में कैंसर के मामले भी कई सारे आ रहे थे। लापरवाही बरतने या फिर सही समय पर इलाज शुरू न होने कैंसर कई बच्चों की मौत का कारण बन रहा था। श्यामा प्रसाद ने बच्चों की सर्जरी में निपुणता हासिल करने और अलग-अलग बीमारियों के इलाज के लिए सर्जरियों की पद्धतियाँ सीखीं और सर्जरियों के ज़रिये कई लोगों की जान बचायी।

बच्चों की सर्जरी करना आसान नहीं होता। वयस्कों की तुलना में बच्चों की सर्जरी में ख़तरे ज़्यादा होते हैं। कई बार जान बचाने के लिए जन्म के कुछ घंटों बाद ही शिशु की सर्जरी करनी पड़ती है। हर सर्जन बच्चों का ऑपरेशन नहीं कर सकता है। बच्चों पर सर्जिकल ऑपरेशन के लिए विशेष ट्रेनिंग की ज़रूरत होती है। श्यामा

प्रसाद ने न सिर्फ़ यह विशेष ट्रेनिंग ली बल्कि बच्चों की सर्जरी में महारत हासिल कर ली।

सरकारी अस्पतालों में अपनी सेवाएँ देते हुए श्यामा प्रसाद ने कई जटिल मामले सुलझाये। बड़ी बीमारियों से परेशान मरीज़ों का इलाज किया। अभूतपूर्व सर्जरियाँ कीं।

एक दिन एक व्यक्ति अपनी बेटी के साथ अस्पताल पहुँचा। पूछने पर डॉक्टर को बताया कि बेटी पेट में दर्द की शिकायत करती रहती है। इसे अक्सर उल्टियाँ भी होती हैं। लड़की हमेशा बेचैन रहती है। डॉक्टर ने लड़की की जाँच की। डॉक्टर ने पाया कि लड़की के पेट के ऊपरी हिस्से में सूजन है। जनरल फिज़िशियन को शक हुआ कि पेट में ट्यूमर है। पुष्टि करने के लिए पेट का एक्स-रे टेस्ट करवाया गया। ख़ून की जाँच भी करवायी गयी। एक्स-रे टेस्ट से यह साफ़ हो गया कि पेट में कुछ असाधारण उत्पत्ति है। जनरल फिज़िशियन ने मामला श्यामा प्रसाद को रेफ़र किया।

श्यामा प्रसाद ने लड़की का परीक्षण किया। सभी जाँच रिपोर्टों को देखा। उन्हें भी शक हुआ कि लड़की के पेट में ट्यूमर है। पेट का कैंसर जानलेवा बीमारी है। श्यामा प्रसाद जानते थे कि अगर ट्यूमर को दूर नहीं किया गया, तो यह लड़की की जान ले सकता है। श्यामा प्रसाद ने सर्जरी करने और शरीर से ट्यूमर बाहर निकालने का फ़ैसला किया। तय समय पर श्यामा प्रसाद ने सर्जरी शुरू की। जब श्यामा प्रसाद ने लड़की का पेट खोला, तब उन्होंने जो देखा उससे उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। ऐसा उन्होंने अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था। लड़की के पेट में बालों की एक बड़ी गाँठ थी। यह गाँठ पेट के आकार की तरह थी। गाँठ पत्थर-से गोले का रूप ले चुकी थी। एक्स-रे रिपोर्ट में जिसे डॉक्टरों ने ट्यूमर समझा था, वह यही गाँठ थी। श्यामा प्रसाद ने लड़की के शरीर से बालों की यह गाँठ निकाल दी।

कामयाब सर्जरी के बाद श्यामा प्रसाद ने लड़की के पिता को पेट से बालों की गाँठ निकालने की बात बतायी। पिता को समझाया कि बालों की गाँठ बन जाने की वजह से पेट में दर्द हो रहा था। भोजन पेट में नहीं पच पा रहा था और इसी वजह से उल्टियाँ हो रही थीं। लड़की के पिता को भी शक था कि वह अपने सिर के बाल खाती है। लड़की का व्यवहार असामान्य है।

श्यामा प्रसाद ने उस व्यक्ति को यह भी बताया कि उनकी लड़की ट्राइकोबेज़ार

नाम की एक बीमारी से पीड़ित है। यह बीमारी दुर्लभ है। इस बीमारी के शिकार मरीज़ अपने बालों को तोड़कर खाते हैं।

श्यामा प्रसाद की सलाह पर उस व्यक्ति ने अपनी बेटी का इलाज मनोरोग विशेषज्ञ से करवाना शुरू किया।

सर्जरी के कुछ दिनों बाद श्यामा प्रसाद को पता चला कि वह लड़की डिप्रेशन यानी अवसाद का शिकार है।

मनोविज्ञान में अवसाद का संबंध मन की भावनाओं से जुड़े दुखों से होता है। अवसाद को भी रोग की श्रेणी में रखा गया है। अवसाद के कई कारण हैं। अलग-अलग मरीज़ों में अलग-अलग कारण पाये जाते हैं। कई मरीज़ों में अवसाद का एक कारण होता है। कई मरीज़ों में अवसाद के एक से ज़्यादा कारण होते हैं।

असफलता, संघर्ष और किसी अपने से बिछड़ जाने के कारण दुखी होना बहुत सामान्य है। दुःख, दर्द, निराशा, मायूसी जैसी भावनाएँ अगर बनी रहती हैं, तब इन्सान सामान्य रूप से अपनी दिनचर्या जारी रखने में असमर्थ होता जाता है। जब ये भावनाएँ सामान्य दिनचर्या को प्रभावित करने लगती हैं, तब यह स्थिति डिप्रेशन कहलाती है।

अलग-अलग लोगों में डिप्रेशन के अलग-अलग लक्षण होते हैं। डिप्रेशन के ज़्यादातर मामलों में मरीज़ हमेशा उदास रहता है। उदासी डिप्रेशन का एक बड़ा लक्षण है। कई मरीज़ दिन-भर कमज़ोरी महसूस करते हैं। कुछ बैचैनी या फिर आलस्य महसूस करते हैं। कई मरीज़ एकाग्रचित नहीं हो पाते और इनका ध्यान भटकता रहता है। कई मरीज़ ख़ुद को किसी काम विशेष के लिए नाक़ाबिल मानने लगते हैं। कुछ लोग किसी घटना या दुर्घटना के लिए ख़ुद को दोषी समझने लगते हैं। जब डिप्रेशन बढ़ जाता है, तब मरीज़ के मन में ख़ुदकुशी करने का ख़याल भी आ सकता है। इसी वजह से लक्षण दिखाई देते ही मरीज़ का इलाज शुरू करना ज़रूरी हो जाता है। इलाज में देरी की वजह से बीमारी लाइलाज हो सकती है।

उन दिनों कई लोग डिप्रेशन के लक्षणों को गंभीरता से नहीं लेते थे। जब लक्षण की तीव्रता बढ़ जाती थी या फिर लक्षण बढ़ जाते थे, तब परिवारवाले मरीज़ को अस्पताल लेकर आते थे। डिप्रेशन वैसे तो एक आम बीमारी है, लेकिन गंभीर समस्या है। इस बीमारी से निजाद पाने के लिए चिकित्सकीय सहायता की ज़रूरत

होती है। उन दिनों कई लोग ऐसे भी थे, जो डिप्रेशन के लक्षणों को देखकर मरीज़ को पागल समझने लगते थे। लेकिन श्यामा प्रसाद जैसे अनुभवी डॉक्टर मरीज़ के परिजनों को समझाया करते थे कि डिप्रेशन पागलपन नहीं है और इस मानसिक बीमारी के ज़्यादातर मरीज़ पूरी तरह ठीक हो सकते हैं। डिप्रेशन के ईलाज के लिए सही जानकारी बहुत ज़रूरी है।

डिप्रेशन और अन्य मानसिक बीमारियों को दूर करने के लिए चिकित्सक और मरीज़ के साथ-साथ उसके परिवार और दोस्तों का सहयोग बहुत ज़रूरी होता है। डिप्रेशन को दूर करने के लिए अच्छे मनोचिकित्सक से परामर्श ज़रूरी है।

कोई भी व्यक्ति डिप्रेशन का शिकार हो सकता है। बच्चों से लेकर बूढ़े इन्सान भी डिप्रेशन का शिकार हो सकते हैं। आमतौर पर डिप्रेशन किशोरावस्था में शुरू होता है, लेकिन यह किसी भी उम्र में हो सकता है। पुरुषों की तुलना में महिलाओं के डिप्रेशन की समस्या से पीड़ित होने की सम्भावना ज़्यादा होती है। अलग-अलग सामाजिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक कारणों, भावनात्मक स्थिति-परिस्थिति, घटना-दुर्घटना की वजह से डिप्रेशन हो सकता है। इसके अलावा हार्मोन्स में असंतुलन, गर्भावस्था और अनुवांशिक विकृतियाँ भी डिप्रेशन का कारण हो सकती हैं।

उन दिनों डिप्रेशन और दूसरी मानसिक बीमारियों से परेशान कई मरीज़ शारीरिक लक्षणों का ईलाज करवाने के लिए इधर-उधर भटका करते थे। कई डॉक्टर ऐसे थे, जिनका ध्यान मानसिक बीमारी की तरफ़ जाता ही नहीं था। लेकिन अनुभवी डॉक्टर मानसिक बीमारी को आसानी से पहचान लेते थे। श्यामा प्रसाद भी मानसिक बीमारी और उनके लक्षणों को पहचानने में निपुण हो गये थे। लेकिन मानसिक बीमारियों का इलाज मनोरोग चिकित्सक ही करते हैं। इस वजह से जब भी ऐसा कोई मरीज़ श्यामा प्रसाद के पास आता, वे उसे इलाज के लिए मनोरोग चिकित्सक के पास भेजा करते थे।

एक दिन एक छोटे बच्चे को अस्पताल लाया गया। माता-पिता ने श्यामा प्रसाद को बताया कि बच्चे का पेट सूज गया है और वह पेट में दर्द की शिकायत कर रहा है।

श्यामा प्रसाद ने बच्चे की जाँच की। वाकई पेट फूला हुआ था। पेट के फूलने के कारण का पता लगाने के मक़सद से श्यामा प्रसाद ने एक्स-रे जाँच करवायी।

एक्स-रे रिपोर्ट से पता चला कि आँतों में पथरियाँ फँसी हुई हैं। श्यामा प्रसाद ने सर्जरी की और आँतों से पत्थर निकाले।

इस चौंकाने वाले केस को सुलझाने के कुछ दिनों बाद इसी तरह का एक और मामला आया। इस बार लड़के की उम्र छह साल थी। इस लड़के को भी पेट में दर्द की शिकायत थी। यह भी उल्टियाँ कर रहा था। श्यामा प्रसाद ने एक्स-रे जाँच करवायी। रिपोर्ट से साफ़ हो गया कि इस बच्चे की आँत में भी पत्थर अटक गये है। श्यामा प्रसाद के सर्जरी की और आँत से पत्थर निकाले। दोनों मामलों में लड़कों के माता-पिता से बातचीत करने पर पता चला कि दोनों लड़के पत्थर खाया करते थे। कुछ बच्चे पत्थर खाते हैं। यह एक मानसिक बीमारी है। इस बीमारी को चिकित्सकीय शब्दावली में 'पाइका' कहा जाता है। 'पाइका' एक दुर्लभ बीमारी है।

उन दिनों सरकारी अस्पतालों में पाइका के मरीज़ भी आया करते थे। श्यामा प्रसाद को इस बीमारी के शिकार मरीज़ों का इलाज करने का मौक़ा मिला। बहुत कम सर्जनों को इस बीमारी के शिकार मरीज़ों का इलाज करने का मौक़ा मिलता है। पाइका खानपान से जुड़ा एक विकार है। पाइका एक ऐसी बीमारी है, जिसमें ऐसे पदार्थों को खाने की इच्छा होती है, जो खाने लायक़ नहीं होते हैं। पाइका एक ऐसे पक्षी का नाम है, जो कुछ भी खा लेता है। उसी के नाम पर इस रोग का नाम रखा गया- पाइका। पाइका के मरीज़ ऐसी चीजें खाते हैं, जिसमें किसी भी तरह का कोई पोषक तत्व नहीं होता है। नाख़ून, बाल, मिट्टी-रेत, चॉक, राख, बर्फ़, सूखे पेंट जैसी चीज़ें खाने वाले लोग पाइका के मरीज़ होते हैं। कई बच्चे अजीब-ओ-ग़रीब तरह से चीज़ें खाते हैं। कुछ बच्चे ज़मीन पर लेटकर मिट्टी चाटते हैं, तो कुछ बच्चों को दीवार पर लगे चूने को चाटने की आदत हो जाती है। कुछ बच्चे तो माचिस की तीलियाँ खाने लगते हैं।

कई बार इस बीमारी के शिकार मरीज़ ख़तरनाक और ज़हरीली चीज़ें भी खा लेते हैं, जिसकी वजह से उनकी जान पर बन आती है। ग़ैर-ज़रूरी चीज़ें खाने की वजह से पाचन-क्रिया पर बुरा असर पड़ता है। पेट में खाना पच नहीं पाता है। पेट में दर्द होने लगता है। लिवर और किडनी के कामकाज में भी समस्या उत्पन्न होती है। यह बीमारी बच्चों और गर्भवती महिलाओं में ज़्यादा देखने को मिलती है। जिन लोगों को मिट्टी, चाक या दीमक के टीले खाने की आदत होती है, उस आदत को

चिकित्सा-विज्ञान की भाषा में जियोफेगिया कहा जाता है। जिन लोगों को बाल खाने की आदत होती है, उस विकार को ट्राइकोबेज़ार कहते हैं।

आमतौर पर पाइका बीमारी उन लोगों को होती है, जो मानसिक रूप से कमज़ोर होते हैं। मानसिक रूप से कमज़ोर होने की वजह शरीर में पोषक-तत्वों की कमी भी हो सकती है। यानी, शरीर में पोषक-तत्वों की कमी की वजह से भी पाइका बीमारी हो सकती है। जब बच्चों को सही और संतुलित भोजन नहीं मिल पाता है, तब वे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं। कुपोषण की वजह से बच्चों और बड़ों, दोनों में ग़ैर-ज़रूरी चीज़ों को खाने की आदत हो जाती है। शरीर में आयरन, कैल्शियम और फोलिक एसिड की कमी की वजह से भी मिट्टी खाने की तलब होती है। शरीर में ख़ून की कमी की वजह से भी कई लोग पाइका का शिकार हो जाते हैं।

ज़्यादातर मामलों में यह बीमारी ज़्यादा समय तक नहीं रहती, लेकिन सही समय पर इलाज न शुरू किये जाने पर यह बीमारी लंबे समय तक के लिए रहती है और इससे काफ़ी नुक़सान पहुँचता है। जिन मरीज़ों को ख़ून की कमी या फिर पोषक तत्वों की कमी की वजह से पाइका हुआ है, उन्हें मिनरल और विटामिन सप्लीमेंट देकर बीमारी को दूर किया जाता है। मानसिक रूप से कमज़ोरी की वजह से जिन मरीज़ों को पाइका होता है, उन्हें मनोरोग चिकित्सकों की मदद से ठीक किया जाता है।

श्यामा प्रसाद ने हाइपोस्पेडियस यानी अधोमूत्रमार्गता के भी कई मामले देखे और इस बीमारी से पीड़ित बच्चों का इलाज किया। इस बीमारी में नवजात शिशु में उसका लिंग पैदाइशी टेढ़ा होता है। उसकी मूत्र-नली पूरी तरह से विकसित नहीं होती है। इसी कारण मूत्र-विसर्जन का छेद लिंग के आगे न होकर पीछे की ओर होता है। नवजात शिशु लिंग के किसी भी हिस्से में जन्मजात बने छेद से पेशाब करता है। इस बीमारी का शिकार होने वाले बच्चे का ऑपरेशन तीन साल की उम्र के भीतर किया जाना ज़रूरी होता है। देरी करने पर जान चली जाती है।

उन दिनों उत्तरप्रदेश के आगरा शहर में रहने वाले सर्जन हरि शंकर असोपा ने हाइपोस्पेडियस के ऑपरेशन में महारत हासिल कर ली थी। प्रोफ़ेसर असोपा ने हाइपोस्पेडिया की बीमारी से बच्चों को निजाद दिलाने के लिए एक नयी चिकित्सकीय तकनीक विकसित की थी। इस तकनीक को 'असोपा तकनीक' कहा जाने लगा था।

इस तकनीक के ईजाद से पहले दुनिया-भर में हाइपोस्पेडियस का ऑपरेशन तीन चरणों में किया जाता था। लेकिन प्रोफ़ेसर असोपा ने एक चरण के ऑपरेशन का आविष्कार किया। इसके बाद दुनिया-भर में यूरोलॉजिस्ट, पीडियाट्रिक सर्जन, प्लास्टिक और जनरल सर्जन इसी तकनीक का इस्तेमाल करने लगे।

भारत ही नहीं बल्कि दुनिया-भर में 500 लड़कों में से एक लड़का हाइपोस्पेडियस दोष के साथ पैदा होता है। इस तरह के मामलों में बच्चों की जान बचाने के मक़सद से श्यामा प्रसाद ने आगरा जाकर प्रोफ़ेसर असोपा से प्रशिक्षण लिया। श्यामा प्रसाद ने हाइपोस्पेडियस के क़रीब एक सौ मामलों में इलाज की प्रक्रिया देखी और समझी।

प्रोफ़ेसर असोपा से मिले प्रशिक्षण की वजह से हाइपोस्पेडियस के मामलों में श्यामा प्रसाद कामयाब सर्जरियाँ करने लगे।

श्यामा प्रसाद डॉ. चंद्रशेखरम से भी बहुत प्रभावित थे। इनसे भी उन्होंने बहुत कुछ सीखा। जब कभी किसी मरीज़ के इलाज के मामले में श्यामा प्रसाद दुविधा में पड़ जाते, तब वे डॉ. चंद्रशेखरम की सलाह लेते। धैर्य और सहनशक्ति, इन दो गुणों की वजह से श्यामा प्रसाद डॉ. चंद्रशेखरम के मुरीद बन गये थे।

उन दिनों कई बच्चे पेट की अलग-अलग बीमारियों से परेशान रहा करते थे। पेट में कीड़े पड़ना, आँतों में कीड़े पड़ना आम समस्या थी। लेकिन कुछ बच्चों में यह समस्या विकराल रूप ले लेती थी। जान ख़तरे में पड़ जाती थी। एक दिन अभिभावक अपने लड़के को लेकर अस्पताल पहुँचा। बच्चे के पेट में दर्द हो रहा था। दर्द असहनीय था। दर्द के मारे बच्चा कराह रहा था। अभिभावक भी घबराये हुए थे। श्यामा प्रसाद ने बच्चे की जाँच की। जाँच से श्यामा प्रसाद को लगा कि पेट में इन्फ़ेक्शन हुआ है। उन्हें पेट में कीड़े पड़ने का भी शक हुआ। श्यामा प्रसाद ने सर्जरी करने का फ़ैसला किया। जब सर्जरी शुरू हुई, तब श्यामा प्रसाद ने पाया कि बच्चे की आँतों में कीड़े है। कीड़ों ने पेट को ख़राब कर दिया था। श्यामा प्रसाद ने कीड़े निकालने शुरू किये। लेकिन श्यामा प्रसाद कीड़ों की संख्या देखकर दंग रह गये। आँतों में कई सारे कीड़े थे। एक हज़ार से ज़्यादा कीड़े पेट से निकाले गये। यह अपने क़िस्म का अनोखा मामला था। इससे पहले कभी किसी मरीज़ की आँतों में इतने ज़्यादा कीड़े नहीं देखे गये। पश्चिम बंगाल में एक हैरतअंगेज़ मामला सामने आया था। इस मामले में एक बच्चे के पेट से क़रीब पाँच सौ कीड़े निकाले गये थे।

लेकिन यह मामला उससे भी ज़्यादा हैरतअंगेज़ था। श्यामा प्रसाद ने सर्जरी कर सारे कीड़े पेट से निकाल दिये। इस मामले की चर्चा देश-भर में हुई। इसी मामले के ज़रिये श्यामा प्रसाद ने लोगों में साफ़-सफ़ाई के प्रति जागरूकता लाने के लिए एक अलग अभियान की शुरुआत की।

श्यामा प्रसाद ने लोगों को, ख़ासकर, बच्चों को समझाना शुरू किया कि अगर साफ़-सफ़ाई पर ध्यान नहीं दिया गया, तो पेट में कीड़े पड़ सकते हैं। ये कीड़े विकास में बाधक सिद्ध होते हैं। सिर्फ़ पेट को ही नहीं बल्कि शरीर के दूसरे अंगों को भी नुक़सान पहुँचाते हैं। दूषित पानी पीने या फिर दूषित भोजन करने से पेट में कीड़े पड़ते हैं। कुछ मीठा खाकर तुरंत सो जाने से भी पेट में कीड़े पड़ सकते हैं। शरीर की साफ़-सफ़ाई पर ध्यान न देने, माँस-मछली, गुड़, दही, सिरका जैसी चीज़ों का अधिक मात्रा में सेवन करने से भी पेट में कीड़े आ जाते हैं। कीड़े आने से पेट में दर्द होता है। मरीज़ को बार-बार भूख लगती है। कुछ मामलों में वजन कम हो जाता है। जीभ सफ़ेद हो जाती है और मुँह से बदबू आने लगती है। कुछ मामलों में मरीज़ का जी मचलने लगता है। किसी का पेट फूल जाता है तो किसी को उल्टियाँ होने लगती हैं। अगर सही समय पर इलाज नहीं किया गया, तो ये कीड़े मौत का कारण बन जाते हैं। इसी वजह से श्यामा प्रसाद लोगों को इन कीड़ों से बचने के उपाय बताने लगे।

अध्याय 9

सत्य साईं के प्रभाव में जीवन किया जन-सेवा में समर्पित

साल 1988 में श्यामा प्रसाद के पिता सुंदरय्या सरकारी नौकरी से सेवा-निवृत्त हो गये। 33 सालों तक सुंदरय्या ने आंध्रप्रदेश के अलग-अलग मेडिकल कॉलेजों और अस्पतालों में अपनी सेवाएँ दीं। शिक्षक के नाते कई मेडिकल विद्यार्थियों को कामयाब सर्जन बनाया। सर्जन के नाते ऑपरेशन थिएटर में सर्जरी करते हुए हज़ारों बीमार लोगों का इलाज किया। ग़रीब और ज़रूरतमंद लोगों की हर मुमकिन मदद की। इस दौरान उनकी चारों संतानें – श्यामा प्रसाद, गोपी कृष्णा, मैथिली और शोभा डॉक्टर बन गये। सुंदरय्या ने अपने दूसरे बेटे गोपी कृष्णा की शादी अपने अज़ीज़ दोस्त मधुसूदन राव की बेटी ईश्वरी से करवायी।

सरकारी अस्पतालों में काम करते हुए सुंदरय्या ने कई अनोखे अनुभव जुटाये। सुंदरय्या को लगा कि पिछड़ी जाति के लोगों के साथ नाइंसाफ़ी हो रही है। उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा जा रहा है। जाति के नाम पर शोषण किया जा रहा है। देश-भर में दलित, अन्य पिछड़ी जाति के लोग, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तौर पर कमज़ोर हैं। सुंदरय्या ने देखा था कि सरकारी अस्पतालों में इलाज करवाने के लिए आने वाले ज़्यादातर लोग ग़रीब हैं। इन ग़रीब लोगों में ज़्यादातर दलित, आदिवासी और पिछड़ी जाति के लोग ही सबसे ज़्यादा हैं। इनमें कई लोग ऐसे भी हैं, जिनके पास दवाई ख़रीदने के लिए रुपये-पैसे भी नहीं हैं। ग़रीब लोगों की मदद करते हुए सुंदरय्या उनके मसीहा बन गये थे। कई लोग थे जो कि यह चाहते थे

कि सुंदरय्या राजनीति में आएँ और शोषित व वंचित लोगों के अधिकारों के लिए संघर्ष करें। सेवा-निवृत्ति के बाद उन पर राजनीति में आने के लिए दबाव बढ़ने लगा। इसी दौरान वे कांशीराम के संपर्क में आये। उन दिनों कांशीराम भारतीय वर्ण-व्यवस्था में बहुजनों के राजनीतिक एकीकरण तथा उत्थान के लिए संघर्ष कर रहे थे। कांशीराम एक बड़ी राजनीतिक ताक़त के रूप में उभर रहे थे। 15 मार्च 1934 को पंजाब के रोपड़ जिले के पिरथीपुर बंगा गाँव में जन्मे कांशीराम सिख रामदासिया समुदाय से थे। एक समय ऐसा था जब रामदासिया समुदाय के लोगों को 'अछूत' माना जाता था। कहा जाता है कि चामर जाति के जिन लोगों ने सिख धर्म अपना लिया था, उन्हें रामदासिया कहा जाता है। कांशीराम के पिता का नाम हरि सिंह और माता का नाम बिशन कौर था। वे सात भाइयों में सबसे बड़े थे। इनके दादा ढेलो राम सेना में जवान थे। इस वजह से कांशीराम के परिवार की आर्थिक स्थिति कई रामदासिया परिवारों की तुलना में मजबूत थी। कांशीराम की स्कूली शिक्षा पंजाब में हुई। 1956 में रोपड़ के सरकारी कॉलेज से बीएससी की पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्हें सरकारी नौकरी मिली। लेकिन कांशीराम ने यह नौकरी करने से इन्कार कर दिया। सर्वे ऑफ़ इंडिया, जहाँ उन्हें नौकरी मिली थी, उस संस्था ने एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने को कहा था। प्रतिज्ञा-पत्र में लिखी शर्तें कांशीराम को मंज़ूर नहीं थीं। इसके कुछ दिनों बाद ही उन्हें पुणे की एक्सप्लोसिव रिसर्च एंड डेवलपमेंट लेबोरेटरी में नौकरी मिल गयी। केंद्र सरकार की आरक्षण नीति के तहत उन्हें यह नौकरी मिली थी। सरकार ने अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ी जातियों के लोगों के लिए सरकारी संस्थाओं में नौकरियों के लिए आरक्षण का प्रावधान रखा था। लेकिन पुणे की इस संस्था में कांशीराम को जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ा। जाति के नाम पर अपमानित किये जाने से उनके मन को ठेंस पहुँची। इस संस्थान में अम्बेडकर जयंती मनाने वाले कर्मचारियों से भेदभाव किया जाता था। यह बात कांशीराम को बहुत खली।

एक बार की बात है। अम्बेडकर जयंती की छुट्टी रद्द किये जाने से नाराज़ चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी दीनाभाना ने विरोध जताना शुरू किया। इस विरोध-प्रदर्शन पर एक अधिकारी ने उन्हें निलंबित कर दिया। इस निलंबन का विरोध करने पर एक अन्य कर्मचारी डी. के. खापर्डे को भी निलंबित कर दिया गया। ये दोनों दलित

समुदाय से थे और दोनों एससी, एसटी वेलफेयर एसोसिएशन के सक्रिय सदस्य थे। जब इन निलंबनों के बारे में कांशीराम को पता चला, तब उन्होंने कहा, "बाबा साहब अम्बेडकर की जयंती पर छुट्टी न देने वाले की जब तक छुट्टी न कर दूँ, तब तक मैं चैन से नहीं बैठूँगा।" इसके बाद कांशीराम ने अपने साथियों के निलंबन को रद्द करवाने के लिए आंदोलन शुरू कर दिया। इस आंदोलन की वजह से उन्हें भी निलंबित कर दिया गया। कहा जाता है कि जिस अधिकारी ने कांशीराम को निलंबित किया था, उस अधिकारी की एक दिन उन्होंने जमकर पिटाई की। कांशीराम के आंदोलन की वजह से न सिर्फ़ दीनाभाना और खापर्डे का निलंबन रद्द हुआ, बल्कि अम्बेडकर जयंती पर छुट्टी दी जाने लगी। लेकिन दीनाभाना का ट्रांसफर दिल्ली कर दिया गया। कांशीराम को लगा कि दलितों पर अत्याचार नहीं रुकने वाला है। सरकारी नौकरी के दौरान कांशीराम ने ऐसी कई घटनाओं के बारे में सुना था, जहाँ कर्मचारी को सिर्फ़ इस वजह से परेशान किया गया क्योंकि वह दलित है। कांशीराम ने एक बड़ा फ़ैसला ले लिया। फ़ैसला था, दलितों और पिछड़ी जाति के लोगों पर हो रही नाइंसाफ़ी के ख़िलाफ़ लड़ने का। वंचित लोगों को उनके अधिकार दिलवाने के लिए आंदोलन करने का।

इसी दौरान कांशीराम ने बाबा साहब अम्बेडकर के बारे में जानकारियाँ जुटानी शुरू कीं। अम्बेडकर की लिखी सभी किताबों को पढ़ा। अम्बेडकर पर लिखी गयीं कई किताबों को आत्मसात किया। महात्मा जोतिराव गोविंदराव फुले व सावित्रीबाई फुले के आंदोलनों के बारे में जाना। इसके बाद कांशीराम ने सबसे पहले दलित और अन्य पिछड़ी जाति के कर्मचारियों का एक संगठन बनाने की सोची। उन्हें एहसास हुआ कि सरकारी नौकरी करते हुए वे इस संगठन को मजबूत नहीं कर पाएँगे। उन्हें लगा कि सरकारी नौकरी करते हुए इंसाफ़ के लिए आंदोलन करने पर उन्हें ऊँची जाति के अधिकारी तरह-तरह से परेशान करेंगे। एक जगह रहने नहीं देंगे। इसी वजह से कांशीराम ने सरकारी नौकरी छोड़ने और दलितों के उत्थान और विकास में अपना जीवन समर्पित करने का मन बना लिया।

कांशीराम को यह भी एहसास हुआ कि सिर्फ़ दलितों का संगठन बनाने से 'मनुवादियों के ख़िलाफ़ संघर्ष' कामयाब नहीं होगा। आंदोलन को कामयाब करने के लिए सभी पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यकों को साथ लेना ज़रूरी है।

देश में सभी पिछड़ी जातियाँ और अल्पसंख्यक समुदाय भी शोषण और नाइंसाफ़ी का शिकार हैं।

6 दिसंबर 1978 को नयी दिल्ली में हुए एक सम्मेलन में कांशीराम ने दीनाभाना और खापर्डे के साथ मिलकर 'दि ऑल इंडिया बैकवर्ड एंड माइनॉरिटी कम्युनिटी एम्प्लॉयीज फेडरेशन' यानी अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदाय कर्मचारी संघ की स्थापना की। यह संगठन 'बामसेफ' के नाम से मशहूर हुआ। 'बामसेफ' के ज़रिये कांशीराम ने दलित, पिछड़ी जाति और अल्पसंख्यक समुदाय के कर्मचारियों के अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष शुरू किया। भेदभाव और नाइंसाफ़ी को रोकने की कोशिश की। ज़ुल्म और अत्याचार का विरोध किया। कांशीराम ने देश के अलग-अलग राज्यों का दौरा कर 'बामसेफ' को मजबूर करना शुरू किया। कुछ सालों में 'बामसेफ' देश के हर राज्य में मजबूत हो गया। राज्य की इकाइयों के बाद ज़िला स्तर पर भी 'बामसेफ' की इकाइयों का गठन हुआ। कांशीराम के इस संगठन की वजह से दलित और पिछड़ी जाति के कर्मचारियों को ताक़त मिली। सभी संगठित हुए और मिलकर एक-दूसरे के अधिकारों की रक्षा करना शुरू किया। इस संगठन की वजह से दलितों में जागरूकता भी आयी।

सरकारी दफ़्तरों में काम करने वाले दलितों और पिछड़ी जाति के लोगों को मजबूत करने के बाद कांशीराम ने सामान्य जनमानस के लिए संघर्ष करने का मन बनाया। कांशीराम को लगा कि भारत में दलितों, आदिवासियों और पिछड़ी जाति के लोगों की संख्या बड़ी होने के बावजूद सवर्ण जाति के लोग ही बड़े और प्रभावशाली पदों पर आसीन हैं। 'बहुजनों' को दबाया जा रहा है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तौर पर बहुजनों को मजबूत करने के मक़सद से कांशीराम ने एक नया संगठन बनने का फ़ैसला लिया। बहुजनों को संगठित करने के लिए कांशीराम ने 1981 में दलित शोषित समाज संघर्ष समिति की स्थापना की। यह संगठन 'डीएस-4' के नाम से मशहूर हुआ। बहुजनों को जोड़ने के मक़सद से कांशीराम ने नारा दिया,"ठाकुर, ब्राह्मण, बनिया छोड़, बाक़ी सब हैं डीएस-4।"

डीएस-4 से लोगों के जोड़ने के लिए कांशीराम ने एक बड़ा जनसंपर्क अभियान चलाया। उन्होंने साइकिल-यात्रा की और गाँव-गाँव, शहर-शहर जाकर

भाषण दिये। उनके भाषण इतने प्रभावशाली थे कि हज़ारों की संख्या में लोग दलित शोषित समाज संघर्ष समिति से जुड़ गये। जहाँ कहीं किसी दलित या पिछड़ी जाति के व्यक्ति के ख़िलाफ़ नाइंसाफ़ी या ज़ुलम होता, डीएस-4 के लोग वहाँ पहुँच जाते और इंसाफ़ के लिए लड़ाई शुरू हो जाती। 1983 में डीएस4 ने एक साइकिल रैली निकली और अपनी ताक़त का शानदार प्रदर्शन किया। इस रैली में तीन लाख से ज़्यादा लोगों ने हिस्सा लिया। डीएस4 की लगातार बढ़ती ताक़त से प्रभावित कांशीराम ने 1984 में एक और बड़ा फ़ैसला लिया। फ़ैसला था राजनीतिक पार्टी बनाने का। लेकिन उनके कई साथी इस फ़ैसले के ख़िलाफ़ थे। लेकिन कांशीराम यह मानने लगे थे कि राजनीतिक सत्ता ऐसी चाभी है, जिससे सभी ताले खोले जा सकते हैं। उन्होंने 1984 में 'बहुजन समाज पार्टी' के नाम से एक राजनीतिक दल की शुरुआत की। उन्होंने 'एक नोट, एक वोट' का नारा दिया।

कांशीराम ने अपने राजनीतिक जीवन का पहला चुनाव 1984 में अविभाजित मध्यप्रदेश के जांजगीर-चांपा से लड़ा। कांग्रेस की लहर थी और कांशीराम भी चुनाव हार गये। वे इस चुनाव में तीसरे नंबर पर रहे। इस हार से कांशीराम निराश तो हुए, लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और पार्टी को मजबूत करने में जुट गये। उन्होंने देश के अलग-अलग क्षेत्रों का दौरा करना शुरू किया। इसी दौरान उनकी मुलाक़ात सुंदरय्या से हुई। सुंदरय्या की जन-सेवा से कांशीराम बहुत प्रभावित हुए। वे आंध्रप्रदेश में भी बहुजन समाज पार्टी को मजबूत करना चाहते थे। उन्हें पिछड़ी जाति के एक ऐसे प्रभावशाली नेता की तलाश थी, जो पार्टी का नेतृत्व कर सके। कांशीराम को सुंदरय्या में वह ताक़त नज़र आयी, जिसकी वे तलाश में थे। लेकिन सुंदरय्या को मनाना आसान नहीं था। वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रभाव में लंबे समय तक थे। लेकिन सरकारी अस्पतालों में काम करते हुए इस संगठन से उनका मोह भंग हो गया था। उन्हें भी लगने लगा था कि मनुवादी मानसिकता की वजह से अगड़ी जाति के लोग पिछड़ी जाति के लोगों को आगे बढ़ने नहीं दे रहे हैं। देश में बड़े ओहदों पर अगड़ी जाति के लोगों के आसीन होने की वजह से संविधान का सही तरह से पालन नहीं हो पा रहा है। कांशीराम ने सुंदरय्या को अम्बेडकर के आंदोलन की याद दिलायी। उनके संकल्पों के बारे में अपने विचार साझा किये। चूँकि कांशीराम ने पिछड़ी जाति के लोगों के उत्थान के लिए सब कुछ त्याग दिया था और

अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया था, सुंदरय्या ने उनका साथ देने का फ़ैसला कर लिया। कांशीराम ने जिंदगी-भर अविवाहित रहकर, बिना किसी लाभ के पद पर रहे हुए पिछड़ी जातियों के लोगों के सशक्तिकरण के लिए संघर्ष करने का प्रण लिया था। उन्होंने एलान किया था कि वे कभी अपने पुश्तैनी घर नहीं जाएँगे और न ही अपने लिए मकान बनवाएँगे। ग़रीबों और दलितों का घर ही उनका घर होगा। कांशीराम ने यह भी कहा था कि जब तक अम्बेडकर का सपना पूरा नहीं हो जाता, वे चैन से नहीं बैठेंगे। कांशीराम के इन्हीं फ़ैसलों से प्रभावित होकर सुंदरय्या आंध्रप्रदेश भ्रमण पर निकल पड़े। वे गाँव-गाँव और शहर-शहर जाने लगे। वे लोगों को अम्बेडकर के विचारों और उनके सपनों के बारे में बताने लगे।

कांशीराम के अनुरोध पर सुंदरय्या ने आंध्रप्रदेश में चुनाव लड़ा। उन्होंने साल 1989 में पूर्व गोदावरी ज़िले के प्रत्तिपाडु से अपनी क़िस्मत आज़मायी। घर-घर जाकर चुनाव प्रचार करने के बावजूद सुंदरय्या चुनाव हार गये। जिस विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र से सुंदरय्या ने अपना पहला चुनाव लड़ा था, उस क्षेत्र में यादवों की संख्या अन्य जाति के लोगों की तुलना में अधिक थी। कांशीराम ने ख़ुद सुंदरय्या से इस चुनाव क्षेत्र से क़िस्मत आज़माने को कहा था। चुनाव-प्रचार के दौरान ही सुंदरय्या को एहसास हो गया था कि चुनाव जीतने के लिए धन-बल की ज़रूरत होती है। बिना रुपये ख़र्च किये वोटरों को आकर्षित नहीं किया जा सकता है। सुंदरय्या चुनाव में जीत के लिए लोगों में रुपये बाँटने और उन्हें शराब पिलाने के सख़्त ख़िलाफ़ थे।

साल 1990 में श्यामा प्रसाद ने विशाखपट्नम के द्वारकानगर में अपना मकान बना लिया। अब वे अपने पिता सुंदरय्या से अलग रहने लगे। पिता पर अपनी बेटियों का भविष्य सँवारने की ज़िम्मेदारी थी। कुछ कारणों से बड़ी बेटी मैथिली की शादी नहीं हो पायी थी। दूसरी बेटी शोभा ने श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में अपने सीनियर मेडिकल छात्र डॉ. किशोर से प्रेम-विवाह कर लिया था। चूँकि मैथिली की शादी नहीं हुई थी, सुंदरय्या ने फ़ैसला कर लिया था कि वे इन्हीं के साथ रहेंगे।

1993 में श्यामा प्रसाद किंग जॉर्ज हॉस्पिटल के बाल-चिकित्सा विभाग से जनरल सर्जरी विभाग में आ गये। उन्होंने चार साल तक बच्चों का इलाज किया

और सर्जरियों के ज़रिये उनकी बीमारियाँ दूर कीं। जनरल सर्जरी विभाग में आने के बाद श्यामा प्रसाद ने ग़ौर किया कि मधुमेह यानी डायबिटीज़ से पीड़ित कई मरीज़ बहुत बुरी हालत में अस्पताल आया करते हैं। डायबिटीज़ के कई मरीज़ पैर में अल्सर या गैंगरीन की समस्या होने पर अस्पताल आते थे। कई मामले तो इतने गंभीर होते थे कि मरीज़ की जान बचाने के लिए सर्जन को पैर काटना पड़ता था। श्यामा प्रसाद ने देखा कि पैर में अल्सर या गैंगरीन के ज़्यादातर मरीज़ उम्रदराज़ हैं। वृद्धावस्था में पैर काट दिये जाते से इनका जीवन और भी मुश्किल और दर्दभरा हो रहा है। श्यामा प्रसाद को लगा कि कुछ सर्जन जल्दबाज़ी में पैर काट रहे हैं। पैर काटे बग़ैर भी मरीज़ की जान बचायी जा सकती है। श्यामा प्रसाद ने डायबिटीज़ के मरीज़ के शरीर का कोई अंग काटे बिना उनकी जान बचाने और उसे दुबारा स्वस्थ्य बनाने के उपाय जानने की कोशिश शुरू की। उन्होंने डायबिटीज़ और इस बीमारी के इलाज के बारे में जानकारियाँ जुटानी शुरू कीं। शोध और अनुसंधान शुरू किया। अलग-अलग अस्पतालों में डॉक्टरों से बातचीत की। दुनिया के विकसित देशों में पैर में अल्सर और गैंगरीन जैसी बीमारियों के निदान के लिए अपनायी जाने वाली चिकित्सा-पद्धतियों के बारे में जाना।

डायबिटीज़ पर गहन अध्ययन करने के बाद श्यामा प्रसाद ने एक फ़ैसला लिया। फ़ैसला था, जब तक पैर काटने की स्थिति टाली जा सकती है, तब तक इसे टाला जाए। जब जान बचाने के लिए पैर काटने के सिवाय दूसरा कोई विकल्प न हो, तब ही पैर काटा जाए। श्यामा प्रसाद अपने फ़ैसले के मुताबिक़ काम करने लगे। वे इसी से संतुष्ट नहीं हुए। जिन मरीज़ों के पैर काट दिये जाते थे, उन्हें कृत्रिम पैर लगवाने शुरू किये। कृत्रिम पैर की वजह से विकलांग हुए मरीज़ों को नया जीवन मिला। पैर न होने की वजह से लोगों को कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। उठने-बैठने में तकलीफ़ होती है। मामूली काम के लिए भी दूसरों की मदद लेनी पड़ती है। ऐसे में कृत्रिम पैर लगवाने से हर उम्र के लोग अपने रोज़मर्रा के कामकाज आसानी से कर सकते हैं।

श्यामा प्रसाद को एक बात पर बड़ी पीड़ा हुई। समय पर इलाज शुरू न करवाने की वजह से ज़्यादातर मामलों में डायबिटीज़ के मरीज़ों को पाँव कटवाने की नौबत आती है। उन्होंने अनुभव किया कि लोगों में डायबिटीज़ के बारे में सही

जानकारी नहीं है। लोगों में जागरूकता की कमी है। कई लोग ऐसे हैं, जो डायबिटीज़ के लक्षणों को गंभीरता से नहीं लेते। कई मरीज़ यह नहीं जानते कि डायबिटीज़ पैरों का सबसे बड़ा दुश्मन है। कई लोगों को यह नहीं मालूम कि डायबिटीज़ के इलाज में लापरवाही बरतने से वे विकलांग हो सकते हैं। डायबिटीज़ की वजह से मरीज़ की रोग-प्रतिरोधक क्षमता कम होती है और वह दूसरी बीमारियों का शिकार होता है। डायबिटीज़ का असर सिर्फ़ पैरों पर नहीं, बल्कि आँखों, किडनी, नसों, दिल, दिमाग़ पर भी पड़ता है। डायबिटीज़ से पीड़ित लोगों को हार्ट अटैक (दिल का दौरा) और हार्ट स्ट्रोक (हृदयाघात) हो सकता है। ब्रेन स्ट्रोक की संभावना भी बढ़ती है। किडनी के ख़राब होने और आगे चलकर फ़ेल होने का ख़तरा रहता है। डायबिटीज़ की वजह से पैर की दमनियाँ ब्लॉक होती हैं। इसी वजह से मरीज़ों को पैरों के निष्क्रिय होने जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

डायबीटीज़ के कारण पैरों में कई तरह के इंफ़ेक्शन होते हैं। इनमें फंगल इंफ़ेक्शन, एथलीट फूट, सेल्युलस, कॉर्न्स, फफोले, बनियन, ड्राई स्किन, डायबीटिक अल्सर, हैमर टो यानी अंगूठे का मुड़ जाना शामिल हैं। टॉन्सिल की समस्या भी हो सकती है।

श्यामा प्रसाद मरीज़ों को समझाने लगे कि जब इन्सान का शरीर ख़ून में मौजूद शुगर की मात्रा को सोखने में असमर्थ हो जाता है, तब यह स्थिति डायबिटीज़ को जन्म देती है। जब कोई इन्सान कुछ खाता है, तब शरीर कार्बोहाइड्रेट को तोड़कर ग्लूकोज़ में बदलता है। इसके बाद पेंक्रियाज़ से इंसुलिन नामक हार्मोन निकलता है, जो शरीर की कोशिकाओं को ग्लूकोज़ को सोखने का निर्देश देता है। इससे शरीर में ताक़त पैदा होती है। लेकिन जब इंसुलिन का फ़्लो रुक जाता है, तो हमारे शरीर में ग्लूकोज़ की मात्रा बढ़नी शुरू हो जाती है, यानी शरीर में इंसुलिन की मात्रा में कमी आने से डायबिटीज़ की बीमारी होती है।

डायबिटीज़ मूल रूप से दो प्रकार का होता है, टाइप-1 और टाइप-2। टाइप 1 डायबिटीज़ में पेंक्रियाज़ में हार्मोन इंसुलिन बनना बंद हो जाता है। ऐसा तब होता है, जब इंसुलिन बनाने वाली कोशिकाएँ नष्ट हो जाती हैं। इससे ख़ून में ग्लूकोज़ की मात्रा बढ़ने लगती है। ग्लूकोज़ से शरीर को ऊर्जा मिलती है और ग्लूकोज़ का इस्तेमाल न कर पाने से शरीर कहीं और से ऊर्जा लेता है। इसके लिए शरीर फैट

और प्रोटीन का इस्तेमाल करता है, जो शरीर के अन्य हिस्सों में मौजूद होते हैं। इसी वजह से डायबिटीज़ होने पर मरीज़ का वज़न कम हो जाता है और वह अस्वस्थ महसूस करने लगता है। टाइप 1 डायबिटीज़ से पीड़ित लोग बार-बार पेशाब आने, थकान महसूस होने और प्यास लगने की शिकायत करते हैं। वैज्ञानिक यह पता लगाने में सफल नहीं हुए हैं कि ऐसा क्यों होता है। लेकिन इसे आनुवंशिकता और वायरल इंफ़ेक्शन से जोड़कर देखा जाता है।

टाइप 2 डायबिटीज़ में पेंक्रियाज़ में ज़रूरत के हिसाब से इंसुलिन नहीं बनता है। ऐसा उस समय होता है, जब हार्मोन ठीक से काम नहीं करता। टाइप 2 डायबिटीज़ के मामले टाइप 1 से ज़्यादा होते हैं। टाइप 1 की तुलना में टाइप 2 ज़्यादा ख़तरनाक नहीं होता। जीवन-शैली में बदलाव लाकर इस बीमारी को दूर किया जा सकता है। नियमित रूप से व्यायाम करने पर भी मदद मिलती है। चूँकि टाइप 2 डायबिटीज़ शरीर में बहुत ज़्यादा ग्लूकोज़ इकट्ठा होने से होती है, ज़्यादा फैट और शुगर वाला खाना कम करने और कसरत करने से ग्लूकोज़ कम करने में मदद मिलती है। लेकिन जब जीवन-शैली में बदलाव और कसरत से भी फ़ायदा नहीं मिलता, तब ग्लूकोज़ कम करने के लिए दवाइयाँ दी जाती हैं।

टाइप 1 के मामलों में इंसुलिन के इंजेक्शन लगाकर मरीज़ का इलाज किया जाता है। मामला चाहे टाइप 1 का हो टाइप 2 का, आमतौर पर मरीज़ में बीमारी के लक्षण साफ़ दिखाई देते हैं।

श्यामा प्रसाद लोगों को यह समझाने लगे कि लक्षण दिखने पर तुरंत डॉक्टर से संपर्क किया जाना चाहिए। इलाज शुरू होने पर डॉक्टर के सभी निर्देशों का पालन किया जाना चाहिए। इलाज में लापरवाही जान-लेवा साबित हो सकती है। श्यामा प्रसाद को इस बात पर बहुत ताज्जुब होता था कि कई लोग शरीर में होने वाले बड़े बदलावों को भी नज़रअंदाज़ करते थे। बीमारी के संकेतों पर ध्यान नहीं देते थे। पैरों से पानी बहना, एक या दोनों पैरों में असाधारण सूजन, जलन, लालिमा और दुर्गंध जैसे लक्षणों के बाद भी कई लोग अस्पताल नहीं जाते थे।

ख़ून में शुगर लेवल बढ़ने से पैरों की नसें सिकुड़ने लगती हैं। जिस वजह से नसें ख़राब होने लगती हैं। इस वजह से कुछ मरीज़ों के पैरों में सुन्नपन आ जाता है, तो कुछ मरीज़ों को घाव और जलन की समस्या होती। पैरों में संक्रमण

हो जाता है। मरीज़ पैर के अल्सर का शिकार हो जाता है। डॉक्टर इसे गंभीर स्थिति मानते हैं। मरीज़ की जान बचाने के लिए तुरंत इलाज किया जाना ज़रूरी हो जाता है।

डायबिटीज़ के मरीज़ गैंगरीन का भी शिकार होते हैं। गैंगरीन भी एक ख़तरनाक और जानलेवा रोग है। इस बीमारी में शरीर के कुछ हिस्सों में टिश्यू यानी ऊतक नष्ट होने लगते हैं। इस वजह से उन हिस्सों में घाव बन जाता है, जो लगातार फैलता जाता है। यदि वक़्त रहते इस समस्या का इलाज न किया जाए, तब स्थिति जानलेवा हो सकती है।

जब शरीर में डायबिटीज़ के कारण शुगर की मात्रा अधिक हो जाती है, तब धमनियों में प्रवाहित होने वाले ख़ून में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है। इससे ख़ून का प्रवाह भी प्रभावित होता है और टिश्यू इसका पूरा लाभ नहीं ले पाते हैं। इस स्थिति में धीरे-धीरे करके ये टिश्यू डेड होने लगते हैं, जो बाद में गैंगरीन का रूप ले लेते हैं। गैंगरीन मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है। इनमें सूखा गैंग्रीन, नम गैंग्रीन और गैस गैंग्रीन शामिल हैं। ड्राई गैंगरीन शरीर के बाहरी हिस्सों में विकसित होता है, जबकि नम गैंगरीन शरीर के उन हिस्सों में विकसित होता है, जहाँ के टिश्यू नम होते हैं, जैसे मुँह और फेफड़े। गैस गैंग्रीन वह होता है, जिसमें त्वचा के टिश्यू में बैक्टीरिया पनप जाते हैं, जो दूषित गैस का उत्सर्जन करते हैं, जिससे आसपास की त्वचा में तेजी से संक्रमण फैलता है। डायबिटीज़ ख़ून के प्रवाह को भी प्रभावित करती है। ब्लड फ्लो कम होने के कारण शरीर में लगी किसी चोट या घाव को भरने में बहुत वक़्त लगता है। हाथ और पैर में ख़ून का प्रवाह कम होने से उन्पन्न स्थिति 'पेरिफेरल वैस्कुलर डिजीज़' कहलाती है। जो लोग इस परेशानी से जूझ रहे होते हैं, उनमें अल्सर और गैंगरीन जैसी समस्या होने की संभावना बहुत अधिक बढ़ जाती है।

श्यामा प्रसाद के पास जब भी पैर के अल्सर या गैंगरीन का मामला आता था, वे प्रभावित हिस्से के टिशू को जाँच के लिए लैब भेज देते। जाँच से यह पता चलता कि किस बैक्टीरिया की वजह से इंफ़ेक्शन फैल रहा है। जाँच से यह भी पता चलता है कि इंफ़ेक्शन कितना फैला है। संक्रमण की वजह से हड्डियों पर बुरा असर हुआ है नहीं, यह जानने के लिए एक्स-रे करवाया करते।

अगर श्यामा प्रसाद को लगता कि पैर काटने की ज़रूरत नहीं है, तब वे

इंफ़ेक्शन को कम करने के मक़सद से एंटीबायोटिक दवाइयाँ मरीज़ को देते। ख़ून में शुगर की मात्रा को कम करने के लिए मरीज़ को इंसुलिन के इंजेक्शन दिये जाने लगते। अगर मरीज़ की जान बचाने के लिए पैर काटने की ज़रूरत होती, तब श्यामा प्रसाद सर्जरी करते। लेकिन पैर काटने के बाद भी वे मरीज़ की मदद करते। वे यह सुनिश्चित करते कि मरीज़ को कृत्रिम पैर लग जाएँ, ताकि उसका जीवन पीड़ादायक न हो। श्यामा प्रसाद ने देखा कि जब बात हद से ज़्यादा बिगड़ जाती थी, तब मरीज़ अस्पताल आते थे। कई लोग तो ऐसे भी थे, जो उस समय अस्पताल आते थे, जब बीमारी की वजह से जान पर बन आती थी। श्यामा प्रसाद ने लोगों में डायबिटीज़ के बारे में जागरूकता लाने के मक़सद से एक अघोषित अभियान की शुरुआत की।

श्यामा प्रसाद ने कई ऐसे मामले भी सुलझाये, जिन्हें सुलझाना दूसरे सर्जनों के लिए नामुमकिन जान पड़ रहा था। कई बार ऐसी सर्जरियाँ कीं, जिन्हें करने से अन्य सर्जन पीछे हट गये थे। एक बार की बात है। एक बुज़ुर्ग महिला को अस्पताल लाया गया। इस महिला की उम्र 75 पार थी। महिला को पेट में दर्द हो रहा था। पेट में दर्द की वजह से महिला का हाल बुरा था। वह चीख रही थी, चिल्ला रही थी। ड्यूटी डॉक्टर ने महिला की जाँच की। जाँच से पता चला कि महिला के पेट में हर्निया हुआ है। पड़ताल से यह भी पता चला कि विगत में इस महिला के आठ ऑपरेशन हो चुके हैं। ड्यूटी डॉक्टर महिला की हालत देखकर घबरा गया, उसे लगा कि वह सर्जरी नहीं कर पाएगा। महिला की हालत इतनी ज़्यादा ख़राब थी कि सर्जरी के दौरान कुछ भी हो सकता था। उम्र और बीमारी की वजह से महिला की सर्जरी जोखिमों से भरी थी। जान जाने का ख़तरा था। ड्यूटी डॉक्टर ने श्यामा प्रसाद को बुलवाया। श्यामा प्रसाद ने महिला की जाँच की। उन्हें भी यक़ीन हो गया कि अगर तुरंत सर्जरी नहीं की गयी, तो महिला की जान चली जाएगी। लेकिन सर्जरी आसान नहीं थी। सर्जरी में जोखिम था। हर्निया एक ऐसी बीमारी है, जिसका इलाज सर्जरी से ही मुमकिन है। कुछ सावधानियाँ बरतते हुए इस बीमारी को गंभीर होने से रोका जा सकता है। लेकिन बीमारी के गंभीर होने की स्थिति में सर्जरी ही एकमात्र उपाय रह जाता है। इन्सान के शरीर का कोई अंग जब अपने खोल या झिल्ली से बाहर निकाल आता है, तब उसे हर्निया कहते हैं। हर्निया होने पर मरीज़ को दर्द होता

है। चलने-फिरने में दिक़्क़त पेश आती है। जानकारों के मुताबिक़, आमतौर पर शरीर के किसी हिस्से में माँसपेशियों के कमज़ोर हो जाने और वहाँ लगातार दबाव पड़ने की वजह से हर्निया होता है। ज़्यादातर मामलों में हर्निया पेट में होता है, लेकिन इसके जाँघ, कमर और पेट के निचले हिस्से में होने की संभावना भी रहती है। इस महिला के पेट में हर्निया हुआ था। हर्निया की वजह से पेट में संक्रमण भी बढ़ गया था। श्यामा प्रसाद ने सर्जरी शुरू की। शरीर से हर्निया को बाहर निकाला। पेट में हुए संक्रमण को ख़त्म करने के लिए एंटीबायोटिक्स का इंजेक्शन लगाया। सर्जरी कामयाब रही। महिला का दर्द दूर हुआ और उसकी हालत सुधरी। पाँच दिन बाद महिला पूरी तरह से ठीक हो गयी। श्यामा प्रसाद ने ऐसे कई जटिल ऑपरेशन किये। कई मामलों में जोखिम को देखते हुए दूसरे सर्जनों ने हाथ खड़े कर दिये थे। लेकिन श्यामा प्रसाद ने हमेशा अपना डॉक्टरी फ़र्ज़ को निभाया।

श्यामा प्रसाद ने निजी अस्पतालों में भी कई सर्जरियाँ की। प्राइवेट प्रैक्टिस के दौरान भी गंभीर मामलों में सर्जरी करते हुए मरीज़ों की जान बचायी। श्यामा प्रसाद ने अनकापल्ली, भीमिली, गाजुवाका, एस कोटा, चोडवरम, विजयनगरम, माडुगुला जैसे छोड़े-बड़े शहरों, गाँवों में जाकर मरीज़ों का इलाज किया, सर्जरियाँ कीं। लेकिन प्राइवेट प्रैक्टिस के दौरान की गयी एक सर्जरी की वजह से श्यामा प्रसाद को कई दिनों तक कोर्ट के चक्कर काटने पर मजबूर होना पड़ा। एक बार श्यामा प्रसाद के एक परिचित परिवार में एक सदस्य की तबीयत अचानक बिगड़ गयी। इस व्यक्ति को पेट में दर्द होने लगा। दर्द लगातार बढ़ता गया। जब दर्द असहनीय हो गया, तब परिजन उसे लेकर एक निजी अस्पताल पहुँचे। डॉक्टर ने मरीज़ की जाँच की। जाँच के दौरान डॉक्टर को लगा कि अपेंडिसाइटिस हुआ है।

जाँच करने वाले डॉक्टर ने सर्जरी की सलाह दी। लेकिन उस समय अस्पताल के सभी सर्जन व्यस्त थे। अस्पताल प्रबंधन से जुड़े लोगों ने दूसरे अस्पताल जाने और वहाँ सर्जरी कराने की सलाह दी। लेकिन मरीज़ के परिवारवाले इसी अस्पताल में सर्जनों के कार्य-मुक्त होने का इंतज़ार करने लगे। रात होने के बाद श्यामा प्रसाद का काम पूरा हुआ। वे दिन-भर ऑपरेशन थिएटर में व्यस्त थे। श्यामा प्रसाद को देखकर मरीज़ के परिजनों को उम्मीद की किरण नज़र आयी। परिजनों ने श्यामा प्रसाद से मरीज़ की सर्जरी करने का अनुरोध किया। चूँकि ये लोग परिचित थे और

ग़रीब भी, श्यामा प्रसाद ने बिना फीस लिये सर्जरी करने का फ़ैसला किया। श्यामा प्रसाद जानते थे कि अगर तुरंत ऑपरेशन नहीं किया गया, तो मरीज़ की जान चली जाएगी। उन्होंने सर्जरी की तैयारी शुरू की। बेहोशी की दवा देने के लिए एनेस्थिसियोलॉजिस्ट को बुलवाया। एनेस्थिसियोलॉजिस्ट ने मरीज़ की हालत देखने के बाद बेहोशी की दवा देने से इन्कार कर दिया। हालत वाकई ख़राब थी। लेकिन श्यामा प्रसाद ने एनेस्थिसियोलॉजिस्ट को कहा कि सर्जरी से ही जान बचायी जा सकती है। सर्जरी न होने पर मौत तय है। श्यामा प्रसाद ने एनेस्थिसियोलॉजिस्ट को भरोसे में लिया। मरीज़ को बेहोशी की दवा दी गयी। सर्जरी शुरू हुई।

पेट खोलने पर श्यामा प्रसाद को पता चला कि मामला अपेंडिसाइटिस का नहीं है। तशख़ीस-ए-तबीबाँ ग़लत थी। मरीज़ की छोटी आँत सड़ चुकी थी और इसी वजह से पेट में इंफ़ेक्शन हुआ था। इंफ़ेक्शन की वजह से दर्द शुरू हुआ था और मरीज़ की हालत बिगड़ गयी थी। श्यामा प्रसाद ने सर्जरी के ज़रिये इंफ़ेक्शन को दूर किया। श्यामा प्रसाद को लगा कि सर्जरी कामयाब रही। लेकिन जब मरीज़ को होश आया, तब उसकी आवाज़ ग़ायब थी। श्यामा प्रसाद इसकी वजह समझ गये। एनेस्थिसियोलॉजिस्ट ने ज़रूरत से ज़्यादा बेहोशी की दवाई दे दी थी और इसी का प्रतिकूल असर हुआ।

सर्जरी के बाद परिजन मरीज़ को लेकर अपने घर चले गये। लेकिन कुछ दिनों बाद वे एक वकील के पास पहुँचे। इनकी शिकायत थी कि डॉक्टरों की लापरवाही की वजह से मरीज़ की ज़ुबान बंद हो गयी है। परिजनों ने कोर्ट में मामला दायर कर मुआवज़ा लेने और सर्जरी में शामिल लोगों के ख़िलाफ़ कार्यवाही करने के लिए वकील से गुहार लगायी। यह वकील श्यामा प्रसाद का मुरीद था, इसी वजह से उसने केस अपने हाथ लेने से मना कर दिया। वकील ने श्यामा प्रसाद को मरीज़ के परिजनों की मंशा के बारे में सचेत किया। श्यामा प्रसाद ने बातचीत के ज़रिये मामला सुलझाने की सोची। बातचीत शुरू हुई।

मरीज़ के परिजनों ने बताया कि अस्पताल प्रबंधन ने उनसे तीस हज़ार रुपये लिये, जबकि एक रुपया भी न लेने की बात कही गयी थी। यह बात सुनकर श्यामा प्रसाद को झटका लगा। अस्पताल प्रबंधन ने उनके साथ धोका किया था। श्यामा प्रसाद ने तीस हज़ार रुपये वापस दिलवाने का भरोसा दिलवाया। लेकिन मरीज़ के

परिजनों ने कोर्ट में मामला न दायर करने के लिए एक बड़ी रक़म माँगी। श्यामा प्रसाद ने यह रक़म देने से साफ़ मना कर दिया। श्यामा प्रसाद को लगा कि मरीज़ के परिजन लालच में पड़ गये हैं। मौक़े का नाजायज़ फ़ायदा उठाने की कोशिश कर रहे हैं। श्यामा प्रसाद ने कोई ग़लती नहीं की थी। मरीज़ की जान बचाने के लिए सर्जरी की थी। अगर सर्जरी नहीं की जाती, जो मरीज़ की जान चली जाती। ग़लती एनेस्थिसियोलॉजिस्ट से हुई थी। इसी वजह से श्यामा प्रसाद ने मरीज़ के परिजनों को रक़म देने से इन्कार कर दिया। इसके बाद परिजनों ने श्यामा प्रसाद, एनेस्थिसियोलॉजिस्ट और अस्पताल प्रबंधन के ख़िलाफ़ आंध्रप्रदेश मेडिकल काउंसिल में शिकायत कर दी। इस शिकायत के बाद श्यामा प्रसाद को नोटिस भेजा गया। उन्हें अपनी सफ़ाई देने के लिए कोर्ट के सामने हाज़िर होने को कहा गया। यह मामला कई दिनों तक चला। श्यामा प्रसाद को अपनी सफ़ाई पेश करने के लिए कई बार कोर्ट के चक्कर काटने को मजबूर होना पड़ा। उन्होंने इस मामले को एक सबक़ के तौर पर लिया। लेकिन अपनी जन-सेवा जारी रखी और सर्जन होने का फ़र्ज़ निभाते रहे।

आगे श्यामा प्रसाद ने विशाखपट्नम के अपने मकान में एक क्लीनिक खोल लिया। किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में वे मरीज़ों का इलाज करते थे और ड्यूटी का समय पूरा हो जाने पर वे घर आ जाते थे। लेकिन इलाज के लिए मरीज़ घर भी पहुँच जाते थे। पिता सुंदरय्या की तरह श्यामा प्रसाद ने भी घर पर मरीज़ों का इलाज शुरू कर दिया था। क्लीनिक में मरीज़ों के लिए चार बेड हुआ करते थे। इतना ही नहीं, श्यामा प्रसाद ने घर पर सर्जरियाँ करने के लिए एक ऑपरेशन थिएटर बनवा लिया था। सारी सर्जरियाँ श्यामा प्रसाद ख़ुद किया करते थे। चूँकि क्लीनिक में एक फिज़िशियन की भी ज़रूरत थी, श्यामा प्रसाद के अनुरोध पर उनके दोस्त डॉ. नवस्का रवि कुमार हर दिन सुबह आठ से नौ बजे तक क्लीनिक में मरीज़ों को देखा करते थे। डॉ. रवि भी किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में अपनी सेवाएँ दे रहे थे। समय निकालकर वे श्यामा प्रसाद के मकान पर बने क्लीनिक में आ जाते और लोगों का इलाज करते।

डॉ. रवि से श्यामा प्रसाद की दोस्ती तगड़ी थी। दोनों सुख-दुख के साथी बन गये थे। दोनों को एक-दूसरे की क़ाबिलियत पर पूरा भरोसा था। दोनों एक-दूसरे के हुनर और अनुभव का सम्मान करते थे। डॉ. रवि आस्थावान व्यक्ति थे। पूजा-पाठ

किये बग़ैर उनके दिन की शुरुआत नहीं होती थी। पारंपरिक तरीक़े से सभी त्योहार मनाया करते थे। वे सत्य साईं बाबा के अनन्य भक्त थे। सत्य साईं बाबा को वे भगवान मानते थे।

अक्सर डॉ. रवि सत्य साईं बाबा की 'महिमा' और 'चमत्कार' के बारे में लोगों को बताया करते थे। एक बार डॉ. रवि ने श्यामा प्रसाद से कहा, "सत्य साईं बाबा की लीला अपरंपार है। वे अपनी लीलाओं से लोगों को सद्मार्ग पर चलने को प्रेरित करते हैं। बाबा चमत्कारी हैं। वे अपने 'प्रसाद' से लोगों की बीमारियों को दूर कर देते हैं। उनके दर्शन-भर से सारे कष्ट और दुख दूर हो जाते हैं।" शुरू में तो श्यामा प्रसाद ने डॉ. रवि की बातों पर यक़ीन नहीं किया। लेकिन डॉ. रवि के मुख से लगातार अलग-अलग चमत्कारों की घटनाएँ सुनते हुए उनके मन में विश्वास जागने लगा। श्यामा प्रसाद ने हमेशा ग़ौर किया कि रवि किसी बात पर अहंकार नहीं करते हैं। निःस्वार्थ भावना से लोगों की सेवा करने को अपना धर्म मानते हैं। हमेशा शांत रहते हैं। उनके व्यवहार से यह साफ़ था कि वे अपने जीवन से आनंदित और संतुष्ट हैं।

डॉ. रवि नियमित रूप से पुट्टपर्ति जाकर सत्य साईं बाबा के दर्शन किया करते थे। उन्होंने श्यामा प्रसाद को बताया था कि बाबा ने ग़रीब और निःसहाय लोगों के इलाज के लिए अस्पताल बनाये हैं। गाँवों में ग़रीब लोगों की मदद के लिए 'मोबाइल हॉस्पिटल' शुरू किये हैं। डॉ. रवि जब भी पुट्टपर्ति जाते, तब सत्य साईं के दर्शन करने से पहले गाँवों में जाकर लोगों का इलाज करते थे। छुट्टी मिलते ही रवि अपने परिवार के साथ पुट्टपर्ति चले जाते थे। पुट्टपर्ति रवि और उनके परिवारवालों के लिए सबसे बड़ा तीर्थ-स्थान था।

रवि की भक्ति-भावना और उनके सेवा-भाव से श्यामा प्रसाद बेहद प्रभावित हुए। श्यामा प्रसाद के मन में भी पुट्टपर्ति जाने और सत्य साईं के दर्शन करने की इच्छा जगी। यह इच्छा दिन-ब-दिन बलवती होती गयी। एक दिन श्यामा प्रसाद ने रवि से कहा, "आप हमेशा पुट्टपर्ति जाते हैं। कभी आप हमें अपने साथ लेकर नहीं गये। मैं चाहता हूँ कि आप मुझे भी अपने साथ लेकर पुट्टपर्ति चलें। मैं भी सत्य साईं बाबा के दर्शन करना चाहता हूँ।" इस पर रवि ने कहा, "कोई किसी को पुट्टपर्ति नहीं ले जा सकता है। कोई अपने से भी पुट्टपर्ति नहीं जा सकता है। जब सत्य साईं

बाबा का बुलावा आता है, तभी इन्सान भगवान के दर्शन करने जाता है। जब आपको बुलावा आएगा, तब आप वहाँ ज़रूर जाएँगे।"

श्यामा प्रसाद सत्य साईं के बुलावे का इंतज़ार करने लगे। इसी बीच उन्हें सत्य साईं के बारे में बहुत कुछ जानने का मौक़ा मिला। श्यामा प्रसाद को पता चला कि सत्य साईं बाबा ग़रीब और निःसहाय लोगों की मदद के लिए कई परियोजनाएँ चला रहे हैं। वे न सिर्फ़ लोगों का मुफ़्त में इलाज करवा रहे हैं, बल्कि ग़रीब बच्चों को निःशुल्क शिक्षा भी दे रहे हैं। सत्य साईं बाबा की संस्था ने कई शिक्षा संस्थान खोले हैं और यहाँ बच्चों से पढ़ाई के लिए कोई फीस नहीं जाती है। देश के अलग-अलग हिस्सों से डॉक्टर पुट्टपर्ति आकर बिना कोई शुल्क लिये मरीज़ों का इलाज करते हैं। साईं बाबा ने अपने सेवा-कार्यों से कई लोगों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाया है। उनके काम से दुनिया की कई प्रख्यात हस्तियाँ प्रभावित हैं। सत्य साईं के अनुयायी दुनिया-भर में फैले हुए हैं। उनकी संस्थाएँ कई देशों में धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक कार्यक्रम कर रही हैं।

श्यामा प्रसाद ने सत्य साईं के जीवन के बारे में जाना। उन्हें पता चला कि सत्य साईं का जन्म आंध्रप्रदेश के पुट्टपर्ति गाँव में एक साधारण परिवार में हुआ था। कहा जाता है कि उनका जन्म कार्तिक मास के दौरान अक्षय वर्ष आद्रा नक्षत्र में, पूर्णिमा के बाद तृतीय तिथि ब्रह्म मुहूर्त में हुआ था। दिन सोमवार था। तारीख़ थी 23 नवंबर, 1926। उनके पिता का नाम पेद्दा वेंकमराजू रत्नाकरम और माता का नाम मीसरागंडा ईश्वरम्मा था। दोनों 'भट्टराजू' जाति से थे। 'भट्टराजू' जाति के लोग राजाओं-महाराजों के दरबार में संगीतकार और वाद्यकार हुआ करते थे। ये लोग राजा-महाराजा की तारीफ़ में क़सीदे पढ़ा करते थे।

कई भक्तों का कहना है कि जिस दिन सत्य साईं का जन्म हुआ, उस दिन घर में मौजूद साज़ अपने आप बजने लगे थे। भक्तों ने यह भी सुना था कि ईश्वरम्मा ने सत्यनारायण भगवान की पूजा की थी और व्रत रखा था। प्रसाद खाकर व्रत को तोड़ा था। व्रत पूरा होने के कुछ दिनों बाद वे गर्भवती हुईं। इसी वजह से जब लड़के का जन्म हुआ, तब माता-पिता ने उसका नाम सत्यनारायण राजू रखा। सत्यनारायण राजू पेद्दा वेंकम राजू और मीसरागंडा ईश्वरम्मा की पाँचवीं संतान थे।

सत्यनारायण राजू दूसरे बच्चों से अलग थे। उनकी बुद्धि कुशाग्र थी और

उनका स्वभाव शांत और दयालु था। उन्हें शुरू से ही संगीत और साहित्य में रुचि थी। माता-पिता ने उनका दाख़िला बुक्कापट्नम के स्कूल में करवाया। यहाँ उन्होंने तीसरी कक्षा तक पढ़ाई की। इसे बाद वे अपने बड़े भाई शेषम राजू के यहाँ उर्वकोंडा चले गये। उर्वकोंडा में सत्यनारायण राजू की स्कूली शिक्षा जारी रही।

8 मार्च, 1940 के दिन सत्यनारायण राजू जब अपने दोस्तों के साथ खेल रहे थे, तब एक बिच्छू ने उन्हें डंक मार दिया। इसके बाद वे बेहोश गये। सभी दोस्त घबरा गये। घटना की जानकारी परिवारवालों को दी गयी। बड़े भाई सत्यनारायण को वैद्य के पास ले गये। इलाज शुरू हुआ। लेकिन सत्यनारायण होश में नहीं आये। परिवारवालों को लगा कि बिच्छू के ज़हर का असर बुरी तरह शरीर पर पड़ा है। कुछ लोगों को संदेह हुआ कि सत्यनारायण की जान अब नहीं बचेगी। इस संदेह के पीछे कारण ठोस था। इलाज के बावजूद वे होश में नहीं आ रहे थे। बेहोशी भी एक-दो घंटे की नहीं थी। कई घंटों तक वे बेहोश थे। इसी दौरान वे अचानक होश में आये। सभी परिवारवालों ने राहत की साँस ली। गाँव के लोगों को यह चमत्कार लगा। वैद्य ने भी उम्मीद छोड़ दी थी।

होश में आते ही सत्यनारायण के बर्ताव में काफ़ी परिवर्तन देखने को मिला। वे अचानक संस्कृत बोलने लगे थे। संस्कृत-मंत्रों को लय में गाने लगे थे। यह देखकर सभी हैरान रह गये। परिवारवालों के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं थी। सत्यनारायण ने कभी संस्कृत की पढ़ाई नहीं की। अब तक की उनकी शिक्षा सिर्फ़ तेलुगु भाषा में हुई थी। वे तेलुगु के सिवाय दूसरी कोई भाषा नहीं जानते थे। अचानक उनके मुख से संस्कृत के मंत्र सुनकर सभी हैरान-परेशान हो गये। सभी के लिए सत्यनारायण एक पहेली बन गये।

इसी दौरान सत्यनारायण ने अपनी मातृभाषा तेलुगु में भक्ति-गीत लिखना शुरू किया। वे स्वरचित भक्ति-गीत गाकर लोगों को सुनाने लगे। आवाज़ मधुर होने की वजह से लोग अनायास ही उनकी ओर आकर्षित हो जाते थे।

एक दिन सत्यनारायण ने अपने परिवार के सभी सदस्यों को एक जगह आने को कहा। जब सभी लोग एक जगह जुट गये, तब सत्यनारायण ने अपने हाथ को हवा में घुमाया। इसके बाद अपने हाथ से परिवारवालों को 'विभूति' दी और उसे अपने माथे पर लगाने को कहा। सत्यनारायण ने अपने परिवारवालों से कहा, "मैं

अब से सिर्फ़ आपका नहीं हूँ। मैं सभी का हूँ। मेरा आपसे वही नाता-रिश्ता है, जो औरों से है। मेरे लिए सभी एक समान है।"

इस तरह की बातें सुनकर सत्यनारायण के पिता को गुस्सा आया। उन्हें लगा कि उनके बेटे पर कोई भूत सवार हो गया है या पागलपन का दौरा पड़ा है। पिता ने अकल ठिकाने लगाने के मक़सद से एक छड़ी उठायी और सत्यनारायण को पीटने लगे। जमकर हुई पिटाई का सत्यनारायण पर कोई असर नहीं हुआ। थक-हारकर पिता ने पूछा, "तुम क्या करना चाहते हो?" जवाब में सत्यनारायण ने कहा, "भक्त मुझे बुला रहे हैं। मैं भक्तों की मदद करने जा रहा हूँ।" इस पर पिता ने पूछा, "तुम कौन होते हो लोगों की मदद करने वाले? भक्त, भक्त क्या कर रहे हो, भक्त तो भगवान के होते हैं? तुम कौन हो .... भगवान थोड़े ही हो।"

इस पर सत्यनारायण ने कहा, "मैं साईं बाबा का अवतार हूँ। मैं शिव और शक्ति का स्वरूप हूँ।"

यह बात सुनकर पिता का माथा चकरा गया। उन्होंने कहा, "यह पागल तो मुझे भी पागल कर देगा।"

इसके बाद सत्यनारायण के बड़े भाई शेषम राजू ने पिता से कहा, "पिताजी यह सामान्य बालक नहीं है। हमने देखे हैं इसके चमत्कार। यह अचानक संस्कृत बोलने लगा था। इसने भक्ति-गीत लिखना शुरू किया है। इसके दोस्तों ने बताया कि यह कई तरह के चमत्कार करता है। ये अक्सर अपने दोस्तों के साथ चित्रावती नदी के तट पर जाता है। वहाँ एक इमली का पेड़ है। यही पर सभी खेलते हैं। यह अपने दोस्तों की माँग पर हवा में हाथ घुमाकर उनकी मनचाही चीज़ को ला देता है। पता नहीं वह चीज़ कहाँ से आती है। लेकिन यह जादू करता है।"

ये बातें सुनकर पिता को लगा कि वाकई उनके बेटे सत्यनारायण में चमत्कारी गुण हैं। पिता ने सत्यनारायण को मन चाहा काम करने की आज़ादी दे दी। इसके बाद सत्यनारायण ने घोषणा कर दी कि अब से भक्त उन्हें 'सत्य साईं' बुलाया करेंगे।

सत्यनारायण से 'सत्य साईं' बनने के बाद उन्होंने साधारण वस्त्र पहनना छोड़ दिया और सन्यासी वाले गेरुए कपड़े पहनने लगे। महज़ चौदह साल की उम्र में सत्य साईं ने घर-परिवार त्याग दिया और भ्रमण पर निकल पड़े। सत्य साईं अलग-अलग

जगह जाने लगे। हर जगह वे 'चमत्कार' करने लगे। इन्हीं चमत्कारों की वजह से उनकी लोकप्रियता लगातार बढ़ने लगी। दूर-दूर से लोग उनके दर्शन करने के लिए आने लगे। जो लोग उनके पास समस्याएँ लेकर आते, सत्य साईं उन्हें प्रसाद देते। कुछ लोगों ने यह दावा करना शूरू किया कि सत्य साईं का दिया हुआ प्रसाद खाने से समस्या दूर हो जाती है। समस्या चाहे मानसिक हो या शारीरिक, सत्य साईं के प्रसाद से वह ग़ायब हो जाती है। सत्य साईं लोगों की आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं का निदान अपने 'प्रसाद' से करने लगे। कहा जाता है कि जो कोई भक्त सत्य साईं के पास आता, वे उसे हवा से कुछ वस्तु निकालकर देते और कहते कि यह प्रसाद है और इसके सेवन से परेशानी दूर हो जाएगी। सत्य साईं हवा से कभी कोई फल निकालकर देते, तो कभी विभूति। कई लोग सत्य साईं के इस 'चमत्कार' और उनके 'चमत्कारी प्रसाद' से काफ़ी प्रभावित हुए। 'चमत्कारी प्रसाद' की वजह से सत्य साईं को मानने वाले लोगों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती चली गयी। 1944 में कुछ भक्तों ने मिलकर पुट्टपर्ति में उनके लिए एक मंदिर बनवाया। इसके बाद 1948 में भक्तों ने एक और मंदिर बनवाना शुरू किया। इस मंदिर का निर्माण-कार्य 1950 में पूरा हुआ। साईं ने इस मंदिर को 'प्रशांति निलयम' नाम दिया। वे अब यहीं रहने लगा। उनके दर्शन के लिए हर दिन भारी संख्या में लोग आने लगे। कई लोग सत्य साईं के चमत्कार से लाभान्वित होने का दावा करते हुए उन्हें दानस्वरूप धनराशि देने लगे। जैसे-जैसे भक्तों की संख्या बढ़ी, वैसे-वैसे प्रशांति निलयम का आकार बढ़ा। भक्तों ने हैदराबाद, बैंगलोर, मुंबई जैसे शहरों में भी सत्य साईं के मंदिर बनवाये। दुनिया के अलग-अलग देशों में सत्य साईं के मंदिर बनने लगे। भक्तों ने एक सौ से ज़्यादा देशों में सत्य साईं के संदेश का प्रचार करना शुरू किया।

कहा जाता है कि साल 1963 में सत्य साईं की तबीयत अचानक बिगड़ गयी। उन्हें दिल का दौरा पड़ा।

हालत इतनी ख़राब हुई कि कई दिनों तक इलाज चलता रहा। इस दौरान सत्य साईं ने लोगों को 'दर्शन' नहीं दिये। यह अफ़वाह भी उड़ी कि सत्य साईं शरीर त्याग देंगे। लेकिन कुछ महीनों बाद सत्य साईं ठीक हुए और लोगों के बीच आते ही एक बड़ा एलान कर दिया। सत्य साईं ने कहा, "एक दिन मैं शरीर त्याग दूँगा। लेकिन मैं नया जन्म लेकर फिर आपके बीच आऊँगा। मैं हमेशा आपके साथ हूँ

और हमेशा रहूँगा।" वे यही नहीं रुके, उन्होंने कहा कि उनका अगला जन्म कर्नाटक में होगा और उनका नाम होगा प्रेम साईं।

सत्य साईं से हर जाति, धर्म के लोग जुड़े। उनके भक्तों की संख्या देश-विदेश में लगातार बढ़ती चली गयी। सत्य साईं कहते थे, "मुझे भगवान मानने के लिए किसी को भी अपना धर्म बदलने की ज़रूरत नहीं है। मन से मुझे भगवान मानो, मैं आपका ख़याल रखूँगा।"

वे अपने भक्तों से अक्सर कहा करते थे, "वाई फियर, वेन आई याम हियर।" इसका मतलब है, "जब मैं आपके साथ हूँ, तब डर किस बात का।" यह बात सत्य साईं के भक्तों के विश्वास को तगड़ा बना देती थी। सत्य साईं की एक झलक पाने के लिए भक्तों की भारी भीड़ उमड़ पड़ती थी।

सत्य साईं की लोकप्रियता की एक बड़ी वजह वह 'विभूति' थी, जिसे वे अपने भक्तों को दिया करते थे। ऐसे कई लोग थे, जो यह मानते थे कि विभूति जादुई असर करती है। जिस किसी को सत्य साईं के हाथों विभूति मिलती है, उसकी सारी परेशानियाँ दूर हो जाती हैं। कई लोग तो ऐसे भी थे, जो यह मानते थे कि सत्य साईं के दर्शन से सारे कष्ट दूर हो जाते हैं। कई लोग यह मानने थे कि सत्य साईं के धाम पुट्टपर्ति में क़दम रखते ही समस्याएँ दूर होने लगती हैं। इसी तरह की बातें सुनकर दूर-दूर से लोग पुट्टपर्ति आने लगे थे। सत्य साईं भक्तों के सामने हवा में हाथ फेरते थे और फिर उसमें विभूति आ जाती थी। यही विभूति वे भक्तों को दे देते थे। हवा से विभूति निकालने को भक्त चमत्कार समझते थे। इस तरह के कई 'चमत्कार' सत्य साईं किया करते थे। सत्य साईं ने अपने कुछ भक्तों को हवा से सोने की चेन निकालकर देना भी शुरू किया था। शिवरात्रि के पर्व पर वे अपने मुँह से शिव लिंग निकाला करते थे।

सत्य साईं के आश्रम में त्योहार पारंपरिक तरीक़े से मनाये जाते थे। भक्ति-संगीत के कार्यक्रम नियमित रूप से हुआ करते थे। सत्य साईं कई बार स्वयं भक्ति-गीत सुनाया करते थे। वे अक्सर अपने भक्तों को प्रवचन सुनाते थे। प्रवचनों में उनका ज़ोर सत्य, धर्म, शांति, प्रेम और अहिंसा पर हुआ करता था। सत्य साईं की लोकप्रियता इतनी बढ़ गयी थी कि कई भक्त साईं के पैरों के चित्र की पूजा करने लगे।

साल 1965 में सत्य साईं सेवा संस्थाओं की स्थापना हुई। इन संस्थाओं के माध्यम से सत्य साईं ने नये शिक्षा संस्थान और अस्पताल खोले। आध्यात्मिक और सामाजिक गतिविधियों को बढ़ावा देना शुरू किया। ग़रीबों के कल्याण के लिए कई नयी योजनाएँ और परियोजनाएँ शुरू कीं।

साल 1968 में सत्य साईं पहली बार विदेश गये। उन्होंने अफ़्रीक़ा में केन्या और यूगांडा की यात्रा की। इस यात्रा के बाद वे कभी दुबारा विदेश नहीं गये। पुट्टपर्ति के बाहर भी उनका जाना बहुत कम हुआ करता था। दुनिया के कोने-कोने से दर्शन करने के लिए लोग भारी संख्या में पुट्टपर्ति आते थे। सत्य साईं की वजह से आंध्रप्रदेश में अनंतपुत ज़िले के पुट्टपर्ति को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली। सत्य साईं से पहले तेलुगुभाषी प्रदेशों के बाहर लोग पुट्टपर्ति के बारे में नहीं जानते थे। अनंतपुर ज़िला भी काफ़ी पिछड़ा था। यहाँ हमेशा पानी की क़िल्लत रही। हर साल यहाँ बारिश कम होती है। ज़्यादातर समय अकाल जैसी स्थिति रहती थी। लोग नौकरी की तलाश में पलायन करते थे। रोज़ी-रोटी के लिए कई लोगों को दर-दर पर ठोकरें खाने को मजबूर होना पड़ता था। लेकिन साईं ने जब से यहाँ अपना धाम बनाया, तब से विकास शुरू हुआ। लोगों को नौकरियाँ मिलीं। पानी की क़िल्लत दूर हुई। लोगों का जीवन बदलने लगा। साईं की संस्थाओं ने स्थानीय लोगों की हर मुमकिन मदद करनी शुरू की।

सामाजिक और धार्मिक कार्यों के लिए भक्तों ने सत्य साईं की संस्था को बड़े पैमाने पर धनराशि देना शुरू किया। सत्य साईं ने दानस्वरूप मिली धन-संपत्ति का इस्तेमाल ग़रीब लोगों के कल्याण और क्षेत्र के विकास में भी किया। सत्य साईं ने कई सूखा-प्रभावित गाँवों में पीने का पानी पहुँचाना शुरू किया। ग़रीबों के लिए स्कूल, कॉलेज और अस्पताल बनवाये। यहाँ बिना कोई शुल्क लिये लोगों को शिक्षा और चिकित्सा-सेवा दी गयी।

एक समाज-सेवी के रूप में भी सत्य साईं काफ़ी चर्चित हुए। विदेश में भी उनके भक्तों की संख्या बढ़ी। सत्य साईं ने ख़ुद कई भजन लिखे, उन्हें संगीतबद्ध किया और गाया भी। ये भजन लोगों में ख़ूब लोकप्रिय होने लगे। उनकी बातों, प्रवचनों से कई लोग प्रभावित हुए। सत्य साईं अपने प्रवचनों में 'प्रेम' पर काफ़ी ज़ोर देते थे। वे कहते, "प्रेम के बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं है। दिन का आरंभ प्रेम

से करो। प्रेम से दिन व्यतीत करो। प्रेम से ही दिन को भर दो। प्रेम से दिन का समापन करो। यही प्रभु को पाने का मार्ग है।” वे यह भी कहते, “अगर तुम्हें मुझ पर विश्वास है, तभी तुम्हें मेरी अनुकंपा प्राप्त होगी। अगर भगवान पर विश्वास नहीं है, तो भगवान की अनुकंपा भी प्राप्त नहीं होगी।” सत्य साईं कहते कि ज़रूरतमंदों की सेवा करने से पुण्य मिलता है। वे ‘सत्य, धर्म, शांति, प्रेम और अहिंसा’ को जीवन के लिए सबसे ज़रूरी बताते थे और कहते थे कि इन्हीं गुणों से इन्सान का जीवन सफल बनता है।

श्यामा प्रसाद के दिल-ओ-दिमाग़ पर सत्य साईं के चमत्कारों की कथाओं का असर गहराई से पड़ा। वे सत्य साईं से मिलने को आतुर रहने लगे। वैसे तो श्यामा प्रसाद को इन चमत्कारों पर पूरी तरह से यक़ीन नहीं था, लेकिन वे ख़ुद सत्य साईं से मिलकर उनके प्रभाव और व्यक्तित्व को समझना चाहते थे। उन दिनों आंध्रप्रदेश में सत्य साईं को मानने वाले लोगों की संख्या सबसे ज़्यादा थी। बड़े-बड़े राजनेता, उद्योगपति भी उनके भक्त बन गये थे।

इसी दौरान एक दिन डॉ. रवि ने बताया कि जल्द ही वे पुट्टपर्ति जाने वाले हैं और इस बार वे श्यामा प्रसाद को अपने साथ लेकर चलेंगे। यह बात सुनकर श्यामा प्रसाद को प्रसन्नता हुई।

पुट्टपर्ति के लिए रवाना होने वाले श्यामा प्रसाद अकेले साथी नहीं थे। डॉ. रवि अपने साथ पचास दोस्तों को लेकर जा रहे थे। एक बड़ा दल विशाखपट्नम से रवाना हुआ था। पचास लोग एक साथ रवाना हुए। लेकिन कई कारणों से पूरे पचास लोग पुट्टपर्ति नहीं पहुँच पाये। सफ़र के दौरान कुछ की तबीयत बिगड़ गयी और उन्हें बीच में सफ़र रोकना पड़ा। कुछ को परिवारवालों ने वापस बुला लिया। कुछ लोगों का मन बदल गया और वे बीच में रुक गये। कितने लोग सफ़र पूरा पाये थे, यह बात कोई नहीं जानता था।

जब यह दल पुट्टपर्ति पहुँचा, तब रवि और श्यामा प्रसाद सबसे पहले गाँवों के उन अस्पताल गये, जो सत्य साईं की संस्था ने बनाये थे। दोनों ने यहाँ बीमार लोगों का इलाज किया। दल में जो दूसरे डॉक्टर थे, वे भी अलग-अलग गाँव गये और इन लोगों ने भी बीमार लोगों की मदद की।

इसके बाद सभी लोग सत्य साईं के दर्शन करने के लिए प्रशांति निलयम

पहुँचे। सत्य साईं इन लोगों को देखकर बहुत ख़ुश हुए और कलाई पर पहनने वाली 32 घड़ियाँ भेंटस्वरूप दीं। श्यामा प्रसाद को लगा कि क़रीब चालीस लोग साथ हैं और सत्य साईं ने सिर्फ़ 32 घड़ियाँ दी हैं। कुछ लोगों के नसीब में भगवान की घड़ी नहीं होगी। स्वाभाविक तौर पर ये लोग दुखी होंगे। इनका मन उदास होगा। लेकिन जब श्यामा प्रसाद ने देखा कि कुल 32 लोग ही पुट्टपर्ति पहुँच पाये हैं, तब उन्हें आश्चर्य हुआ। श्यामा प्रसाद को लगा कि यह सत्य साईं का चमत्कार है। उन्हें पहले से जानकारी थी कि कितने लोग उनसे मिलने पहुँच पाएँगे। श्यामा प्रसाद को लगा कि सत्य साईं अंतर्यामी हैं और वाकई उनमें चमत्कारिक गुण मौजूद हैं।

उसी समय श्यामा प्रसाद पर सत्य साईं का रंग चढ़ गया। वे उनके भक्त बन गये। सत्य साईं ने श्यामा प्रसाद को अपने पास बुलाया। भक्ति-भाव में लीन श्यामा प्रसाद सत्य साईं के प्रति समर्पित हो गये। वे सीधे जाकर सत्य साईं के चरणों के पास बैठ गये। सत्य साईं ने पूछा, “आपने क्या देखा?” इस पर श्यामा प्रसाद ने पुट्टपर्ति के आसपास के गाँवों में मरीज़ों के इलाज के दौरान मिले अनुभव को साझा किया। सत्य साईं ने श्यामा प्रसाद के काम की तारीफ़ की। यही वह पल था, जब श्यामा प्रसाद ने प्रण ले लिया कि वे नियमित रूप से पुट्टपर्ति आएँगे और सत्य साईं के अस्पतालों में मरीज़ों का इलाज करेंगे।

सत्य साईं हमेशा सबसे ज़्यादा स्नेह चिकित्सकों और शिक्षकों से करते थे। जो कोई चिकित्सक उनसे मिलने जाता, वह हमेशा उनके स्नेह का पात्र बनता। श्यामा प्रसाद के साथ भी यही हुआ।

प्रसन्न मन के साथ श्यामा प्रसाद विशाखपट्नम लौट आये। उन्होंने सत्य साईं के दर्शन से मिली अनुभूति परिवारवालों और दोस्तों के साथ साझा की।

डॉ. रवि ने श्यामा प्रसाद को बताया कि जो घड़ी सत्य साईं भेंट करते हैं, वह ज़्यादा समय तक किसी के पास नहीं रहती। वह खो जाती है या ग़ायब हो जाती है। पहले तो श्यामा प्रसाद को इस बात पर यक़ीन नहीं हुआ, लेकिन पुट्टपर्ति की यात्रा के बाद उन्हें विश्वास हो गया था कि डॉ. रवि कभी ग़लत बात नहीं करते, वे हमेशा सच बोलते हैं।

चूँकि घड़ी स्वयं सत्य साईं ने दी थी, श्यामा प्रसाद उसे अपने जीवन की सबसे बड़ी संपत्ति मानने लगे थे। घड़ी कहीं गुम न हो जाए, इस मक़सद से वे उसे

संभालकर रखने लगे। श्यामा प्रसाद ने यह घड़ी कभी अपनी कलाई पर नहीं पहनी। सर्जन होने की वजह से उन्हें कई ऑपरेशन करने पड़ते थे। ऑपरेशन के दौरान वे अपनी घड़ी निकाल दिया करते थे। श्यामा प्रसाद को लगा कि किसी दिन ऑपरेशन की वजह से उन्हें यह घड़ी उतारनी पड़ी, तो वह या तो गुम हो जाएगी या कोई उसे चुरा लेगा। इसी वजह से श्यामा प्रसाद उसे सँजोकर रखने लगे।

विशाखपट्नम लौट आने के बाद श्यामा प्रसाद काम पर लग गये। सरकारी अस्पताल में काम करना भी सेवा का काम है। यहाँ पर तरह-तरह के मरीज़ आते हैं। मरीज़ों में कई लोग इतने ग़रीब होते हैं कि उनके पास भोजन ख़रीदकर खाने तक के लिए पैसे नहीं होते। ये लोग निजी अस्पताल में इलाज के लिए होने वाले ख़र्च का भार नहीं उठा सकते हैं।

सरकारी अस्पतालों में मुफ़्त में इलाज होता है, यही वजह है कि ग़रीब लोग सरकारी अस्पताल आते हैं। सरकारी अस्पताल आने का एक और बड़ा फ़ायदा है। बीमारी कौन-सी भी क्यों न हो, मरीज़ की हालत कितनी ख़राब क्यों न हो, सरकारी अस्पताल में मरीज़ को भर्ती किया जाता है। हर तरह के मरीज़ का इलाज सरकारी अस्पताल में होता है।

कई लोग मेडिकल साइंस में डिग्री लेने के बाद निजी प्रैक्टिस शुरू कर देते हैं। कई लोग ख़ुद का नर्सिंग होम या अस्पताल खोल लेते हैं। कई अपनी ख़ुद की क्लीनिक शुरू कर लेते हैं। कई डॉक्टर अस्पताल में नौकरी करने लगते हैं। ये लोग कई मामलों में आज़ाद होते हैं। इनकी तनख़्वाह और आमदनी सरकारी डॉक्टरों से ज़्यादा होती है। हर चिकित्सकीय सेवा के लिए ये लोग मरीज़ से फीस लेते हैं। लेकिन सरकारी डॉक्टर को कोई फीस नहीं मिलती। उन्हें तनख़्वाह पर काम करना पड़ता है। सरकारी अस्पतालों में एक डॉक्टर कितने भी मरीज़ क्यों न देख ले, उसे उतनी ही तनख़्वाह मिलेगी, जितनी कि सरकार ने तय की है। जब कि निजी प्रैक्टिस करने वाले डॉक्टर की आमदनी मरीज़ों की संख्या पर निर्भर करती है। जितने ज़्यादा मरीज़ होंगे, उतनी ज़्यादा आमदनी होगी। ज़्यादा से ज़्यादा धन-संपत्ति जुटाने के मक़सद से कई डॉक्टर सरकारी अस्पताल में काम करना पसंद नहीं करते हैं। श्यामा प्रसाद अगर चाहते, तो वे भी निजी प्रैक्टिस शुरू कर सकते थे। वे एक कामयाब और लोकप्रिय सर्जन के रूप में बहुत मशहूर हो चुके थे। लेकिन श्यामा

प्रसाद के लिए जन-सेवा प्राथमिकता थी। पिता सुंदरय्या के प्रभाव में श्यामा प्रसाद ने भी जन-सेवा में जीवन समर्पित करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। वे जानते थे कि ग़रीबों और निःसहाय लोगों की सेवा करने के लिए सरकारी अस्पताल से बेहतर जगह कोई और नहीं है। श्यामा प्रसाद हमेशा मरीज़ों के इलाज में व्यस्त रहने लगे।

एक दिन एक महिला उनके मकान वाली क्लीनिक पर पहुँचीं। इस महिला ने श्यामा प्रसाद से कहा, "डॉक्टर साहब, मुझे दो दिन पहले एक सपना आया था। सपने में सत्य साईं भगवान ने मुझे आपके बारे में बताया। भगवान ने मुझे आपसे मिलने और आपके हाथों अपना इलाज करवाने का आदेश थे। स्वयं भगवान ने ही आपके मकान का पता बताया है।"

ये बातें सुनकर श्यामा प्रसाद को बहुत आश्चर्य हुआ। पश्चिम गोदावरी ज़िले के तनुकु की रहने वाली इस महिला का नाम वेंकम्मा था। तनुकु में श्यामा प्रसाद का कोई परिचित नहीं था। इसी वजह से श्यामा प्रसाद को इस महिला की बात पर यक़ीन हो गया। उन्होंने महिला को अपनी क्लीनिक में भर्ती कर किया। महिला को स्तन कैंसर था। तनुकु के डॉक्टरों ने उसे बताया था कि अब इस स्थिति में इलाज संभव नहीं है। महिला सत्य साईं की भक्त थी और उन पर उसका अटूट विश्वास था। महिला ने सत्य साईं से प्रार्थना की। महिला के मुताबिक़, प्रार्थना के बाद सत्य साईं ने उसे सपने में दर्शन दिये। श्यामा प्रसाद ने सर्जरी की और महिला के शरीर से ट्यूमर निकाला। सर्जरी के बाद श्यामा प्रसाद ने महिला को उसके घर भिजवा दिया। घर लौटने से पहले महिला ने श्यामा प्रसाद को ख़ूब दुआएँ दीं।

वेंकम्मा से सत्य साईं के भक्तों के आने का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह कभी रुका नहीं। दूर-दूर से लोग श्यामा प्रसाद के पास इलाज के लिए आने लगे। इन सभी लोगों को भगवान से आदेश मिला था। चूँकि ये लोग उन इलाक़ों से आ रहे थे, जहाँ श्यामा प्रसाद के बारे में जानने वाला कोई न था, इस वजह से उन्हें हर मरीज़ की बात पर यक़ीन हुआ।

इसी बीच श्यामा प्रसाद को पता चला कि विशाखपट्नम में सत्य साईं का जो मंदिर है, उसमें लोगों के इलाज की व्यवस्था की गयी है। मंदिर परिसर में एक छोटा-सा अस्पताल खोला गया है। श्यामा प्रसाद हर शाम अस्पताल जाने लगे। जैसे

ही किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में ड्यूटी ख़त्म होती, श्यामा प्रसाद सीधे सत्य साईं अस्पताल पहुँच जाते और यहाँ लोगों का इलाज करते।

अपने पति को सेवा-भाव में तल्लीन देखकर पत्नी लक्ष्मी राज्यम ने भी ग़रीब लोगों की हर मुमकिन मदद करने का प्रण लिया। वे भी अपने पति श्यामा प्रसाद के साथ हर दिन सत्य साईं हॉस्पिटल जाने लगीं। अस्पताल में आने वाली महिलाओं का इलाज लक्ष्मी करतीं। लक्ष्मी ने अस्पताल में जचगी करवानी भी शुरू की। चूँकि यहाँ प्रसव बिना शुल्क लिये करवाया जाता था, महिलाएँ दूर-दूर से जचगी के लिए यहाँ आने लगीं।

सत्य साईं के एक भक्त ने श्यामा प्रसाद और उनकी पत्नी का ध्यान आदिवासियों की समस्याओं की ओर आकर्षित किया। विशाखपट्नम और आसपास के ज़िलों में कई आदिवासी इलाक़े हैं। जंगल में रहने वाले आदिवासियों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये लोग कच्चे मकानों में रहते हैं। इनके पास न बिजली की सुविधा होती हैं, न सुरक्षित पानी की। चूँकि ये लोग घने जंगल में रहते हैं, इनके पास पहुँचने के लिए सड़क भी नहीं होती है। अगर इन आदिवासियों को किसी काम के लिए गाँव या शहर आना हो, तब वे कच्ची सड़क से सफ़र तय करते हैं।

आदिवासी महिलाओं को सबसे ज़्यादा परेशानी होती है। जचगी के दौरान कई महिलाओं की मौत हो जाती है। ज़्यादातर आदिवासी बच्चे कुपोषित होते हैं। महामारी आसानी से फैलती है। पानी, बिजली, स्कूल, अस्पताल जैसी मूलभूत सुविधाएँ भी कोसो दूर होती हैं।

श्यामा प्रसाद ने आदिवासी इलाक़ों का दौरा करने और वहाँ बीमार लोगों का इलाज करने का बड़ा फ़ैसला ले लिया। पत्नी लक्ष्मी राज्यम ने इस काम में श्यामा प्रसाद की हर मुमकिन मदद करने का संकल्प लिया। एक दिन श्यामा प्रसाद, अपनी पत्नी और सहायकों के साथ आदिवासी इलाक़ों के दौरे पर रवाना हुए। जंगल में प्रवेश करने के बाद श्यामा प्रसाद को एहसास हुआ था कि यहाँ हालत उससे भी ज़्यादा ख़राब है, जितना कि उन्होंने सुना था। आदिवासियों से मिलने पर श्यामा प्रसाद को पता चला कि ये लोग समाज की मुख्यधारा से पूरी तरह कटे हुए हैं। ये लोग साफ़-सफ़ाई पर ध्यान नहीं देते। स्वास्थ्य के प्रति जागरूक नहीं है। आदिवासी

लोग कई दिनों तक स्नान नहीं करते। अपने नाखून साफ़ नहीं रकते। बालों और दाँत की सफ़ाई नहीं करते हैं। इनका आहार पौष्टिक नहीं होता। इनके भोजन में शरीर को स्वस्थ्य बनाये रखने के लिए ज़रूरी तत्व नहीं होते। खुले में शौच से भी कई बीमारियाँ फैलती हैं। साँप और बिच्छू के काटने पर इलाज मुमकिन नहीं हो पाता। मच्छरों से फैलने वाली बीमारियों की वजह से कई लोगों की मौत हो जाती है।

श्यामा प्रसाद को अपनी आँखों पर यक़ीन करना मुश्किल हो रहा था। उन्होंने कभी सोचा नहीं था कि लोग जंगल में इस तरह रहते हैं। श्यामा प्रसाद और उनकी पत्नी ने सबसे पहले आदिवासी लोगों को स्वच्छता के महत्व के बारे में समझाया। जो लोग स्वास्थ्य संबंधी छोटी-मोटी समस्याओं से परेशान थे, उन्हें दवाइयाँ दीं। इसके बाद सभी शहर लौट आये। अपने अगले दौरे के लिए श्यामा प्रसाद ने अलग तरह से तैयारी की। आदिवासी लोगों में बाँटने के लिए पौष्टिक आहार लिया। बिस्कुट लिये। विटामिन और मिनरल की गोलियाँ लीं। सर्दी, जुखाम, बुख़ार होने पर दी जाने वाली दवाइयाँ लीं। नये कपड़े लिये। पूरे ज़रूरी सामान के साथ श्यामा प्रसाद आदिवासी इलाक़ों में पहुँचे और ज़रूरतमंद लोगों की मदद की। लक्ष्मी ने आदिवासी महिलाओं को कामयाब जचगी के लिए किये जाने वाले उपायों के बारे में समझाया।

आदिवासी इलाक़ों में जाकर लोगों की मदद करने का यह सिलसिला निरवरत जारी रहा। तीन महीने में एक बार श्यामा प्रसाद आदिवासी इलाक़ों का दौरा कर बीमार लोगों का इलाज करने लगे।

एक दिन श्यामा प्रसाद को लगा कि सत्य साईं उन्हें पुट्टपर्ति आने के लिए कह रहे हैं। उन्होंने इसे भगवान का 'बुलावा' समझा और पुट्टपर्ति जाने की तैयारी में जुट गये। जब श्यामा प्रसाद पुट्टपर्ति पहुँचे, तब उन्हें इस बार डॉ. नरसिंहन से मिलवाया गया। डॉ. नरसिंहन सत्य साईं मोबाइल हॉस्पिटल परियोजना के प्रभारी थे। इस परियोजना के तहत एक बस को अस्पताल में तब्दील किया गया था। इस मोबाइल हॉस्पिटल में मरीज़ों के इलाज के लिए ज़रूरी सारा सामान रखा जाता था। मोबाइल हॉस्पिटल पर सवार होकर डॉक्टरों की टीम अलग-अलग गाँवों का दौरा करती। इस दौरे में मरीज़ों का इलाज किया जाता। जिन मरीज़ों को इलाज मोबाइल हॉस्पिटल में संभव नहीं हो पाता, उन्हें पुट्टपर्ति के बड़े अस्पताल आने को कहा जाता। इस बड़े अस्पताल में बड़ी-बड़ी बीमारियों का इलाज भी संभव था। यहाँ

जटिल ऑपरेशन भी किये जाते थे। अलग-अलग बीमारियों के इलाज के जानकार यहाँ अपनी सेवाएँ देते थे। कई डॉक्टर और सर्जन ऐसे थे, जो बाहर से यहाँ आकर सेवाएँ देते थे और फिर वापस अपने यहाँ लौट जाते थे। श्यामा प्रसाद ने भी नियमित रूप से पुट्टपर्ति जाकर मरीज़ों की सेवा करना का मजबूत संकल्प लिया था। डॉ. नरसिंहन ने श्यामा प्रसाद से ज़रूरतमंद मरीज़ों की सर्जरी करने का अनुरोध किया। श्यामा प्रसाद ने एक के बाद एक कई सर्जरियाँ कीं और लोगों को बीमारियों से मुक्ति दिलायी।

श्यामा प्रसाद पुट्टपर्ति में लोगों के इलाज के लिए बनायी गयी व्यवस्था से बेहद प्रभावित हुए। पुट्टपर्ति के अस्पताल में अनुभवी और क़ाबिल डॉक्टर तो थे ही, वहाँ आधुनिक उपकरण भी मौजूद थे। बीमारियों का पता लगाने के लिए की जाने वाली जाँच के लिए अत्याधुनिक उपकरण मौजूद थे। मरीज़ के इलाज से जुड़ा हर काम व्यवस्थित तरीक़े से होता था।

जो कोई डॉक्टर या सर्जन मरीज़ों की सेवा करने के मक़सद से पुट्टपर्ति आता था, सत्य साईं के भक्त उसका पूरा ख़याल रखते थे। पुट्टपर्ति पहुँचने के बाद किसी भी डॉक्टर को अपनी जेब से एक रुपया निकालने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। खाने-पीने, रहने का सारा इंतज़ाम सत्य साईं की संस्था करती थी। डॉक्टरों को पुट्टपर्ति में बहुत सम्मान मिलता था।

जब भी श्यामा प्रसाद अपने पुट्टपर्ति दौरे की तारीख़ें तय करते, उनके पहुँचने से पहले ही ऑपरेशन के लिए मरीज़ों की पहचान कर ली जाती। साथ ही इन मरीज़ों के ऑपरेशन की तैयारी भी पूरी हो जाती। श्यामा प्रसाद वहाँ पहुँचते ही सबसे पहले मरीज़ की हिस्ट्री शीट पढ़ते, बीमारी के बारे में जानकारी हासिल करते और मरीज़ की जाँच करने के बाद ऑपरेशन शुरू कर देते। श्यामा प्रसाद सुबह सात बजे ऑपरेशन करना शुरू करते। एक के बाद एक कर कई मरीज़ों का ऑपरेशन किया जाता। रात सात बजे उस दिन की आख़िरी सर्जरी पूरी होती। अमूमन श्यामा प्रसाद अपने हर दौरे में तीन दिन ऑपरेशन करते। इन तीन दिनों में वे कम से कम पचास ऑपरेशन पूरे किया करते। सत्य साईं के अस्पताल में सभी डॉक्टर और तकनीशियन यह मानने लगे थे कि श्यामा प्रसाद के हाथों में शिफ़ा है। वे जिस किसी पर सर्जरी करते हैं, वह मरीज़ बीमारी से मुक्त हो जाता है। श्यामा प्रसाद के सभी ऑपरेशन हमेशा कामयाब रहे।

श्यामा प्रसाद ने हमेशा इस कामयाबी का सारा श्रेय सत्य साईं को दिया। वे मानते थे कि भगवान ने उन्हें कामयाब ऑपरेशन करने की ताक़त दी है। सत्य साईं उनसे सारे काम करवा रहे हैं।

यह समय ऐसा था, जब श्यामा प्रसाद की प्रविक्ति आध्यात्मिक हो गयी। उन्हें लगा कि सारा काम सत्य साईं करवाते हैं।

श्यामा प्रसाद अनन्य भाव से सत्य साईं से प्रेम करने लगे। उनकी उपासना करने लगे। यह मानने लगे कि सत्य साईं उनके योग-क्षेम का ख़याल रखेंगे।

सत्य साईं की एक बात को श्यामा प्रसाद ने पूरी तरह से आचरण में लाना शुरू कर दिया था। सत्य साईं कहा करते थे कि एमडी का मतलब सिर्फ़ 'डॉक्टर ऑफ़ मेडिसिन' होना नहीं है। एक एमडी को 'मास्टर ऑफ़ डिवोशन' यानी 'समर्पण-भाव का नायक' होना चाहिए। इसी तरह एमएस का मतलब सिर्फ़ 'मास्टर इन सर्जरी' नहीं, बल्कि 'मास्टर इन सेल्फलेस सर्जरी' है। यानी, हर सर्जन को निःस्वार्थ भाव से लोगों की सेवा करनी चाहिए। यही वजह थी कि श्यामा प्रसाद मौक़ा मिलते ही पुट्टपर्ति पहुँच जाते और मरीज़ों की सर्जरी किया करते।

सत्य साईं की एक और बात को श्यामा प्रसाद ने अपने मन-मस्तिष्क में गाँठ बाँधकर बिठा लिया था। श्यामा प्रसाद के भगवान कहा करते थे, इन्सान का स्वास्थ्य पाँच चीज़ों पर निर्भर करता है। ये पाँच चीज़ें हैं - आहार, विहार, आचार, उच्चार और विचार। आहार से तात्पर्य भोजन है। विहार से तात्पर्य इन्सान के काम हैं। आचार से तात्पर्य इन्सान का आचरण है। उच्चार से तात्पर्य उसकी बोली और भाषा है। विचार से तात्पर्य वे विचार हैं, जिनके प्रभाव में इन्सान काम करता है। इन पाँचों चीज़ों के शुद्ध होने पर इन्सान सुखी जीवन व्यतीत करता है।" श्यामा प्रसाद इस बात का प्रचार करने लगे।

एक बार की बात है। श्यामा प्रसाद किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में ड्यूटी पर थे। एक सोलह साल की लड़की को अस्पताल लाया गया। परिजनों ने श्यामा प्रसाद को बताया कि लड़की ने तेज़ाब पी ली है। जाँच के दौरान श्यामा प्रसाद ने पाया कि लड़की की हालत काफ़ी गंभीर है। एसिड पीने की वजह से उसका मुँह ख़राब हो गया है। आंतरिक अंगों — भोजन नली, पेट और आँत पर भी एसिड ने बुरा असर

डाला है। जान बचाने के मक़सद से श्यामा प्रसाद ने लड़की का इलाज शुरू किया। चूँकि मरीज़ मुँह से कुछ खा-पी नहीं सकती थी, उसके लिए 'टोटल पैरेंट्रल न्यूट्रिशन' की व्यवस्था की गयी। टोटल पैरेंट्रल न्यूट्रिशन में नसों के माध्यम से शरीर में आहार पहुँचाया जाता है। टोटल पैरेंट्रल न्यूट्रिशन की वजह से मरीज़ के शरीर में ताक़त बनी रहती है। शरीर में रोग-निरोधक क्षमता को बनाये रखने के लिए पोषण देना ज़रूरी होता है। लेकिन एसिड की वजह से मरीज़ का गैस्ट्रोइन्टेस्टनल ट्रैक्ट यानी जठरांत्र पथ ख़राब हो गया था। पाचन-तंत्र बिगड़ गया था। इस तंत्र को सुधारने के लिए सर्जरी के सिवाय कोई दूसरा उपाय नहीं था। लेकिन सर्जरी भी आसान नहीं थी। बेहद जटिल प्रक्रिया थी। ऐसे मामलों में अक्सर मरीज़ की जान चली जाती है। लेकिन श्यामा प्रसाद ने अपनी टीम के साथ मिलकर मरीज़ की जान बचाने की कोशिश शुरू की। श्यामा प्रसाद की टीम में पीजी कोर्स के विद्यार्थी भी थे। ये विद्यार्थी भी चाहते थे कि श्यामा प्रसाद सर्जरी करें और मरीज़ की जान बचाएँ। लेकिन यह बात पीजी के विद्यार्थियों को मालूम नहीं थी कि सर्जरी आसान नहीं है। सर्जरी के दौरान कई सारे ख़तरे थे। सर्जरी की शुरुआत में ही मरीज़ की जान जा सकती थी। एसिड ने पूरे भोजन-तंत्र और पाचन-क्रिया को बिगाड़ दिया था। श्यामा प्रसाद के मन में कई तरह की शंकाएँ थीं। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। अगर सर्जरी नहीं की जाती, तब भी जान जाने का ख़तरा था। सर्जरी न होने की स्थिति में जान कभी भी जा सकती थी। श्यामा प्रसाद जानते थे कि जान बचाने का एक मात्र उपाय सर्जरी है। वे दुविधा में थे। इस विकट स्थिति से उबारने के लिए उन्होंने सत्य साईं को याद किया। सत्य साईं का स्मरण करते हुए उन्हें ऐसा लगा कि भगवान उन्हें संदेश दे रहे हैं। श्यामा प्रसाद को लगा कि सत्य साईं ने सर्जरी करने का आदेश दिया है। सत्य साईं का संदेश है कि मरीज़ की जान बचाने के लिए श्यामा प्रसाद को सर्जरी करनी चाहिए। सर्जरी कामयाब होगी।

सत्य साईं के भरोसे श्यामा प्रसाद ने सर्जरी शुरू की। पहले जले हुए मुँह को साफ़ किया। चूँकि भोजन-नली जलकर सिकुड़ गयी थी, उसे बदला गया। मरीज़ की भोजन-नली और पेट दोनों ख़राब हो गये थे, इस वजह से आँत को ऊपर तक जोड़ा गया। सर्जरी कामयाब रही। श्यामा प्रसाद ने सत्य साईं का शुक्रिया अदा किया। उन्हें ऐसा लगा कि सत्य साईं ख़ुद ऑपरेशन थिएटर में मौजूद हैं और वे

ही सर्जरी करवा रहे हैं। अगर सत्य साईं का भरोसा न मिला होता, तो शायद श्यामा प्रसाद यह सर्जरी नहीं कर पाते।

सर्जरी कामयाब होने की वजह से मरीज़ जल्द ठीक हो गयी। जो लड़की पानी पीने में अक्षम थी, वह सर्जरी की वजह से भोजन करने लगी थी।

इस सर्जरी के बाद श्यामा प्रसाद का सत्य साईं पर भरोसा और भी बढ़ गया। उन्होंने ख़ुद को सत्य साईं के प्रति पूरी तरह समर्पित कर दिया।

श्यामा प्रसाद ने एक नियम बना लिया। सर्जरी करने से पहले वे सत्य साईं को याद करते। उनका नाम जपने के बाद ही सर्जरी शुरू करते। वे यह मानने लगे कि वे जब भी सर्जरी करते हैं, तब सत्य साईं वहाँ मौजूद होते हैं। सत्य साईं ही सर्जरी करवाते हैं।

श्यामा प्रसाद ने एक और नियम बना लिया था। कोई भी जटिल ऑपरेशन होता, तो वे उसे गुरुवार के दिन करते। गुरुवार के दिन श्यामा प्रसाद सत्य साईं की विशेष पूजा करते। वे यह दिन सत्य साईं को समर्पित करते। उनका विश्वास था कि सत्य साईं उन्हें कभी विफल होने नहीं देंगे। गुरुवार को वे अपने गुरु और भगवान, सत्य साईं का दिन मानते थे। इसी वजह से जटिल ऑपरेशन गुरुवार के दिन करने लगे।

श्यामा प्रसाद ने छह साल तक तक किंग जॉर्ज हॉस्पिटल के जनरल सर्जरी विभाग में काम किया।

इसी दौरान साल 1994 में श्यामा प्रसाद के पिता सुंदरय्या ने बहुजन समाज पार्टी के टिकट पर विशाखपट्नम से विधानसभा का चुनाव लड़ा, लेकिन उनकी जमानत ज़ब्त हो गयी। इससे पहले वे प्रत्तिपाडु से चुनाव लड़ चुके थे। अलग-अलग चुनावों में मिली हार से सुंदरय्या निराश हुए। लेकिन उनकी हिम्मत नहीं टूटी। वे राजनीति में सक्रिय रहे। दलितों और पिछड़ी जाति के लोगों के अधिकारों के लिए संघर्ष करते रहे। इंसाफ़ के लिए उनके आंदोलन जारी रहे।

लेकिन जब सुंदरय्या को मुलायम सिंह यादव से मिलने का मौक़ा मिला, तब उन्हें लगा कि समाजवादी पार्टी उनकी अपनी पार्टी है। मुलायम सिंह के कहने पर सुंदरय्या ने बहुजन समाज पार्टी से इस्तीफ़ा दे दिया और समाजवादी पार्टी की सदस्यता ले ली। मुलायम सिंह यादव ने आंध्रप्रदेश में समाजवादी पार्टी को मजबूत

करने की ज़िम्मेदारी सुंदरय्या को सौंपी। सुंदरय्या ने जिस तरह से काम किया, उससे मुलायम सिंह बहुत प्रभावित हुए। पहली मुलाक़ात के कुछ महीनों बाद सुंदरय्या मुलायम सिंह के बेहद क़रीबी हो गये।

1999 में श्यामा प्रसाद का तबादला काकिनाडा के रंगराया मेडिकल कॉलेज में हो गया। रंगराया मेडिकल कॉलेज आंध्रप्रदेश का पहला प्राइवेट मेडिकल कॉलेज था, लेकिन बाद में इसका प्रबंधन राज्य सरकार के हाथों आ गया। क़रीब एक साल तक इस कॉलेज में प्रोफ़ेसर की ज़िम्मेदारी निभाने के बाद वे फिर से विशाखपट्नम आ गये। साल 2001 में उन्हें किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में 'प्रोफ़ेसर ऑफ़ सर्जरी' नियुक्त किया गया। प्रोफ़ेसर के नाते श्यामा प्रसाद ने यहाँ चौथी यूनिट में अपनी सेवाएँ देनी शुरू कीं। इसी साल उनकी पत्नी को स्कूल हेल्थ क्लीनिक में नयी ज़िम्मेदारी सौंपी गयी। 2004 तक लक्ष्मी राज्यम ने इसी क्लीनिक में जन-सेवा की। 2004 में उन्हें किंग जॉर्ज हॉस्पिटल के कार्डियोलॉजी डिपार्टमेंट में ट्यूटर नियुक्त किया गया।

साल 2005 में श्यामा प्रसाद के पिता सुंदरय्या की तबीयत अचानक बिगड़ गयी। हालत इतनी ख़राब हुई कि उन्हें वेंटिलेटर पर रखना पड़ा। हैदराबाद के केयर हॉस्पिटल में इलाज शुरू होने के कुछ दिनों बाद सुंदरय्या की हालत में सुधार हुआ। लेकिन उनमें इतनी ताक़त नहीं थी, वे राजनीतिक रूप से सक्रिय रह सकें। यहाँ से राजनीतिक गतिविधियाँ नेताओं से मुलाक़ातों तक सीमित रहीं।

2006 में श्यामा प्रसाद को पदोन्नति मिली और वे सर्जरी डिपार्टमेंट के मुखिया बन गये। 2012 में श्यामा प्रसाद किंग जॉर्ज हॉस्पिटल के मेडिकल सूपरिन्टेन्डन्ट बनाये गये। सर्जरी डिपार्टमेंट के मुखिया और मेडिकल सूपरिन्टेन्डन्ट के रूप में अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए श्यामा प्रसाद ने कई क्रांतिकारी क़दम उठाये। मरीज़ों को सस्ती दवाइयाँ उपलब्ध करवाने के मक़सद से श्यामा प्रसाद ने 'जीवनधारा' योजना शुरू की। इस योजना के तहत अस्पताल परिसर में मरीज़ों को जेनेरिक दवाएँ बेची जाने लगीं। जेनेरिक दवाएँ ब्रांडेड दवाओं की तुलना में बहुत सस्ती होती हैं। ब्रांडेड दवा और जेनेरिक दवा की कीमतों में 200 गुना तक का अंतर रहता है। जेनेरिक दवा, जिसे सामान्य दवा भी कहा जाता है, ऐसी दवा है जो बिना किसी पेटेंट के बनायी और वितरित की जाती है। जेनेरिक दवा के फॉर्मुलेशन पर पेटेंट हो सकता है, लेकिन उसके सक्रिय घटक पर पेटेंट नहीं होता। जेनेरिक दवाईयाँ गुणवत्ता में

किसी भी प्रकार की ब्रांडेड दवाईयों से कम नहीं होतीं। जेनेरिक दवाईयाँ उतनी ही असरदार और प्रभावी होती हैं, जितनी की ब्रांडेड दवाईयाँ। तत्कालीन ज़िला कलेक्टर श्यामल राव ने 'जीवनधारा' योजना को शुरू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस योजना के शुरू होने से ग़रीब मरीज़ों को बहुत फ़ायदा मिला। दवाइयों पर उनका ख़र्च कम हुआ। 'जीवनधारा' की कामयाबी की कहानी दूर-दूर तक पहुँची। कई सरकारी अस्पतालों में इसी तरह की योजना शुरू की गयी और लोगों के लिए जेनेरिक दवाईयाँ उपलब्ध करायी जाने लगीं।

श्यामा प्रसाद ने ग़ौर किया कि किंग जॉर्ज अस्पताल में इलाज के लिए आने वाले मरीज़ों के परिजनों को भी कई तरह की तकलीफ़ों का सामना करना पड़ता है। चूँकि ज़्यादातर लोग ग़रीब होते हैं, उनके पास कैंटीन या फिर किसी होटल में भोजन करने के लिए रुपये नहीं होते। मरीज़ों और उनके परिजनों को सस्ते दाम पर भोजन उपलब्ध करवाने के इरादे से श्यामा प्रसाद ने 'सुभोजनम' योजना शुरू करवायी। यह योजना 'अक्षय पात्र' नाम से चलने वाली एक मशहूर ग़ैर-सरकारी संस्था की मदद से शुरू की गयी। 'अक्षय पात्र' बारह राज्यों और दो केंद्र शासित प्रदेशों के स्कूलों के बच्चों को भोजन प्रदान करती है। इस संस्था को राज्य सरकारों से अनुदान मिलता है। इतना ही नहीं, कई लोग चंदा भी देते हैं। साल 2000 में इंटरनेशनल सोसाइटी फॉर कृष्णा कॉन्शसनेस की बेंगलुरु शाखा ने 'अक्षय पात्र' की शुरुआत की थी। 'अक्षय पात्र' ने किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में हर दिन कम कीमत पर लोगों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध करवाना शुरू किया।

श्यामा प्रसाद यही नहीं रुके। उन्होंने 'रोगी मित्र' नाम से एक अनोखी योजना की शुरुआत की। इस योजना के तहत 30 युवाओं को चुना गया। इन युवाओं को अस्पताल आने वाले मरीज़ों और उनके परिजनों की मदद करने की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी। श्यामा प्रसाद जानते थे कि सरकारी अस्पताल आने वाले कई मरीज़ और उनके परिजन अशिक्षित होते हैं। इन लोगों को यह पता नहीं होता कि किसी बीमारी का इलाज कहाँ होता है। कौन-सा डॉक्टर किस बीमारी का इलाज करता है। मरीज़ों और उनके परिजनों को हर मुमकिन मदद करने के लिए किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में 'रोगी मित्र' नियुक्त किये गये। 'सुभोजनम' और 'रोगी मित्र' योजनाओं को देश के कई अस्पतालों में लागू किया जाने लगा।

किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में सुपर स्पेशलिटी ब्लॉक बनकर तैयार था। लेकिन कई कारणों से इसमें मरीज़ों का इलाज नहीं हो रहा था। मेडिकल सूपरिन्टेन्डन्ट बनते ही श्यामा प्रसाद ने इस नये भवन का पूरा लाभ उठाने का फ़ैसला लिया। कार्यवाही करते हुए श्यामा प्रसाद ने नये भवन में सारे उपकरण लगवाये। ऑपरेशन थिएटर चालू करवाये। चिकित्साओं को उनके कक्ष आवंटित किये। इस नये भवन की शुरुआत के बाद अस्पताल में चिकित्सा-व्यवस्था और भी मजबूत हुई। क़रीब चार साल से यह भवन खाली पड़ा था और किसी का ध्यान इसके सदुपयोग पर नहीं गया था।

श्यामा प्रसाद ने अस्पताल प्रबंधन से जुड़े सभी कार्यों का कम्प्यूटरीकरण भी करवाया। सभी रिकॉर्ड कम्प्युटर की मेमरी में सुरक्षित करवा दिये गये। सभी की सुरक्षा सुनिश्चित करने के मक़सद से इलेक्ट्रॉनिक निगरानी प्रणाली स्थापित की। महत्वपूर्ण स्थानों पर क्लोज़्ड सर्किट टेलीविज़न यानी सीसीटीवी कैमरे लगवा दिये। यातायात-व्यवस्था को मजबूत किया। अलग-अलग सरकारी संस्थाओं विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की मदद से किंग जॉर्ज हॉस्पिटल में विकास-कार्यों को आगे बढ़ाया।

साल 2015 में श्यामा प्रसाद सरकारी-सेवा से रिटायर हो गये। सरकारी सेवा के दौरान श्यामा प्रसाद ने लाखों मरीज़ों का इलाज किया। कई सर्जरियाँ की और लोगों को बीमारियों से मुक्त किया। कई लोगों की जान बचायी। कई मेडिकल विद्यार्थियों को सर्जरी की प्रक्रिया सिखायी और उन्हें भी कामयाब सर्जन बनाया। देश के अलग-अलग हिस्सों में हुई कार्यशालाओं, गोष्ठियों और संगोष्ठियों में हिस्सा लिया। अलग-अलग चिकित्सकों और सर्जनों के साथ अपने अनुभव साझा किये। प्रशासनिक ज़िम्मेदारियाँ निभायीं। लोगों को जागरूक किया। कई लोगों को समाज-सेवा के लिए प्रेरित किया। ज़रूरतमंद लोगों की हर मुमकिन मदद की।

रिटायरमेंट के बाद भी श्यामा प्रसाद ने मेडिकल कॉलेजों और अस्पतालों में अपनी सेवाएँ जारी रखीं। 2013 में विजयनगरम ज़िले के महाराजा इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल साइंसेस में मेडिकल सूपरिन्टेन्डन्ट नियुक्त हुए। तीन साल तक यहाँ काम करने के बाद श्यामा प्रसाद दुबारा विशाखपट्नम आ गये। फिर वे एनआरआई इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल साइंसेज से जुड़ गये। यहाँ क़रीब तीन साल काम करने के बाद वे गीतम इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल साइंसेज एंड रिसर्च के लिए अपनी सेवाएँ

देने लगे। यहाँ भी श्यामा प्रसाद ने मेडिकल सूपरिन्टेन्डन्ट की ज़िम्मेदारियाँ निभायीं। जनवरी 2020 में आंध्रप्रदेश सरकार ने उन्हें डॉ. एन. टी. आर. आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया।

साल 2015 में सुंदरय्या को 'अल्जाइमर रोग' हो गया। उनकी याददाश्त कमज़ोर होने लगी। इस वजह से सुंदरय्या ने ख़ुद को घर तक सीमित कर लिया।

श्यामा प्रसाद की पत्नी लक्ष्मी राज्यम किंग जॉर्ज हॉस्पिटल के कार्डियोलॉजी डिपार्टमेंट में ट्यूटर के पद से सेवा-निवृत्त हुईं। चूँकि डिपार्टमेंट में एक अनुभवी ट्यूटर की ज़रूरत थी, अस्पताल प्रबंधन ने लक्ष्मी राज्यम की सेवाएँ एक कंसल्टेंट ट्यूटर के नाते लेने का फ़ैसला किया। रिटायरमेंट के बाद भी लक्ष्मी राज्यम हॉस्पिटल में काम करती रहीं।

अध्याय 10

भाई, बहनें, बेटा-बेटी ... सभी बने डॉक्टर, कुलपति बन मेडिकल शिक्षा-व्यवस्था को किया मजबूत

श्यामा प्रसाद के लड़के सिद्धार्थ की पढ़ाई पहले ननिहाल में हुई। ओंगोल शहर के मशहूर ओंगोल पब्लिक स्कूल में सिद्धार्थ ने छठी कक्षा तक की पढ़ाई की। इस दौरान उनका लालन-पालन नाना-नानी ने किया। श्यामा प्रसाद जब विशाखपट्नम में जम गये, तब उन्होंने अपने बेटे को अपने पास बुला लिया। सिद्धार्थ का दाख़िला सेंट फ्रांसिस डी सेल्स इंग्लिश मीडियम स्कूल में करवाया गया। एसएफएस स्कूल के नाम से मशहूर इस विद्यालय को 1974 में शुरू किया गया था। मिशनरीज़ ऑफ़ सेंट फ्रांसिस डी सेल्स ने इस स्कूल की स्थापना की थी। सिद्धार्थ ने दसवीं तक की पढ़ाई यहीं से की। दसवीं पास करने के बाद सिद्धार्थ ने भी अपने दादा और पिता की तरह डॉक्टर बनने की सोची। इसी वजह से उन्होंने इंटरमीडिएट में बीपीसी ग्रुप में दाख़िला लिया। इंटरमीडिएट की पढ़ाई पूरी करने के बाद सिद्धार्थ ने मेडिकल कॉलेजों में दाख़िले के लिए होने वाली प्रवेश-परीक्षा लिखी। उन दिनों यह परीक्षा एमसेट यानी इंजीनियरिंग, ऐग्रिकल्चरल एंड मेडिकल कॉमन एंट्रेंस एग्ज़ाम कहलाती थी। पहले साल प्रवेश-परीक्षा में सिद्धार्थ को उतनी अच्छी रैंक नहीं मिली, जितनी कि उम्मीद थी। दूसरे साल भी वे मेडिकल कॉलेज में सीट हासिल नहीं कर पाये। दूसरे अटेम्प्ट में सिद्धार्थ मेडिकल सीट के हक़दार बन गये थे, लेकिन उस साल

आंध्रप्रदेश हेल्थ यूनिवर्सिटी ने आरक्षण-नियम को सही तरह से लागू नहीं किया। अगर यूनिवर्सिटी ने ऐसा किया होता, तो सिद्धार्थ को नारायण मेडिकल कॉलेज में सीट मिल जाती। यूनिवर्सिटी की ग़लती से नाराज़ श्यामा प्रसाद ने आंध्रप्रदेश हाई कोर्ट का दरवाज़ा खटखटाया। फ़ैसला सिद्धार्थ के पक्ष में आया। लेकिन हाई कोर्ट के फ़ैसले को यूनिवर्सिटी ने सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दे डाली। सुप्रीम कोर्ट के चक्कर काटने के बजाय श्यामा प्रसाद ने सिद्धार्थ को अगले साल की परीक्षा की तैयारी करने को कहा। श्यामा प्रसाद ने अपने बेटे को 'स्पेशल कोचिंग' के लिए गुंटूर भेज दिया। पिता की सलाह मानते हुए सिद्धार्थ ने गुंटूर में मेडिकल एंट्रेंस एग्ज़ाम के लिए तगड़ी तैयारी की। तीसरे अटेम्प्ट में उन्हें सीट मिल गयी। साल 2000 में सिद्धार्थ ने नेल्लूर के नारायण मेडिकल कॉलेज में एमबीबीएस की पढ़ाई शुरू की। सिद्धार्थ को फिज़ियोलॉजी और आप्थोमालॉजी की परीक्षाओं में सबसे ज़्यादा नंबर मिले, जिसकी वजह से वे दो स्वर्ण पदकों के हक़दार बने। साल 2006 में सिद्धार्थ ने एमबीबीएस की डिग्री हासिल की।

एमबीबीएस की डिग्री लेने के बाद ज़्यादातर लोग पीजी कोर्स करते हैं। जिन्हें सर्जरी में दिलचस्पी होती है, वे सर्जिकल कोर्स करते हैं। जिन डॉक्टरों को क्लिनिकल पद्धति से इलाज करने में दिलचस्पी होती है, वे क्लिनिकल कोर्स करते हैं। एमबीबीएस कोर्स में दाख़िले के लिए जितनी तगड़ी प्रतिस्पर्धा होती है, उससे ज़्यादा प्रतिस्पर्धा पीजी कोर्स में सीट पाने के लिए होती है। मेडिकल पीजी कोर्स में सीट पाना आसान नहीं होता। देश-भर के अलग-अलग मेडिकल कॉलेजों में पीजी कोर्स के लिए क़रीब पचास हज़ार सीटें हैं। इन सीटों के लिए हर साल क़रीब 1.75 लाख डॉक्टर आवेदन करते हैं। पीजी कोर्स के लिए होने वाली प्रवेश-परीक्षा में मिले रैंक के आधार पर सीट मिलती है।

सरकारी और निजी मेडिकल कॉलेजों में पीजी कोर्स चलाये जाते हैं। एमबीबीएस की तरह पीजी कोर्स के लिए सरकारी मेडिकल कॉलेजों में सारी सीटों पर भर्ती प्रवेश-परीक्षा में मिले रैंक के आधार पर की जाती है। निजी मेडिकल कॉलेजों में 50 फ़ीसदी सीटें मैनेजमेंट कोटा की होती हैं। इन सीटों के लिए बहुत बड़ी रक़म अदा करनी होती है। कई जगह तो एक से दो करोड़ रुपये देकर पीजी सीट हासिल की जाती है।

सिद्धार्थ को जिस तरह का रैंक मिला था, उससे उन्हें सरकारी कोटा की सीट मिलने की संभावना न के बराबर थी। मैनेजमेंट कोटा में सीट मिलने की संभावना थी, बशर्ते डेढ़ करोड़ रुपये का 'डोनेशन' मैनेजमेंट को दिया जाए। श्यामा प्रसाद चाहते थे कि उनका लड़का हर हाल में पीजी सीट पाये। इस मक़सद से उन्होंने 'डोनेशन' के लिए राशि जुटानी शुरू की। सारी जमा राशि निकाल ली। इसके बावजूद राशि कम पड़ रही थी। श्यामा प्रसाद ने जेवरात बेचने की सोची। लेकिन परिवारवालों ने इसका विरोध किया। इस बार भी वे सत्य साईं की शरण में गये। एक बार फिर 'चमत्कार' हुआ। कॉलेज प्रबंधन ने डोनेशन की राशि घटाकर एक करोड़ रुपये कर दी। कुछ साथी श्यामा प्रसाद की मदद करने के लिए आगे आये। 'डोनेशन' की राशि जमा हो गयी। सिद्धार्थ का दाख़िला गन्नवरम के पिन्नमनेनि सिद्धार्थ मेडिकल कॉलेज में हो गया। उन्हें भी अपने दादा सुंदरय्या की तरह ओर्थोपेडिक्स में 'मास्टर इन सर्जरी' कोर्स करने का मौक़ा मिला।

इस तरह की घटनों को श्यामा प्रसाद ने हमेशा 'चमत्कार' माना। उन्हें लगा कि जब भी उनकी ज़िंदगी की गाड़ी कहीं रुक गयी, तब सत्य साईं ने उसमें ईंधन भरा और गाड़ी दुबारा आगे बढ़ने लगी। सत्य साईं ने जीवन की सारी उलझनों को दूर किया। बेड़ा पार लगाया। जीवन को सुखमय बनाया।

2009 से 2011 तक सिद्धार्थ ने पीजी कोर्स की पढ़ाई की। तीन साल की मेहनत के बाद उन्हें एमएस (ओर्थोपेडिक्स) की डिग्री हासिल हुई। सिद्धार्थ सर्वश्रेष्ठ आउटगोइंग ऑर्थोपेडिक पोस्ट ग्रेजुएट बने और उन्हें एनटीआर यूनिवर्सिटी ऑफ़ हेल्थ साइंसेज ने प्रतिष्ठित प्रो. एथिराजुलु गोल्ड मेडल प्रदान किया। इसके बाद सिद्धार्थ ने तमिलनाडु के कोयंबटूर के गंगा हॉस्पिटल से अंग पुनर्गठन सर्जरी में फेलोशिप की। 2013 से वे विशाखपट्नम के किम्स आइकॉन सुपर स्पेशलिटी हॉस्पिटल में मरीज़ों का इलाज कर रहे हैं।

उधर, बेटी सुमा हमेशा अपने माता-पिता के साथ रहीं। उनकी स्कूली शिक्षा विशाखा वैली स्कूल में हुई। इस स्कूल की स्थापना 1968 में तत्कालीन ज़िला कलेक्टर आबिद हुसैन ने की थी। बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के मक़सद से वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी आबिद हुसैन ने इस स्कूल की परिकल्पना की थी। सुमा हमेशा पढ़ाई-लिखाई में तेज़ रहीं। हर परीक्षा शानदार नंबरों से पास

की। सुमा भी अपने दादा और पिता की कामयाबियों से बहुत प्रभावित थीं। इसी प्रभाव में उन्होंने भी डॉक्टर बनने का फ़ैसला लिया। इंटरमीडिएट की परीक्षा में भी सुमा को शानदार नंबर मिले। लेकिन उन्हें मेडिकल एंट्रेंस एग्ज़ाम में उतना अच्छा रैंक नहीं मिला, जितना कि सभी उम्मीद कर रहे थे। बेटी ने परीक्षा की तैयारी में कोई कमी नहीं छोड़ी थी। मेहनत की थी। मन लगाकर पढ़ाई की थी। इंटर की परीक्षाओं में जिस तरह के नंबर मिले थे, उन्हें देखकर श्यामा प्रसाद को विश्वास हो गया था कि बेटी को आसानी से मेडिकल कॉलेज में सीट मिल जाएगी। लेकिन रैंक कम मिलने की वजह से सीट सुनिश्चित नहीं थी। श्यामा प्रसाद नहीं चाहते थे कि बेटी निराश हो। उसका आत्मविश्वास लड़खड़ाये। सुमा संकल्प ले चुकी थीं कि वे अपने माता-पिता और भाई की तरह डॉक्टर बनेंगी। श्यामा प्रसाद जानते थे कि अगर इस साल मेडिकल कॉलेज में सीट नहीं मिली, तब सुमा अगले साल दुबारा मेडिकल एंट्रेंस एग्ज़ाम देंगी। लेकिन इसके लिए सुमा का एक साल बेकार चला जाता। उन्हें साल-भर सिर्फ़ मेडिकल टेस्ट की तैयारी करनी पड़ती।

एमबीबीएस कोर्स में दाख़िले के लिए श्यामा प्रसाद ने सुमा से कई मेडिकल कॉलेजों में आवेदन करवा दिया। उन्हें सीट मिलने का भरोसा नहीं था, लेकिन एक उम्मीद थी कि शायद किसी कॉलेज में सीट मिल जाएगी। जिस तरह का रैंक मिला था, उससे सरकारी मेडिकल कॉलेजों में सीट मिलने की कोई संभावना नहीं थी। सीट किसी निजी मेडिकल कॉलेज में मिल सकती थी, वह भी मैनेजमेंट कोटा में। आवेदन करने के कुछ दिनों में सभी मेडिकल कॉलेजों में सीटें भरने लगीं। सुमा को किसी भी कॉलेज में सीट मिलती नहीं दिखाई दी। सुमा को लगा कि इस साल उन्हें सीट नहीं मिलेगी, लेकिन श्यामा प्रसाद ने उम्मीद नहीं छोड़ी।

जब भी श्यामा प्रसाद किसी परेशानी में पड़ते थे, वे सत्य साईं को याद करते। इस बार भी श्यामा प्रसाद ने सत्य साईं से प्रार्थना की। प्रार्थना सिर्फ़ एक थी। बेटी सुमा को किसी मेडिकल कॉलेज में सीट मिल जाए और उनका एक साल व्यर्थ न हो।

इसी दौरान सभी कॉलेजों में भर्ती-प्रक्रिया पूरी हो गयी। सिर्फ़ एक कॉलेज में एक सीट खाली रही। पश्चिम गोदावरी ज़िले के एलुरु के आश्रम मेडिकल कॉलेज में मैनेजमेंट कोटा की एक सीट खाली रह गयी। जब किसी भी आवेदक ने सीट

नहीं ली, तब यह सीट सुमा को देने की पेशकश की गयी। सीट की पेशकश मिलते ही श्यामा प्रसाद ख़ुशी से झूम उठे। उन्हें यक़ीन हो गया कि सत्य साईं ने उनकी प्रार्थना सुन ली है। उनके इष्ट देव ने एक बार फिर 'चमत्कार' किया है।

आमतौर पर मेडिकल कॉलेज में एमबीबीएस कोर्स की भर्ती-प्रक्रिया जल्द पूरी हो जाती है। सरकारी मेडिकल कॉलेजों की सीटें पहले भर जाती हैं। निजी कॉलेजों में सरकारी कोटे की सीटों की भर्ती में भी ज़्यादा समय नहीं लगता है। मैनेजमेंट कोटा की सीटों में थोड़ा ज़्यादा समय लगता है, लेकिन कुछ दिनों में सारी सीटों भर जाती हैं।

सरकारी मेडिकल कॉलेज में सिर्फ़ एक श्रेणी की सीटें होती हैं। मेडिकल एंट्रेंस एग्ज़ाम में मिले रैंक के आधार पर सरकारी कॉलेजों में दाख़िला दिया जाता है। दाख़िला-प्रक्रिया के दौरान आरक्षण-नियम लागू होता है। शीर्ष रैंक पाने वाले विद्यार्थियों को सरकारी मेडिकल कॉलेज में सीट मिलती है।

निजी मेडिकल कॉलेजों में 50 फ़ीसदी सीटें सरकारी कोटे की होती हैं। इन सीटों की भर्ती-प्रक्रिया भी रैंक के आधार पर होती है। इन पचास फ़ीसदी सीटों के लिए चुने गये विद्यार्थियों की शिक्षा का सारा ख़र्च सरकार वहन करती है। निजी मेडिकल कॉलेजों में बाक़ी 50 फ़ीसदी सीटें मैनेजमेंट कोटे की होती हैं। यहाँ भी भर्ती-प्रक्रिया रैंक के आधार पर ही होती है। लेकिन मैनेजमेंट कोटे की सीट के लिए फ़ीस लाखों में होती है। उन दिनों फ़ीस को लेकर कोई ठोस क़ानून न होने की वजह से निजी कॉलेजों में मनचाही फ़ीस वसूली जाती थी। कई लोग लाखों रुपये देकर सीट हासिल करने को तैयार रहते थे। इसी वजह से दूसरे विद्यार्थियों की तुलना में बेहतर रैंक होने के बावजूद कई लोग भारी-भरकम फ़ीस की वजह से सीट नहीं ले पाते थे। फ़ीस लाखों में होने के बावजूद मैनेजमेंट कोटे की सीटें भी जल्द भर जाती थीं। उस साल आश्रम मेडिकल कॉलेज की एक सीट को छोड़कर राज्य-भर के सभी कॉलेजों में सीटें भर गयी थीं। श्यामा प्रसाद को लगा कि सत्य साईं ने उनकी गुहार सुन ली और बेटी सुमा के लिए यह सीट बचाये रखी। आश्रम मेडिकल कॉलेज में सीट सुनिश्चित होते ही श्यामा प्रसाद को लगा कि सत्य साईं उनके पालनहार हैं। जीवन के हर संकट को सत्य साईं ही दूर कर सकते हैं।

आश्रम मेडिकल कॉलेज की स्थापना जाने-माने उद्योगपति गोकराजू गंगराजू

ने की थी। पश्चिम गोदावरी ज़िले में मेडिकल शिक्षा को बढ़ावा देने और उन्नत स्तरीय चिकित्सा सुविधा मुहैया करवाने के मक़सद से गोकराजू गंगराजू ने साल 1998 में 'एकेडमी ऑफ़ मेडिकल साइंसेस' की स्थापना की। इस संस्थान का नाम मशहूर स्वतंत्रता-सेनानी अल्लूरि सीतारामराजू के नाम पर रखा गया। 1999 में मेडिकल कॉलेज और अस्पताल की स्थापना हुई। मेडिकल काउंसिल ऑफ़ इंडिया ने 100 एमबीबीएस सीटों की अनुमति दी। साल 2003 में जब सुमा ने आवेदन किया था, तब सिर्फ़ एक सीट खाली रह गयी थी। लोग मुँहबोली रक़म लेकर सीट हासिल कर लिया करते थे, लेकिन उन साल अनपेक्षित ढंग से एक सीट खाली रह गयी थी, जो कि सुमा को मिली।

एमबीबीएस कोर्स में दाख़िला लेने के बाद सुमा ने मन लगाकर पढ़ाई शुरू की। वे जानती थीं कि मेडिकल कॉलेज में उन्हें सीट मिलना एक चमत्कार है। सुमा ने ठान ली कि वे हर परीक्षा के लिए तगड़ी तैयारी करेंगी। हर परीक्षा शानदार नंबरों से पास होंगी और आत्मनिर्भर बनेंगी। आगे की पढ़ाई के लिए अपने दम पर सीट हासिल करेंगी।

सुमा ने एमबीबीएस कोर्स के दौरान अपने बैच में फ़र्स्ट रैंक हासिल किया और 'बेस्ट आउटगोइंग स्टूडेंट' बनीं। उन्हें सर्जरी, मेडिसिन और पीडीऐट्रिक्स में सबसे ज़्यादा नंबर हासिल करने के लिए तीन स्वर्ण पदक मिले। सुमा ने एमबीबीएस कोर्स के लिए अपनी इंटर्नशिप विशाखपट्नम के किंग जॉर्ज हॉस्पिटल से की।

आगे सुमा को विजयनगरम ज़िले के महाराजा इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल साइंसेस में एमएस कोर्स के लिए सीट मिल गयी। 2013 में 'मास्टर ऑफ़ सर्जरी' की डिग्री लेने के बाद भी सुमा ने अपनी पढ़ाई नहीं रोकी। उन्होंने 'मास्टर ऑफ़ चिरुर्गिया' यानी एमसीएच डिग्री के लिए हुई प्रवेश-परीक्षा लिखी। उन्हें हैदराबाद के निज़ाम्स इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल साइंसेस में सीट मिल गयी। सुमा ने 2013 से 2016 तक इस प्रतिष्ठित चिकित्सा और शिक्षण संस्थान में प्रशिक्षण लेते हुए प्लास्टिक सर्जरी में निपुणता हासिल की और आत्मनिर्भर बन गयीं।

बेटी आत्मनिर्भर बन भी जाए, तब भी पिता की ज़िम्मेदारियाँ ख़त्म नहीं होतीं। सुमा ने मेडिकल साइंस में बड़ी डिग्रियाँ हासिल कर ली थीं। वे एक बेहद

कामयाब डॉक्टर बनने की राह पर चल पड़ी थीं। सुमा की शादी योग्य व्यक्ति से करवाकर श्यामा प्रसाद पिता के नाते अपना बड़ा दायित्व निभाने की सोचने लगे। चूँकि सुमा डॉक्टर थीं, ख़ूबसूरत थीं, परिवार प्रतिष्ठित था, उनके लिए अलग-अलग जगह से शादी के प्रस्ताव आ रहे थे। कुछ मामलों में सुमा को लड़का पसंद नहीं आया, तो कुछ मामलों में श्यामा प्रसाद और लक्ष्मी राज्यम को लड़का बेटी सुमा के लायक़ नहीं लगा।

जब कोई बात नहीं बन पाती या कोई बात बिगड़ जाती, तब श्यामा प्रसाद सत्य साईं को याद करते और उनसे अपने मन की बात कह देते। सुमा की शादी के मामले में भी श्यामा प्रसाद के ऐसा ही किया।

एक दिन एक रईस और इज़्ज़तदार परिवार से सुमा के लिए रिश्ता आया। लड़के ने भी डॉक्टरी की पढ़ाई की हुई थी। उसमें भी एक बेहद कामयाब डॉक्टर बनने के गुण और लक्षण थे। श्यामा प्रसाद को लड़का पसंद आया। लेकिन उनके मन में एक संदेह था, जिसकी वजह से वे फ़ैसला नहीं ले पा रहे थे। चूँकि माता-पिता ने लड़के की पढ़ाई में काफ़ी ख़र्च किया था, श्यामा प्रसाद को लगा कि शादी के लिए दहेज माँगा जाएगा। दहेज में बड़ी रक़म के साथ-साथ जेवरात भी माँगे जाएँगे। उन दिनों दहेज लेना-देना आम बात थी। लेकिन श्यामा प्रसाद को लग रहा था कि उनके पास उतनी धन-संपत्ति नहीं है, जितनी कि लड़केवाले माँगेंगे। डॉक्टरी पेशे की वजह से श्यामा प्रसाद की जो भी कमाई होती थी, उसमें से ज़्यादातर बेटा और बेटी की परवरिश और तालीम में ख़र्च हो जाती थी। तालीम के मामले में श्यामा प्रसाद ने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी थी। बेटा और बेटी में फ़र्क़ नहीं किया था। बेटी को भी उसी तरह पढ़ाया-लिखाया, जिस तरह से बेटे को पढ़ाया-लिखाया। बेटा-बेटी, दोनों को डॉक्टर बनाया। दोनों को अच्छे संस्कार दिये। उन्हें आत्मनिर्भर बनाया।

श्यामा प्रसाद जानते थे कि बेटी की शादी करना उनकी सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी है। इसी वजह से श्यामा प्रसाद ने शादी के लिए अलग से धनराशि जमा करना शुरू कर दिया था। लेकिन उन्हें लगा कि इस जमा राशि से कई गुना ज़्यादा दहेज माँगा जाएगा। इसी वजह से श्यामा प्रसाद शादी के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर रहे थे।

इसी बीच एक दिन सुमा ने अपने पिता से कहा, "डैडी, मुझे लड़का पसंद है। हम दोनों के विचार मेल खाते हैं, मैं चाहती हूँ कि आप मेरी शादी इसी लड़के से करें।"

यह बात सुनकर श्यामा प्रसाद को आश्चर्य हुआ। उन्हें नहीं मालूम था कि उनकी लड़की लड़के को पसंद करने लगी है। दोनों आपस में बातचीत भी कर रहे हैं।

सुमा ने पहली बार अपने पिता से किसी लड़के के बारे में बात कही थी। श्यामा प्रसाद को लगा कि बेटी ने सोच-समझकर फ़ैसला लिया है। उन्हें लकड़े की क़ाबिलियत पर कोई संदेह नहीं था। लड़के ने विदेश से डॉक्टरी पढ़ाई की हुई थी। अभिलाष ने रेडियोलॉजी में 'डॉक्टर ऑफ़ मेडिसिन' की डिग्री भी हासिल की हुई थी।

श्यामा प्रसाद जानते थे कि डॉ. अभिलाष उनकी बेटी के लिए उत्तम जीवनसाथी होंगे। लेकिन श्यामा प्रसाद के मन में दहेज को लेकर कई बातें चल रही थीं। लेकिन बेटी के कह देने के बाद श्यामा प्रसाद ने मन बना लिया कि वे सुमा का विवाह इसी लड़के के साथ करवाएँगे।

श्यामा प्रसाद अपनी बेटी से बहुत प्यार करते हैं। वे सुमा पर जान छिड़कते हैं। श्यामा प्रसाद ने ख़ुशी और मुहब्बत से सुमा की परवरिश की थी। सुमा की कामयाबियों पर उन्हें नाज़ है। बेटी ने हमेशा पिता को ख़ुशियाँ दीं। कभी परेशान नहीं किया। कभी कोई अनुचित माँग नहीं की। यही वजह थी कि श्यामा प्रसाद किसी सूरत-ए-हाल अपनी बेटी की शादी मनचाहे व्यक्ति से करवाना चाहते थे।

चूँकि लकड़ेवालों की हैसियत के हिसाब से शादी करनी थी, श्यामा प्रसाद ने सारी जमा-पूँजी अपने हाथों में ले ली। उन्हें अब भी यह शंका सता रही थी कि लड़केवाले उनकी क्षमता से ज़्यादा दहेज माँगेंगे।

श्यामा प्रसाद एक बार फिर सत्य साईं की शरण में गये। सत्य साईं की तस्वीर के सामने हाथ जोड़कर श्यामा प्रसाद ने कहा, "भगवान, इस बार भी आपको मेरी मदद करनी है। बिना किसी बाधा के आपको यह शादी करवानी है। मैं नहीं जानता कि आप यह शादी कैसे करवाएँगे, लेकिन मुझे विश्वास है कि आप कन्यादान को सफल बनाएँगे। मेरी मदद करने वाला आपके सिवाय कोई नहीं है। आप मेरे रक्षक हैं। पालनहार हैं।"

एक मायने में श्यामा प्रसाद ने शादी की ज़िम्मेदारी अपने भगवान पर सौंप दी।

एक बार फिर घटनाएँ अप्रत्याशित तरीक़े से हुईं। लड़केवालों ने साफ़ कह दिया कि वे दहेज में कुछ नहीं लेंगे। लड़की के माता-पिता अपनी इच्छा के मुताबिक़ शादी करवा सकते हैं। श्यामा प्रसाद को लगा कि सत्य साईं ने एक बार फिर से 'चमत्कार' किया है।

चूँकि दहेज में कुछ देना नहीं था, श्यामा प्रसाद ने सुमा के लिए जमा की राशि को शादी से जुड़े कार्यक्रमों में लगवाने का मन बनाया। वे नहीं चाहते थे कि सुमा की शादी के लिए संचित धनराशि वे अपने पास रखें या फिर किसी दूसरे काम के लिए उसका इस्तेमाल करें।

शादी की तैयारियाँ ज़ोरदार तरीक़े से हुईं। सभी रिश्तेदारों और दोस्तों को न्योता भेजा गया। पारंपरिक एवं सांस्कृतिक रीति-रिवाज के साथ शादी हुई। शादी के मौक़े पर हुई दावत में छह हज़ार से ज़्यादा लोगों ने शिरकत की। इससे पहले विशाखपट्नम में किसी शादी समारोह में इतने ज़्यादा लोग शामिल नहीं हुए थे। मेहमानों की ख़ातिरदारी के लिए बेहद ख़ास इंतज़ाम किये गये। मेहमानों के लिए तरह-तरह के पारंपरिक पकवान बनवाये गये। 300 से ज़्यादा व्यंजनों की व्यवस्था की गयी। ठंडे पानी और कूल ड्रिंक्स के लिए कोकाकोला कंपनी ने ख़ास तौर पर छह बड़े रिफ्रिजरेटर भिजवाये। शहर के सभी गणमान्य व्यक्तियों ने शादी की दावत में शिरकत की और नव वर-वधू को आशीर्वाद दिया। कई दिनों तक इस शादी की चर्चा पूरे विशाखपट्नम में हुई। सभी लोगों ने शानदार और यादगार तरीक़े से बेटी की शादी करवाने के लिए श्यामा प्रसाद की जमकर तारीफ़ की। कई लोगों ने कहा कि आने वाले कई सालों में इस तरह की शानदार शादी देखने को नहीं मिलेगी।

डॉ. अभिलाष इंटरवेंशनल रेडियोलॉजिस्ट हैं। सुमा और उनके पति अपोलो अस्पताल, हैदराबाद में अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। दोनों की दो संतानें हैं। बेटी ऐश्वर्या और बेटा अक्षय स्कूली शिक्षा हासिल कर रहे हैं।

श्यामा प्रसाद ने अपने बेटे सिद्धार्थ की शादी अपने एक क़रीबी रिश्तेदार सुधाकर की बेटी हरिता से करवायी। हरिता ने भी एमबीबीएस की डिग्री हासिल की हुई थी। पीजी कोर्स पूरा करने के बाद हरिता ने पहले गीतम इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल साइंसेज एंड रिसर्च में काम किया। इसके बाद वे विशाखा इंस्टीट्यूट ऑफ़

मेडिकल साइंसेज से जुड़ गयीं। सिद्धार्थ और हरिता की भी दो संतानें - शौर्या और श्रुति हैं।

एमबीबीएस की पढ़ाई के बाद श्यामा प्रसाद के छोटे भाई गोपी कृष्णा ने नेत्र विज्ञान में 'मास्टर ऑफ़ सर्जरी' की डिग्री ली। यह डिग्री मिलने के कुछ दिनों बाद उन्हें भी सरकारी नौकरी मिल गयी। गोपी कृष्णा ने आंध्रप्रदेश वैद्य विधान परिषद में अलग-अलग पदों पर काम किया। वे विशेष अधिकारी भी रहे। गवर्नमेंट सर्विस से रिटायर होने के बाद गोपी कृष्णा ने अलग-अलग अस्पतालों में नेत्र-रोग से परेशान लोगों का इलाज करना शुरू किया। इनकी दो बेटियाँ हैं। दोनों बेटियों की शादी हो गयी है और वे अपने परिवार के साथ रह रही हैं। दोनों को परिवार सम्पन्न है।

श्यामा प्रसाद की बहन मैथिली ने एमबीबीएस की डिग्री लेने के बाद 'मास्टर ऑफ़ सर्जरी' कोर्स किया। पीजी कोर्स पूरा होते ही उन्हें भी सरकारी नौकरी मिल गयी। मैथिली ने हैदराबाद के उस्मानिया अस्पताल और एमएनजे कैंसर अस्पताल में लंबे समय तक काम किया। शरीर से ट्यूमर निकालने में मैथिली ने निपुणता हासिल ली। उन्होंने कैंसर से पीड़ित कई मरीज़ों का इलाज किया। वे आगे किंग जॉर्ज हॉस्पिटल की मेडिकल सूपरिन्टेन्डन्ट बनायी गयीं। मैथिली अविवाहित रहीं और उन्होंने अपना जीवन जन-सेवा में समर्पित किया।

श्यामा प्रसाद की सबसे छोटी बहन शोभा ने भी 'मास्टर ऑफ़ सर्जरी' की डिग्री हासिल की और एक कुशल सर्जन बनीं। शोभा को भी सरकारी मेडिकल कॉलेजों और अस्पतालों में काम करने का मौक़ा मिला। वे इस समय तिरुपति के श्री वेंकटेश्वर मेडिकल कॉलेज में जनरल सर्जरी डिपार्टमेंट की मुखिया हैं।

डॉ. एन. टी. आर. आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किये जाने के बाद श्यामा प्रसाद ने चिकित्सा-शिक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए कई क्रांतिकारी क़दम उठाये। इस विश्वविद्यालय का इतिहास गौरवशाली है। साल 1986 में आंध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री एन. टी. रामा राव ने प्रदेश के मेडिकल कॉलेजों के नियंत्रण को पूरी तरह से एक अलग विश्वविद्यालय के हाथों में लाने के मक़सद से एक आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालय स्थापित करने की परिकल्पना की। इस परिकल्पना को आंध्रप्रदेश स्थापना दिवस यानी 1 नवंबर, 1986 को मूर्त रूप मिला। इसका नामकरण आंध्रप्रदेश आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालय हुआ। इससे पहले सभी मेडिकल

कॉलेज पारंपरिक विश्वविद्यालयों से संबद्ध थे।

साल 1995 में एन. टी. रामा राव की मृत्यु के बाद राज्य सरकार ने इस विश्वविद्यालय से दिवंगत नेता का नाम जोड़ने का फ़ैसला किया। 1996 में इस विश्वविद्यालय का नाम पड़ा डॉ. एन. टी. आर. आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालय।

कुलपति का पद्भार संभालने के कुछ दिनों बाद श्यामा प्रसाद को पता चला कि विश्वविद्यालय में शोध और अनुसंधान का काम कम हो रहा है। विश्वविद्यालय में मेडिकल शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता मिली हुई है। वे जानते थे कि स्वास्थ्य और चिकित्सा के क्षेत्र में शोध और अनुसंधान को बढ़ावा दिये बिना तरक़्क़ी हासिल नहीं की जा सकती है। श्यामा प्रसाद ने 'डॉक्टर ऑफ़ फिलॉसफ़ी' यानी पीएचडी के लिए लंबित सारे प्रस्ताव मँगवाये और उन्हें शोध व अनुसंधान के लिए अनुमोदित करवाया। चालीस से अधिक लोगों ने 'डॉक्टर ऑफ़ फ़िलॉसफ़ी' के लिए शोध और अनुसंधान का काम शुरू किया। स्वास्थ्य के क्षेत्र में अत्याधुनिक शोध को बढ़ावा देने के लिए श्यामा प्रसाद ने डॉ. एन. टी. आर. आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालय और अन्य आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थाओं के बीच विचारों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया भी शुरू करवायी।

श्यामा प्रसाद इस बात को अच्छे से जानते थे कि शोध और अनुसंधान के मामले में भारत कई देशों से पीछे है। भारत में बढ़ती स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए शोध और अनुसंधान को बढ़ावा देना ज़रूरी है। इतना ही नहीं, भारत में ज़्यादातर शोध-कार्य दवा कंपनियों द्वारा किया जा रहा है। सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार, नयी और अधिक प्रभावी दवाइयों की खोज, बीमारियों और महामारी की रोकथाम के लिए विश्वविद्यालयों में भी शोध को बढ़ावा दिया जाना बेहद ज़रूरी है। इसी विचार को केंद्र में रखते हुए श्यामा प्रसाद ने अपने सहकर्मियों के साथ मिलकर बड़े पैमाने पर शोध-कार्य शुरू करवाया। शोध-कार्य पर आधारित त्रैमासिक पत्रिका को नया रूप और विस्तार दिया। अलग-अलग विशेषज्ञों और शोधकर्ताओं के बीच विचारों के आदान-प्रदान के लिए कई गोष्ठियों और संगोष्ठियों का आयोजन भी किया गया। चूँकि दुनिया में कोरोना महामारी की वजह से कई तरह के प्रतिबंध थे, वेब-सेमिनारों का आयोजन किया गया। श्यामा प्रसाद ने ख़ुद एक सौ से ज़्यादा वेब-सेमिनारों में हिस्सा लिया। कुलपति ने नाते श्यामा प्रसाद ने

स्वास्थ्य और चिकित्सा-सेवाओं से जुड़ी अलग-अलग संस्थाओं का दौरा किया।

राष्ट्रीय पोषण संस्थान, भारतीय सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थान, कोशिकीय और आणविक जीवविज्ञान केंद्र जैसी नामचीन संस्थाओं के साथ मिलकर शोध करने के लिए डॉ. एन. टी. आर. आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालय का करार करवाया। पाठ्यक्रम समिति और अध्ययन समिति की बैठकों को नियमित करवाया।

श्यामा प्रसाद ने ख़ुद कई मेडिकल कॉलेजों और डेंटल कॉलेजों का किया। यहाँ उन्होंने न सिर्फ़ विद्यार्थियों और शिक्षकों से बातचीत की, बल्कि मेडिकल शिक्षा के लिए मुहैया करायी जा रही सुविधाओं का जायज़ा लिया। विद्यार्थियों की शिकायतों को दूर किया। यह सुनिश्चित किया कि मेडिकल कॉलेजों से अनुबद्ध शिक्षण अस्पतालों में भी चिकित्सा-सुविधाएँ उन्नत स्तरीय बनी रहें।

श्यामा प्रसाद ने परीक्षा-व्यवस्था को भी मजबूत किया। परीक्षाओं के आयोजन में देरी व परिणाम में धांधली की कोई शिकायत न आये, इस लक्ष्य को हासिल करने के मक़सद से नियम-क़ायदे कड़े कर दिये। कर्मचारियों और अधिकारियों की जवाबदेही सुनिश्चित की। मेडिकल कॉलेजों, डेंटल कॉलेजों के अलावा विश्वविद्यालय से अनुबद्ध सभी कॉलेजों में विद्यार्थियों की भर्ती-प्रक्रिया को पारदर्शी बनाया।

जिस तरह एक कुशल सर्जन बीमारी को दूर करने के लिए ऑपरेशन करता है, श्यामा प्रसाद ने ठीक उसी तरह विश्वविद्यालय से जुड़ी शिकायतों को दूर किया। समस्या का पता लगाया और उसका सही निदान किया। कुलपति के रूप में काम करते हुए श्यामा प्रसाद ने ख़ुद को एक क़ाबिल प्रशासक साबित किया।